चन्द्रज्ञानागमः

(क्रिया-चर्यापादौ)

भाषानुवाद-टिप्पणीसहितः

सम्पादकः

पं० व्रजवल्लभद्विवेदः



प्रकाशकः

शैवभारती-शोधप्रतिष्ठानम्

जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी-२२१००१

शोधप्रकाशन-ग्रन्थमाला — १

चन्द्रज्ञानागमः
(क्रिया-चर्यापादौ)
भाषानुवाद-टिप्पणीसहितः

सम्पादकः
पं० व्रजवल्लभद्विवेदः
शैवभारती-शोधप्रतिष्ठान-निदेशकः

प्रकाशकः
शैवभारती-शोधप्रतिष्ठानम्
जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी-२२१००१

प्रकाशक:
शैवभारती-शोधप्रतिष्ठानम्
डी० ३५/७७, जंगमवाडी मठ
वाराणसी – २२१००१

प्रथम संस्करण, सन् १९९४

मूल्यम् :

जौहरी प्रोसेस
जंगमवाडी कटरा
वाराणसी – २२१००१

मुद्रक
जौहरी प्रिंटर्स
४१, शिवाजी नगर
महमूरगंज, वाराणसी

Research Publications Series — 1

CANDRAJÑĀNĀGAMAḤ

KRIYĀ-CARYĀPĀDAU

Translation with Notes

Edited by

Pt. Vrajavallabha Dwivedi
Director, Shaiva Bharti Shodhapratishan

SHAIVA BHARATI SHODHA PRATISHTHANAM
Jangamawadimath, Varanasi — 221001

Published by:
SHAIVA BHARATI SHODHA PRATISHTHANAM
D. 35/77, Jangamawadimath
Varanasi – 221001

First published 1994

Price:

Laser Typeset at:
Jauhari Process
Jangamawadi Katra
Varanasi — 221001

Printed at:
Jauhari Printers
41, Shivaji Nagar
Mahmoorganj, Varanasi

शैवभारती शोध प्रतिष्ठान के संस्थापक



श्री काशी विश्वाराध्य ज्ञानसिंहासनाधीश्वर
श्री १००८ जगद्गुरु डॉ० चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामीजी का

शुभाशीर्वचन

भगवान् शिव ने लोकोद्धार के लिये अपने सद्योजात मुख से ऋग्वेद का, वामदेव मुख से यजुर्वेद का, अघोर मुख से सामवेद का, तत्पुरुष मुख से अथर्ववेद का और ईशान मुख से अट्ठाईस शैवागमों का आविर्भाव किया। कामिक से वातुल पर्यन्त इन शैवागमों की संख्या अट्ठाईस है। प्रत्येक आगम ज्ञानपाद, क्रियापाद, योगपाद और चर्यापाद नामक चार पादों से युक्त है। भारतीय सनातन धर्म-दर्शन के ये निगमागम ही मूल आधार हैं। सभी सनातन धर्मावलम्बी निगमागमोक्त धर्माचरण से ही परम पुरुषार्थ को पा रहे हैं।

निगम और आगम भगवान् शिव से ही प्रादुर्भूत हैं, अत एव परस्पर विरुद्धार्थक नहीं है। श्री नीलकण्ठ शिवाचार्यजी ने अपने क्रियासार ग्रन्थ के प्रथमोपदेश में इस विषय का इस प्रकार समर्थन किया है—

परस्पराविरुद्धार्थाः शिवोक्ता निगमागमाः।
अल्पबुद्धिभिरन्योन्यं विरोधः परिकल्प्यते॥

उपर्युक्त अट्ठाईस शैवागमों के पूर्व भाग में शैव धर्माचरण और उत्तर भाग में वीरशैव धर्माचरण प्रतिपादित है। यह बात सिद्धान्तशिखामणि के निम्न वचन से सिद्ध होती है—

सिद्धान्ताख्ये महातन्त्रे कामिकाद्ये शिवोदिते।
निर्दिष्टमुत्तरे भागे वीरशैवमतं परम्॥ (सि० शि० ५।१४)

भगवान् शिव के द्वारा शैवागमों के उत्तर भाग में प्रतिपादित उस वीरशैव सिद्धान्त को भगवान् शिव के ही आदेश के अनुसार श्री रेणुक, श्री दारुक, श्री घण्टाकर्ण, श्री धेनुकर्ण और श्री विश्वकर्ण नामक पाँच आचार्यों ने भूलोक में प्रतिष्ठापित कर अनेक महर्षियों को इसका उपदेश किया है। इन आचार्यों के द्वारा उपदिष्ट वह सिद्धान्त सिद्धान्तशिखामणि आदि ग्रन्थों में संगृहीत है। इस प्रकार शिवोक्त वीरशैव सिद्धान्त उपर्युक्त पंचाचार्यों द्वारा भूलोक में प्रतिष्ठापित हुआ, अतः श्री जगद्गुरु पंचाचार्यों को वीरशैव धर्म के संस्थापकों के रूप में माना गया है।

सुविपुल वह प्राचीन आगम साहित्य दुर्लभ होता जा रहा है। अभी हमारे संस्थान के शैवभारती शोध प्रतिष्ठान के द्वारा चन्द्रज्ञानागम, सूक्ष्मागम, मकुटागम और कारणागम नामक चार आगमों का प्रकाशन हिन्दी भाषानुवाद, टिप्पणी और परिशिष्टों के साथ करते हुए हमें अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है। इस कार्य के लिये हमारे शोध प्रतिष्ठान के आगम-तन्त्रशास्त्र के विशेषज्ञ निदेशक, राष्ट्रियपण्डित माननीय प० व्रजवल्लभ द्विवेदी का उल्लेखनीय योगदान रहा है। आपने उक्त चार आगमों में से प्रथम तीन का संपादन, टिप्पणी आदि कार्य स्वयं किया है और कारणागम का संपादन प्रो० रामचन्द्र पाण्डेय ने किया है। इन दोनों विद्वानों के सहयोग से, प्रतिष्ठान की परामर्शदात्री समिति के सौजन्य से और यहाँ अध्ययनरत प्रबुद्ध छात्रों के प्रयत्न से यह प्रकाशन-कार्य सुचारु ढंग से सम्पन्न हुआ है।

श्री जगद्गुरु विश्वाराध्य जी के आविर्भाव-काल महाशिवरात्रि के पावन पर्व पर इन चारों आगमों को हम शिवार्पित कर रहे हैं। हम आशा करते हैं कि इनके प्रकाशन से जिज्ञासु विद्वानों तथा शोध-छात्रों को समुचित लाभ होगा। इस कार्य के सम्पादन में तत्परता से लगे हुए सभी महानुभावों पर श्री जगद्गुरु विश्वाराध्य जी का, काशी विश्वेश्वर और माता अन्नपूर्णा का निरन्तर कृपाशीर्वाद रहे।

महाशिवरात्रि, २०५० वि. इत्याशिषः

प्रकाशकीय वक्तव्य

शिवोपासना की पद्धति हमारे भारतवर्ष में सबसे प्राचीन एवं अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। ऋक्, यजु: और अथर्व वेदों में शिव के ईश, ईश्वर, रुद्र, शितिकण्ठ, सर्वज्ञ, कपर्दी आदि अनेक नाम पाये जाते हैं। ऋग्वेद के ६०-७० सूक्तों में शिव के नाम, प्रभाव और स्वरूप आदि का वर्णन है। यजुर्वेद में क्रोधित शिव को शान्त करने के लिये शतरुद्र का स्वतन्त्र विधान किया गया है। इस वेद का सोलहवाँ अध्याय तो रुद्रमहिमा का प्रत्यक्ष प्रमाण ही है।

"नम: शम्भवाय च मयोभवे च नम: शङ्करायराय च
मयस्कराय च नम: शिवाय च शिवतराय च" (यजुर्वेद १६।४१)।

इस मन्त्र में शिव की परम पावन महिमा का सम्पूर्ण रस भरा हुआ है। अथर्ववेद में इनको सहस्रचक्षु, तिग्मायुध, वज्रायुध और विद्युच्छक्ति आदि बताया गया है।

वैदिक साहित्य की तरह तन्त्रसाहित्य, इतिहास, पुराण, उपनिषद्, ब्राह्मणग्रन्थों में, आरण्यकों में और स्मृतियों में भी शिव की उपासना वर्णित है। तन्त्रों की रचना ही उमा-महेश्वर संवाद पर है। तन्त्रों के द्वारा भगवान् शंकर ने अपने महत्त्व को लेकर अनेक रहस्यों का उद्‌घाटन किया है। सम्पूर्ण तन्त्रसाहित्य शिवस्वरूप, शिवमहिमा, शिवोपासना, लिंगार्चनपद्धति, लिंगपूजा के विधान से भरा हुआ है।

कामिक आदि अट्ठाईस आगम शैवागम कहलाते हैं। इन आगमों का प्रचार एवं प्रसार कम होने से प्रत्येक धार्मिक जिज्ञासु उनका लाभ नहीं उठा पा रहे हैं। उन सभी जिज्ञासुओं के लिये उनका हिन्दी भाषानुवाद करके जब उनको प्रस्तुत किया जायगा, तब शैवागमों का महत्त्व क्या है? यह पता चलेगा। सरल एवं सुलभ हिन्दी भाषा में शैवागमों का न होना खेद की बात है। इस कमी को पूर्ण करने के लिये हमारे परमपूज्य श्रद्धेय श्री १००८ जगद्‌गुरु डॉ० चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामीजी जंगमवाड़ी मठ के बहु प्रयास से प्रस्तुत चन्द्रज्ञानागम, सूक्ष्मागम, मकुटागम और कारणागम इन चार आगमों को अपने मठ के शैवभारती शोध प्रतिष्ठान के द्वारा हिन्दी भाषानुवाद के साथ प्रकाशित करवाया जा रहा है। उनके आदेश को शिरोधार्य करते हुए अभी हम इन चार आगमों को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं।

महास्वामी जी के आदेशानुसार शैवभारती शोध प्रतिष्ठान के निदेशक आगम-तन्त्रशास्त्र के विद्वान् राष्ट्रिय प० श्री व्रजवल्लभ द्विवेदी जी ने इन आगमों में से प्रथम तीन का तथा दिल्ली विश्वविद्यालय के बौद्ध दर्शन विभाग के पूर्व अध्यक्ष प्रो० श्री रामचन्द्र पाण्डेय ने कारणागम का सरल हिन्दी भाषानुवाद, आवश्यक टिप्पणियों और परिशिष्टों के साथ सम्पादन किया है। अत: आप लोगो को मैं सर्वप्रथम धन्यवाद समर्पित करता हूँ।

उपर्युक्त चारों शैवागम सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के वेदान्त विभागान्तर्गत शक्तिविशिष्टाद्वैत वेदान्त की आचार्य परीक्षा में १९८४ ई० से पाठ्यग्रन्थों के रूप में स्वीकृत हैं। इस शुभ कार्य के लिये वेदान्त विभागाध्यक्ष प्रो० देवस्वरूप मिश्र महोदय जी प्रसंशा के पात्र हैं। इस ग्रन्थ के प्रकाशन कार्य में मठ के काशी वीरशैव विद्वत्संघ के कार्यदर्शी श्री ष० ब्र० मरुलसिद्ध शिवाचार्यजी, तोण्टदार्य देव, विश्वनाथ देव, सिद्धराम देव, शिवयोगी स्वामी मैसाळ, श्री महादेव शिवाचार्यजी, श्री विरूपाक्ष शिवाचार्य, सिद्धराम देव सुरकोड, राचोटी देव, मलेयोगीश्वर देव, चिदानन्द तथा विशेष रूप में डॉ० जी० सी० केण्डदमठ आदि सदस्यों ने प्रेस कापी, विषय सूची, श्लोकार्धानुक्रमणी तथा अन्य परिशिष्टों को तैयार करने में हमें अपना अमूल्य समय देकर सहयोग किया है, अत: वे सभी धन्यवाद के पात्र हैं।

हमारी प्रार्थना के अनुसार विशेषत: सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति एवं शैवभारती शोध प्रतिष्ठान के संरक्षक प्रो० वी० वेंकटाचलम् महोदय जी का भी समय-समय पर बहुमूल्य परामर्श मिलता रहा है। अत: मैं उनके प्रति भी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। प्रस्तुत आगम ग्रन्थों का लोकार्पण कार्य प्रो० बलदेव उपाध्याय जी एवं प्रो० बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते जी ने अपने करकमलों से करके महनीय उपकार किया है, एतदर्थ मठ उनके प्रति भी आभार प्रदर्शित करना अपना कर्तव्य समझता है।

इन ग्रन्थों के मुद्रण कार्य को समय से पूरा करने में उल्लेखनीय सहयोग के लिये जौहरी प्रोसस एवं प्रिन्टिंग प्रेस और खण्डेलवाल प्रेस के मालिकों को तथा कर्मचारीगण को भी धन्यवाद प्रस्तुत करते हैं। साथ ही साथ प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में सहायता देने वाले सभी जनों के प्रति मेरी कृतज्ञता समर्पित है।

सभी जिज्ञासु पाठकों से हमारा अनुरोध है कि वे अवश्य इन ग्रन्थों को एक बार मनोयोगपूर्वक पढ़ें एवं अधिकाधिक लाभ उठावें।

१०-३-९४, महाशिवरात्रि। — **विनीत**

शैवभारती शोध प्रतिष्ठान — डॉ० महेश्वर देव, प्रबन्धक

जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी। — जंगमवाड़ी मठ (वाराणसी)

प्रस्तावना

संवत् २०५० वि० के अपने श्रावणमासीय शिवपूजा अनुष्ठान के शुभ अवसर पर काशी के जंगमवाड़ी मठ के जगद्गुरु श्री १००८ डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामीजी ने श्री जगद्गुरु विश्वाराध्य जनकल्याण प्रतिष्ठान के तत्त्वावधान में शैवभारती शोध प्रतिष्ठान की स्थापना का शुभ संकल्प लिया था और बाद में पुरुषोत्तम मास के निमित्त प्रयाग में आयोजित शिवपूजा अनुष्ठान के अवसर पर (दि० २०-८-९३) उक्त दोनों प्रतिष्ठानों की सविधि स्थापना के साथ यह शुभ संकल्प कार्यरूप में परिणत हो गया। वीरशैव सिद्धान्त की अभिवृद्धि में सहायक शैवागम की पाशुपत, सिद्धान्तशैव और प्रत्यभिज्ञा शाखाओं के साथ प्रधानत: वीरशैव सिद्धान्त के प्रतिष्ठापक आगमों का और उनके आधार पर निर्मित शास्त्रीय ग्रन्थों का प्रकाशन करना एवं उन पर शोधसामग्री प्रस्तुत करना शैवभारती शोध प्रतिष्ठान का प्रधान लक्ष्य निर्धारित किया गया है। इसके उद्देश्य और कार्यक्रम का विस्तृत विवरण अलग से प्रकाशित किया जा रहा है। अभी हमें शैवभारती शोध प्रतिष्ठान की ओर से भाषानुवाद टिप्पणी और परिशिष्टों के साथ प्रथम पुष्प के रूप में चन्द्रज्ञानागम को विज्ञ पाठकों के सामने प्रस्तुत करते हुए अपार हर्ष हो रहा है।

सिद्धान्तशिखामणि (५।४-१४) में सांख्य, योग, पांचरात्र, पाशुपत और वेद नामक [१]कृतान्तपंचक (पंचविध शास्त्र) का निरूपण करते हुए बताया गया है कि वेद का ही प्रामाण्य सर्वोपरि है। वेद का अनुसरण करने से ही सांख्य आदि को प्रमाण माना जाता है और इनमें शैवशास्त्र का विशेष स्थान है, क्योंकि अन्य शास्त्र तो वेद के एक अंश का अनुसरण करते हैं, जबकि शैवशास्त्र पूरी तरह से सभी वेदों को प्रमाण मानते हैं। यह शैवशास्त्र यहाँ 'सिद्धान्त' के नाम से प्रसिद्ध है और वेद के समान ही इसको प्रामाणिक माना गया है। यहाँ आगमों के [२]शैव, पाशुपत, सोम, लाकुल आदि भेदों के नाम देकर शैवों के पुन: वाम, दक्षिण, मिश्र और सिद्धान्त नामक चार भेद बताकर उनके लक्षण दिये गये हैं। अन्त में वेद की और सिद्धान्त शास्त्र की एकता स्थापित कर कहा गया है कि 'सिद्धान्त' के नाम से प्रसिद्ध कामिक आदि आगमों के उत्तर भाग में वीरशैव मत प्रतिपादित है।

---

१. पुराणों एवं धर्मशास्त्र के ग्रन्थों में ये पाँच शास्त्र कृतान्तपंचक के नाम से प्रसिद्ध हैं। कृतान्त शब्द यहाँ सिद्धान्त का पर्यायवाची है। इसका अभिप्राय यह है कि ये पाँच शास्त्र सिद्धान्त रूप में सभी को मान्य हैं।

२. सिद्धान्त, पाशुपत, कालामुख और कापालिक नामक शैवों के चार भेदों का विवरण प्राचीन तथा अर्वाचीन अनेक ग्रन्थों में मिलता है। वामनपुराण (६।८६-९१) में इन चारों भेदों को क्रमश: चार वर्णों से जोड़ा गया है। सिद्धान्तशिखामणि का शैव शब्द सिद्धान्तशैव का, लाकुल कालामुख का और सोम कापालिक मत का बोधक माना जा सकता है।

भगवान् शिव के द्वारा शैवागमों के उत्तर भाग में प्रतिपादित उस वीरशैव सिद्धान्त को भगवान् शिव के ही आदेश के अनुसार श्री रेणुक, श्री दारुक, श्री घण्टाकर्ण, श्री धेनुकर्ण और विश्वकर्ण नामक पांच आचार्यों ने भूलोक में प्रतिष्ठापित कर अनेक महर्षियों को इसका उपदेश किया। इन आचार्यों के द्वारा उपदिष्ट वह सिद्धान्त सिद्धान्तशिखामणि आदि ग्रन्थों में संगृहीत है। इस प्रकार शिवोक्त वीरशैव सिद्धान्त उपर्युक्त पंचाचार्यों के द्वारा भूलोक में प्रतिष्ठापित हुआ, अतः श्रीजगद्गुरु पंचाचार्यों को वीरशैव धर्म के संस्थापकों के रूप में माना गया है।

कामिक से लेकर वातुल पर्यन्त अट्ठाईस आगम सिद्धान्त शास्त्र के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनमें दस आगम शिव के द्वारा और अठारह रुद्र के द्वारा उपदिष्ट हैं। अभिनव गुप्त आदि कश्मीरी प्रत्यभिज्ञा दर्शन के आचार्य शिवागमों को द्वैतवाद का और रुद्रागमों को द्वैताद्वैतवाद का प्रतिपादक मानते हैं, जबकि अघोरशिव जैसे दक्षिण के आचार्य इन सभी अट्ठाईस आगमों को द्वैतवादी कहते हैं। उनके मत से ये अट्ठाईस आगम ही सिद्धान्त शास्त्र[३] कहलाते हैं। उनके इस मत की पुष्टि स्मृति और धर्मशास्त्र के ग्रन्थों से भी होती है। अभिनव गुप्त के शिष्य क्षेमराज भी इस मत का समर्थन करते हैं। वे यह भी कहते हैं कि अन्य शैव शास्त्रों की अपेक्षा सिद्धान्तशास्त्र अधिक लोकप्रिय[४] है।

हम देखते हैं कि यह द्वैतवादी सिद्धान्तशास्त्र दक्षिण भारत तक ही सीमित नहीं था, अपितु किसी समय पूरे भारतवर्ष में इसका व्यापक प्रचार था। आज कल तमिलनाडु में दक्षिण के शैवसिद्धान्त के नाम से प्रसिद्ध यह शास्त्र अद्वैतवादी हो गया है, जब कि वीरशैव दर्शन के अनुसार यह द्वैताद्वैतवादी है। इस प्रकार बादरायण-कृत ब्रह्मसूत्र के समान ही इस 'सिद्धान्त' नामक शैवशास्त्र की भी विभिन्न मतों के अनुसार व्याख्या की गई है। वीरशैव दर्शन में इन सिद्धान्त शैवागमों को वेद के समान ही मान्यता प्राप्त है। इनके उत्तर भाग में वीरशैव सिद्धान्त प्रतिपादित है, अतः हमारे लिये यह आवश्यक है कि हम इन आगमों के नामों से कम से कम अवश्य परिचित हो जाँय।

पांडिचेरी से प्रकाशित रौरवागम के प्रथम भाग के प्रारम्भ में ही एक तालिका दी गई है। इसमें १० शिवागमों, १८ रुद्रागमों और फिर इनमें से प्रत्येक के उपागमों की नामावली दी गई है। तदनुसार कामिक, योगज, चिन्त्य, कारण, अजित, दीप्त, सूक्ष्म, सहस्र, अंशुमत् और सुप्रभेद ये दस शिवागम हैं और विजय, निःश्वास, स्वायंभुव, अनल, वीर, रौरव, मकुट, विमल, चन्द्रज्ञान, मुखबिम्ब, प्रोद्गीत, ललित, सिद्ध, सन्तान, शर्वोक्त, पारमेश्वर, किरण और वातुल ये अठारह रुद्रागम हैं। इन आगमों के उपदेशक प्रणव आदि दस शिवों

---

३. "सिद्धान्तशब्दः पङ्कजादिशब्दवद् योगरूढ्या शिवप्रणीतेषु कामिकादिषु दशाष्टादशसु तन्त्रेषु प्रसिद्धः" (रत्नत्रयोल्लेखिनी, पृ. १४९, श्लो. १०)।
४. "प्रायश्च सिद्धान्तप्रियो लोकः सिद्धान्तक्रममाश्रितः" (स्वच्छन्दोद्योत २।२५)।

और अनादि आदि अठारह रुद्रों की तथा उनके श्रोताओं की नामावली लुप्तागमसंग्रह के प्रथम भाग में उद्धृत किरणागम के लम्बे उद्धरण में देखी जा सकती है।

इस नामावली को देने का प्रयोजन यह है कि शिवागमों में से कारण और सूक्ष्म के तथा रुद्रागमों में से मकुट और चन्द्रज्ञान नामक आगमों के उत्तर भाग के रूप में प्रसिद्ध चार आगमों का प्रकाशन वीरशैव मत के काशी ज्ञानसिंहासन के ८६वें आचार्य श्री १००८ जगद्गुरु डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी जी के द्वारा जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी में स्थापित शैवभारती शोध प्रतिष्ठान की ओर से किया जा रहा है। यद्यपि प्रत्येक शैवागम विद्या (ज्ञान), क्रिया, योग और चर्या नामक चार पादों में विभक्त है, किन्तु इन चार आगमों में से शिवागमों में परिगणित कारण और सूक्ष्म आगम के उत्तर भाग में केवल क्रियापाद और रुद्रागमों में परिगणित चन्द्रज्ञान और मकुटागम में क्रिया और चर्या ये दो ही पाद हैं।

इनमें से प्रस्तुत चन्द्रज्ञानागम का रुद्रागमों में नवां स्थान है। इसमें क्रिया और चर्या नामक दो पाद हैं। क्रियापाद में बारह तथा चर्या पाद में आठ पटल हैं। यहाँ देवगुरु बृहस्पति प्रश्नकर्ता हैं और भगवान् अनन्तरुद्र उनके प्रश्नों का उत्तर देते हैं। बृहस्पति कहते हैं कि मैंने चन्द्रज्ञानागम के बहुत से भागों को सुना है। अब आप इस आगम के मोक्षधर्म के प्रतिपादक अंशों को मुझे सुनाइये। इस प्रश्न के उत्तर में अनन्तरुद्र इस आगम के पूरे क्रियापाद में बन्ध और मोक्ष के स्वरूप का और इनके परिहार और प्राप्ति के उपायों का वर्णन किया है।

प्रथम पटल में पति, पशु और पाश नामक त्रिविध तत्त्वों का और सांख्यदर्शन की प्रक्रिया से २४ तत्त्वों का निरूपण कर बताया गया है कि समस्त देवगण और यह स्थावर-जंगमात्मक समस्त जगत् शिव के शासन के अनुसार ही प्रवृत्त है। बन्ध और मोक्ष भी उसीके अनुग्रह के अधीन हैं। शिव का यह अनुग्रह शांभवव्रत का आचरण करने से प्राप्त होता है। इस शांभवव्रत की व्याख्या के रूप में ही आगे के सात पटलों में गुरु, लिंग, जंगम, तीर्थ (पादोदक), प्रसाद, भस्म, रुद्राक्ष और मन्त्र नामक आठ आवरणों का स्वरूप विस्तार से प्रदर्शित है। नवें पटल में लिंगाचार, सदाचार, शिवाचार, गणाचार और भृत्याचार नामक पांच आचारों का निरूपण किया गया है। दशम पटल में आठ प्रकार के शैवों का और तीन प्रकार के वीरशैवों का लक्षण बताकर कौन किस दर्शन का अनुवर्तन करता है, इसको संक्षेप में बताया गया है। ग्यारहवें पटल में वीरशैव की दिनचर्या किस प्रकार की होनी चाहिये, इसको बताकर १२वें पटल में ज्ञानकर्मसमुच्चयवाद की स्थापना की गई है।

इस प्रकार प्रस्तुत आगम के क्रियापाद में वीरशैव दर्शन का प्रतिपादन कर चर्यापाद में वीरशैव धर्म का स्वरूप निरूपित है। यहाँ प्रथम चार पटलों में शिवमेध, अर्थात्

समाधि-संस्कार का स्वरूप विस्तार से वर्णित है और पांचवें पटल में भी आराधन (श्राद्ध) संबन्धी प्रकीर्णक विषय निरूपित हैं। छठे पटल में आशौच विधि का और सातवें एवं आठवें पटल में प्रायश्चित्तों के साथ द्रव्यशुद्धि का विधान है।

ग्रन्थ के इस संक्षिप्त परिचय के बाद हम विज्ञ पाठकों का ध्यान यहाँ के विशेष अवधेय अंशों की ओर आकृष्ट करना चाहते हैं। जैसे कि प्रथम पटल में बृहस्पति चन्द्रज्ञानागम के अनेक भागों को सुनने की बात स्वीकार कर उस भाग को सुनाने की प्रार्थना करते हैं, जिसमें मोक्ष-धर्म का विशेष रूप से वर्णन है। इसके उत्तर में भगवान् अनन्तरुद्र [५]पति, पशु और पाश नामक त्रिविध पदार्थों का संक्षिप्त स्वरूप, २४ तत्त्वों की उत्पत्ति का क्रम और उनका लक्षण बताकर कहते हैं कि शिव के शासन से ही समस्त दिक्पाल आदि देवगण ही नहीं ब्रह्मा, विष्णु, हर, काल आदि भी अपने अपने कार्य में अनवरत प्रवृत्त रहते हैं। स्थावर-जंगमात्मक इस सारी सृष्टि के कर्ता एवं बन्ध और मोक्ष के प्रदाता भी वे ही हैं। बन्ध की विच्युक्ति और मोक्ष की प्राप्ति भी उन्हीं के अनुग्रह से होती है। यह अनुग्रह दीक्षा के माध्यम से और शांभवव्रत के पालन से प्राप्त होता है। इतना कहकर दीक्षा और शांभवव्रत के स्वरूप को संक्षेप में बताते हुए अनन्तरुद्र प्रथम पटल को समाप्त करते हैं।

द्वितीय पटल में शांभवव्रत के आठ अंगों (आवरणों) के नाम और आवरण शब्द का अर्थ बताकर बाद में गुरु और शिष्य का लक्षण बताते हुए गुरु की महिमा का सविशेष वर्णन किया गया है, साथ ही शिव, विद्या और गुरु का अभेद भी यहाँ प्रदर्शित है। गुरु की आज्ञा के पालन का फल बताने के साथ यहाँ गुरु के क्रोध से बचने के लिये भी कहा गया है। गुरु के अपने घर आने पर उनका कैसे सत्कार किया जाय और गुरु के घर जाने पर किन किन शिष्टाचारों का शिष्य पालन करे, इस विषय की यहाँ विशेष रूप से चर्चा है। इसके साथ ही दुष्ट और योग्य गुरु का लक्षण भी प्रदर्शित है और शिष्य की परीक्षा का विधान भी। गुरु के प्रसाद के ग्रहण का महत्त्व बताने के साथ 'गुरु' नामक प्रथम आवरण का वर्णन करने वाला यह द्वितीय पटल पूरा होता है।

इस प्रकार द्वितीय पटल में प्रथम आवरण के रूप में गुरुतत्त्व का निरूपण करने के बाद तृतीय पटल में द्वितीय आवरण के रूप में लिंगतत्त्व का निरूपण करते हुए यहाँ सप्रमाण बताया गया है कि यह लिंगतत्त्व ही परब्रह्म है। परबिन्दु, परनाद और अपरबिन्दु, अपरनाद नामक लिंग के चतुर्विध स्वरूप को बताकर यहाँ कहा गया है कि इस बिन्दुनादात्मक तत्त्व से ही सारा जगत् सृष्ट होता है, अतः यह जगत् भी बिन्दुनादात्मक है। इसका अभिप्राय यह है कि शक्तिविशिष्ट शिव ही इस जगत् के माता-पिता हैं। यहाँ महालिंग के स्वरूप

५. यहाँ प्रतिपादित विषयवस्तु की तुलना कूर्मपुराण उपरि विभाग के प्रारम्भ के ११ अध्यायों में स्थित ईश्वरगीता के छठे और सातवें अध्यायों के वर्ण्य विषय से की जा सकती है।

को बताते हुए कहा गया है कि यह महालिंग ही भावलिंग, प्राणलिंग और इष्टलिंग का स्वरूप धारण करता है। पुनः इनके दो दो भेद होने पर षड्विध लिंगों की निष्पत्ति होती है। इनमें से इष्टलिंग में शिव की, आधार आदि चक्रों में प्राणलिंग की तथा भावना के द्वारा भावलिंग की उपासना की जाती है। इसकी विधि को बताने के साथ यहाँ आणव, मायीय और कार्मिक मल का क्षय करने वाली त्रिविध दीक्षा का निरूपण करते हुए अन्त में त्रिविध लिंग की आराधना की महिमा गाई गई है।

चतुर्थ पटल में जंगम का लक्षण और उसकी महिमा को बताते हुए शिव के स्थावर और जंगम नामक दो स्वरूपों का और तब जंगम के मान्त्रिक (इष्टलिंग) और सहज नामक स्वरूपों का तथा सहज जंगम के पर्यायवाची शब्दों का उल्लेख कर उसके ब्रह्मचारी, गृही और निराभारी नामक त्रिविध भेदों की चर्चा करते हुए भक्ति के प्रादुर्भाव के चिह्नों का वर्णन किया गया है। आगे यहाँ शिवभक्त जंगम के दशविध बाह्य और त्रिविध आन्तर चिह्नों के उद्भव की, शिवभावापन्न भक्त के दशविध विशिष्ट [६]लक्षणों की चर्चा कर जंगम की महिमा का वर्णन करते हुए कहा गया है कि इस प्रकार के भक्तों के रूप में साक्षात् परमेश्वर ही प्रकट होते हैं। अतः भगवान् के समान ही इनकी भी भक्तिभावपूर्वक सेवा करनी चाहिये। जंगमविषयक त्रिविध भक्ति का उल्लेख कर यहाँ बताया गया है कि इसकी पूजा का विशेष महत्त्व है। इसी के साथ जंगम नामक तृतीय आवरण का परिचय देने वाला यह चतुर्थ पटल पूरा होता है।

पंचम पटल में पादतीर्थ और प्रसाद नामक चतुर्थ एवं पंचम आवरणों का स्वरूप बताते हुए पहले पादतीर्थ के तीन भेदों का निरूपण करने के साथ यह भी बताया गया है कि गुरु, लिंग और जंगम पादोदक में से किसी एक या दो के अनुपलब्ध होने पर उपलब्ध तीर्थ में अन्य तीर्थों (पादोदक) की भावना कर लेनी चाहिये। इस त्रिविध पादोदक की महिमा को बताने के बाद प्रसाद नामक आवरण के त्रिविध स्वरूप का वर्णन कर कहा गया है कि शिवभक्त को शिवार्पित प्रसाद का ही ग्रहण करना चाहिये। समर्पण के भी यहाँ स्थूल और सूक्ष्म नामक दो भेद किये गये हैं और अन्त में त्रिविध प्रसाद की महिमा गाई गई है।

छठे पटल में भस्म नामक छठे आवरण का निरूपण किया गया है। यहाँ गो, गोमय और गोमूत्र के माहात्म्य को बताकर भस्म-संपादन के लिये इनके ग्रहण की पद्धति बताई गई है। गोमय-पिण्डों के निर्माण के साथ अग्नि की प्रतिष्ठा और उसमें विविध मन्त्रों से

६. भगवती त्रिपुरसुन्दरी की उपासना से संबद्ध सटीक उत्तरषट्क नामक महनीय आगम ग्रन्थ का प्रकाशन सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय से शीघ्र होने वाला है। उसमें मन्त्रसिद्धि के स्पर्शन, अवलोकन, संभाषा, बिन्दुदर्शन और स्वयमावेशन नामक पांच लक्षण बताये गये हैं। वहाँ का एक श्लोक ऋजुविमर्शिनी (पृ. २५१) में उद्धृत है। शिवभावापन्न भक्त के दशविध विशिष्ट चिह्नों से (१।४।२०-२२) इनकी तुलना की जा सकती है।

आहुति का विधान कर पुलकाहरण, भस्मशुद्धीकरण के साथ भस्मनिर्माण की विशिष्ट प्रक्रिया को दिखाकर इसकी दूसरी संक्षिप्त विधि भी दिखाई गई है। इस भस्म के शान्तिक, पौष्टिक और कामद नामक भेदों को दिखाकर भस्मस्नान की और उद्धूलन, अवगुण्ठन एवं त्रिपुण्ड्र नामक भस्मधारण की तीन विधियों का स्वरूप बताकर त्रिपुण्ड्र धारण के बत्तीस, सोलह, आठ अथवा पांच स्थानों का सविशेष वर्णन कर त्रिपुण्ड्र धारण की विधि को भी बताया गया है। भस्म की महिमा के बखान के साथ यह प्रकरण पूरा होता है।

इस प्रकार छठे पटल में भस्म नामक छठे आवरण के स्वरूप का निरूपण करने के बाद सातवें पटल में रुद्राक्ष नामक सप्तम आवरण का परिचय दिया गया है। सर्वप्रथम रुद्राक्ष की उत्पत्ति को बता कर रुद्राक्ष का माहात्म्य बताया गया है। रुद्राक्ष के विविध भेदों के वर्णन के साथ वर्ज्य और उपादेय रुद्राक्षों का लक्षण बताकर रुद्राक्ष के धारण के स्थलों और उनकी संख्या को दिखाते हुए कहा गया है कि रुद्राक्ष-धारण मन्त्रोच्चार के साथ ही करना चाहिये। एकमुख, द्विमुख आदि के भेद से भी रुद्राक्ष की महिमा यहाँ बताई गई है। रुद्राक्ष-धारण की संख्यायों के विकल्पों को दिखाते हुए यहाँ बताया गया है कि सुवर्णसूत्र और मुक्ता, प्रवाल आदि मणियों के साथ रुद्राक्ष-धारण करना चाहिये। इस प्रकार की रुद्राक्ष की माला से किया गया जप अनन्त फल को देने वाला है।

आठवें पटल में मन्त्र नामक आठवें आवरण के रूप में पंचाक्षर मन्त्र का स्वरूप और उसका माहात्म्य वर्णित है। यहाँ प्रथमतः पंचाक्षरी विद्या का स्वरूप बताकर कहा गया है कि प्रारम्भ में प्रणव के जुड़ जाने पर यही षडक्षरी विद्या कहलाती है। आगे इसके (पंचाक्षर मन्त्र) ऋषि, छन्द, देवता, बीज आदि का वर्णन कर कहा गया है कि प्रतिदिन इसका जप करना चाहिये। इसके प्रत्येक अक्षर का वर्ण (रंग) बताकर, इसके नामान्तरों का उल्लेख कर मन्त्र के अंगों का और फिर इस मन्त्र के नकार आदि प्रत्येक अक्षर के सोलह आकारों का निरूपण किया गया है। यहाँ पंचाक्षर की उत्पत्ति के प्रसंग में उसके [७]प्रस्तारों का, पंचविध मन्त्रों और अष्टविध कर्मों का भी उल्लेख किया गया है। आगे पंचाक्षर मन्त्र की महिमा का बखान करते हुए मन्त्र-पुरश्चरण की संक्षिप्त पद्धति दिखाई गई है और मन्त्रजप की विधि भी। तब त्रिविध जप का स्वरूप दिखा कर सगर्भ और अगर्भ जप का लक्षण बताया गया है। अंगुलि की रेखा, पुत्रजीव आदि की माला पर किये गये जप का फल दिखाने के प्रसंग में यहाँ जपमाला के निर्माण की और जप करने की विधि भी बताई गई है। गृह, गोष्ठ आदि स्थानों के भेद से और दिशा के भेद से जप के फल में भिन्नता आ जाती है, इसका निरूपण करते हुए यहाँ जप के समय वर्जनीय स्थितियों की भी चर्चा की गई है और अन्त में पुनः पंचाक्षर मन्त्र की महिमा का गान

---

७. यहाँ पंचाक्षर मन्त्र के १२० प्रस्तारों, पंचविध मन्त्रों और अष्टविध कर्मों की चर्चा है। इस पर अभी विशेष प्रकाश अपेक्षित है।

कर कहा गया है कि श्रद्धावान् व्यक्ति को यह विद्या शीघ्र फल देती है। इसी के साथ आठ आवरणों का प्रतिपादक यह प्रकरण पूरा होता है[८]।

नवम पटल में लिंगाचार, सदाचार, शिवाचार, भृत्याचार और गणाचार नामक पंचाचारों का विशद विवेचन मिलता है। प्रथमतः इन पांचों आचारों का स्वरूप बताकर लिंगाचार के प्रसंग में क्रिया, वेधा और मनु (मन्त्र) नामक त्रिविध दीक्षा का और इनमें से प्रत्येक के सात सात भेदों का उल्लेख कर इनके नाम गिनाये गये हैं। सदाचार का निरूपण करते हुए यहाँ इसके अंकुर, उत्पन्न आदि आठ शीलों के लक्षण बताये गये हैं। इस तरह से शिवाचार के प्रसंग में सोलह प्रकार की शुद्धियों का लक्षण बता कर चतुर्थ गणाचार के प्रसंग में ६४ प्रकार के शीलों का विस्तार से वर्णन किया गया है। इनमें सात कायिक शील, पांच पाणिगत, चार पादगत तथा एक एक त्वक्‌गत, चक्षुगत, जिह्वागत, घ्राणगत, श्रोत्रगत, कायगत शीलों का निरूपण कर बाद में मानसिक शीलों का हृदयहारी वर्णन किया गया है। अन्त में दो प्रकार के भृत्याचारों का स्वरूप बता कर इस विषय की गोपनीयता पर विशेष जोर दिया गया है।

इस तरह से ऊपर के आठ पटलों में वीरशैव धर्म-दर्शन के आधारभूत आठ आवरणों और पांच आचारों का यहाँ शिवव्रत के रूप में विस्तार से वर्णन करने के बाद दसवें पटल में शैवों के अनादिशैव, आदिशैव, पूर्वशैव, मिश्रशैव, शुद्धशैव, मार्गशैव, सामान्यशैव और वीरशैव नामक[९] आठ प्रकार के शैवों का उल्लेख कर इनमें से प्रत्येक के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। आदिशैवों के प्रसंग में यहाँ [१०]कौशिक आदि पाँच महर्षियों का उल्लेख कर बताया गया है कि इनके वंशज ही प्रतिष्ठा, उत्सव आदि धार्मिक कृत्यों की आचार्यता कर सकते हैं। पूर्वशैवों को यहाँ [११]कानीन शिवद्विज कहा गया है और इन्हीं में देवलकों[१२] का भी अन्तर्भाव किया गया है। वीरशैवों का सामान्य लक्षण बताने के बाद यहाँ उनके सामान्य, विशेष और निराभारी नामक तीन भेदों का निरूपण

---

८. इन अष्टावरणों का विशेष परिचय हिन्दी भाषा में रचित ग्रन्थ "अष्टावरण विज्ञान" से मिल सकता है। वहाँ अष्टावरणों का क्रम इस प्रकार है— गुरु, लिंग, जंगम, विभूति (भस्म), रुद्राक्षर, मन्त्र, पादोदक और प्रसाद। इनमें से प्रथम तीन पूज्य हैं, बाद के तीन पूजा के साधन और अन्त के दो उस पूजा के फल के रूप में मान्य हैं। इसी विषय पर ध्यान आकृष्ट कराने के लिये यहाँ चन्द्रज्ञानागम के क्रम को छोड़ दिया गया है।

९. सूक्ष्मागम में पहले सप्तविध शैवों का परिचय देकर आठवें भेद वीरशैव का और उसके भेदोपभेदों का परिचय अलग से दिया गया है। विषय एक होते हुए भी इनकी प्रतिपादन शैली भिन्न है। इनकी तुलनात्मक समीक्षा की जा सकती है।

१०. **कौशिक** आदि महर्षियों का और उनके वंशजों की विशेषता का उल्लेख सूक्ष्मागम (७।७-९) में भी मिलता है।

११. कानीन शिवद्विजों का उल्लेख सूक्ष्मागम में नहीं है। इस शब्द का अर्थ भी स्पष्ट नहीं है।

१२. देवलकों के विषय में भी सूक्ष्मागम में कोई उल्लेख नहीं है।

कर निराभारी के भी स्वतन्त्र[१३] निराभारी और वैदिक निराभारी नामक दो भेदों की विलक्षणता को दिखा कर निराभारी के सामान्य स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। अन्त में बताया गया है कि ये सब भेद दर्शनभेद[१४] और आचारभेद के कारण हुए हैं।

ग्यारहवें पटल में वीरशैवों के प्रातःकाल से लेकर रात्रि पर्यन्त सम्पन्न किये जाने वाले आह्निक कृत्यों का निरूपण किया गया है। शौचाचारविधि, दन्तधावन, वारुणस्नान, वस्त्रधारण, भस्मस्नान, भस्मोद्धूलन, त्रिपुण्ड्रधारण, सन्ध्योपासन, शिवशक्ति-ध्यान, मन्त्रन्यास, सृष्टि-स्थिति-संहार न्यास, अस्त्रन्यास, इष्टप्राणानुसन्धान, ध्यानपूर्वक जप, मातृकान्यास, सतार और वितार मन्त्र का स्वरूप, स्थूल-सूक्ष्म मन्त्र का स्वरूप, अधिकारी भेद, जपक्रम, श्रीरुद्र आदि का जप, अग्निकार्य, होमयोग्य समिधा, मध्याह्न सन्ध्या, पंचयज्ञ, माहेश्वर पूजा आदि का विधान यहाँ विस्तार से बताया गया है। त्रिपुण्ड्र-धारण के प्रसंग में यहाँ बत्तीस[१५] स्थानों का परिगणम किया गया है। नामाष्टक जप के प्रसंग में शिव के शिव, महेश्वर आदि आठ नाम दिये गये हैं। विद्यामय देह का सम्पादन किस प्रकार किया जाय, इसकी विधि बताते हुए यहाँ भूतशुद्धि और प्राणप्रतिष्ठा का क्रम संक्षेप में बता दिया गया है और "शिवो भूत्वा शिवं यजेत्"[१६] इस सिद्धान्त की स्थापना की गई है। यहाँ का सूक्ष्म और स्थूल पंचाक्षर का क्रम विशेष अवधेय है। अग्नि-कार्य के प्रसंग में समिधा आदि का जो स्वरूप दिया गया है, वह पूरी तरह से वैदिक विधि के अनुरूप है। अग्नि के अंगों का निरूपण कर यहाँ बताया गया है कि आहुति अग्नि की जिह्वा में ही देनी चाहिये। यह विषय सभी के लिये विशेष रूप से अवधेय है। दिवस के छः भागों का विशेष रूप से उल्लेख कर यहाँ बताया गया है कि इन छहों कालों में इष्टलिंग की आराधना करनी चाहिये। अवसरा पूजा का और लघ्वी, गुर्वी एवं महती पूजा का यहाँ उल्लेख मात्र किया गया है। इनका विशेष विवरण कारणागम के ४-७ पटलों में देखा जा सकता है। अन्त में सायंकालीन कृत्यों की संक्षिप्त चर्चा कर कहा गया है कि शिव का ध्यान करते हुए आराम की नींद लेना चाहिये।

---

१३. शिवपुराण की वायवीय संहिता के पूर्व खण्ड के ३२वें अध्याय में श्रौत और स्वतन्त्र नामक द्विविध शिवागमों का वर्णन मिलता है। स्वतन्त्र निराभारी और वैदिक निराभारी की हम इसी पृष्ठभूमि में व्याख्या कर सकते हैं।

१४. इस प्रसंग में (१।१०।५०-५१) सविशेष शिवाद्वैत, शुद्धाद्वैत और शाक्त विशिष्टाद्वैत नामक तीन सिद्धान्तों का उल्लेख किया गया है। हम नीलकण्ठ शिवाचार्य को प्रथम मत का, श्रीकण्ठ शिवाचार्य को द्वितीय का तथा श्रीपति पण्डिताराध्य को तृतीय मत का प्रतिनिधि मान सकते हैं।

१५. इसके पहले छठे पटल में इन ३२ स्थानों के अतिरिक्त सोलह स्थानों के दो विकल्पों का, आठ स्थानों का और पांच स्थानों का भी ४४-५६ श्लोकों में विवरण दिया गया है।

१६. हमारा "देवो भूत्वा यजेद् देवान्" शीर्षक निबन्ध देखिये। इस निबन्ध का अंग्रेजी अनुवाद न्यूयार्क से सन् १९९२ में प्रकाशित "रिचुअल एंड स्पेक्युलेशन इन अर्ली तान्त्रिज्म (पृ० १२१-१३८) नामक ग्रन्थ में प्रकाशित हो चुका है।

चन्द्रज्ञानागम के इस पटल का विशेष महत्त्व है। न्यास प्रकरण में यहाँ (११।२१-२३) उत्पत्ति, स्थिति और संहति नामक न्यासों का वर्णन किया गया है। इनका लक्षण बताकर यहाँ कहा गया है कि गृहस्थ के लिये स्थिति-न्यास, ब्रह्मचारी के लिये उत्पत्ति-न्यास, वानप्रस्थ और यति के लिये संहार-न्यास विहित है। इसी तरह से विभर्तृका स्त्री के लिये संहार-न्यास, कन्या के लिये उत्पत्ति-न्यास और सुवासिनी के लिये स्थिति-न्यास विहित है। इस तरह से न्यासों का विभाजन प्राय: अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। इन तीनों प्रकारों के न्यासों का स्वरूप परिशिष्ट में दे दिया गया है।

इस आगम के क्रियापाद के अन्तिम १२वें पटल में ज्ञान और कर्म के समुच्चयवाद[१७] की प्रतिष्ठा की गई है। ज्ञान और कर्म की परस्पर-सापेक्षता को दिखा कर कहा गया है कि व्यक्ति को जीवन पर्यन्त कर्म का अनुष्ठान करते रहना चाहिये। अर्पित और अनर्पित कर्मों के भेद को दिखाते हुए यहाँ पुराणों की पद्धति से बताया गया है कि अनर्पित (सकाम) कर्म ही बन्धन के कारण बनते हैं। कर्म के परित्याग की यहाँ निन्दा की गई है और कहा गया है कि ध्यानस्थ योगी के कर्म अपने आप छूट जाते हैं। इसी के साथ १२ पटल वाला यह क्रियापाद पूरा होता है।

चर्यापाद के प्रथम पटल में और्ध्वदेहिक विधि के निरूपण के प्रसंग में पहले शिवमेध का स्वरूप वर्णित है। शिवमेध में श्रद्धाहीन व्यक्ति को पतित कहते हुए यहाँ कहा गया है कि इष्टलिङ्गधारी का दाहसंस्कार नहीं करना चाहिये। उसका तो समाधि-संस्कार ही उचित है। इसका कारण भी यहाँ बताया गया है।

द्वितीय पटल में कहा गया है कि मुक्ति की कामना वाले साधक को मृत्यु के चिह्नों को देखकर इस नश्वर देह के परित्याग की तैयारी में लग जाना चाहिये। भस्मस्नान एवं भूति-रुद्राक्ष धारण कर उसे माहेश्वरों को गौ, भूमि, सुवर्ण, शिवलिंग आदि का दान करना चाहिये। इन दानों के फल को बताते हुए यहाँ सर्वांग में लिंग के साहित्य का स्वरूप वर्णित है। अन्त में अखण्ड लिंग की भावना की आवश्यकता को दिखाते हुए यहाँ अन्तिम समय में करणीय प्रायश्चित्त का विधान बता कर गुरु और जंगम की पूजा की पद्धति बताई गई है और कहा गया है कि अन्तिम समय में उसे महालिंग की भावना करते हुए प्रायोपवेशन पर बैठ जाना चाहिये।

प्राण की उत्क्रान्ति हो जाने पर मृत व्यक्ति का और्ध्वदेहिक कार्य सम्पन्न करने वालों का क्रम बताने के साथ तृतीय पटल प्रारम्भ होता है। उत्क्रान्ति का विवरण देकर [१८]ऊर्ध्वोच्छिष्ट,

---

१७. ज्ञानकर्मसमुच्चयवाद भारत का प्राचीन दार्शनिक सिद्धान्त है। इसके साथ ब्रह्मदत्त, भर्तृप्रपंच, भास्कर जैसे महान् दार्शनिकों का नाम जुड़ा हुआ है। इसका विशेष परिचय "सिद्धान्तशिखामणिसमीक्षा" (पृ. ३०५-३१०), "कूर्मपुराण : धर्म-दर्शन" जैसे ग्रन्थों से मिल सकता है।

१८. ऊर्ध्वोच्छिष्ट पद पर दी गई टिप्पणी को देखिये। अभी इसके लिये अधिक विवरण अपेक्षित है।

पर्युषित आदि दोषों के आने पर तथा प्रासाद, खड्ग आदि पर प्राणत्याग होने पर उनके प्रायश्चित्त का विधान कर यहाँ सिद्धि (शिवसायुज्य) को प्राप्त प्राणी के संस्कार का समय और क्रम बताया गया है। अन्त में कहा है कि समाधि संस्कार के लिये शव को विमान में रखकर महोक्ष, वृषभ, नन्दीश और नन्दिकेश्वर नामक वाहकों के द्वारा उसे शिवाराम में ले जाना चाहिये।

चतुर्थ पटल में मृत व्यक्ति के देह के शिवाराम आदि में प्रवेश के साथ की जाने वाली समाधि-क्रिया का क्रम कहा गया है। कर्मकर्ता के लिये केशवपन क्यों आवश्यक है? इसके लिये यहाँ कहा गया है कि मनुष्यकृत सारे पाप केशों में अपना घर बना लेते हैं। समाधिस्थल पर वृषभ के साथ लिंग की स्थापना आवश्यक है। इसका प्रतिदिन क्षीर (दूध) से तर्पण आवश्यक है। समाधि-संस्कार के बाद घर आकर नग्न-प्रच्छादन नामक कर्म किया जाता है। समाधि पर स्थापित लिंग की दस दिन तक पूजा की जाती है। दस दिन तक की आराधन(श्राद्ध)विधि को बता कर कहा गया है कि समाधि पर स्थापित लिंग को वृषभ के साथ वहाँ से उठा कर तीर्थ-जल में विसर्जित कर देना चाहिये। इसके बाद [१९]गाणपत्यहोम, आनन्दहोम, वृषोत्सर्ग, [२०]रुद्रहोम आदि का तथा षोडश आराधन का क्रम बताकर तत्त्वसंयोजन की विधि बताई गई है। इस प्रसंग में रुद्राराधन की आवश्यकता बताकर कहा गया है कि लिंगांगसंगी वीरशैव का सापिण्ड्य कर्म नहीं किया जाता। तत्त्वसंयोजन की विधि के साथ ही यहाँ कलासंयोजन की प्रक्रिया भी प्रदर्शित है। अन्त में बताया गया है कि इसके बाद ही षोडश आराधन करना चाहिये।

पाँचवे पटल में प्रकीर्णक विधियों का निरूपण है। यहाँ पूर्वशैवों, मिश्रशैवों और वीरशैवों के विश्वदेव, पितृगण आदि का निरूपण कर कहा गया है कि अपसव्य आदि का विधान वीरशैव आराधन में वर्जित है। आराधन के लिये ग्राह्य पदार्थों की नामावली भी यहाँ दी गई है। बान्धव वर्ग में से किसी की मृत्यु हो जाने पर तत्त्वसंयोजन आदि कृत्यों को ज्येष्ठ, कनिष्ठ आदि पुत्र किस प्रकार सम्पन्न करें, इसके क्रम को भी यहाँ दिखाया गया है। तत्त्वसंयोजन और षोडश आराधन के क्रम की भी व्यवस्था दी गई है। तत्त्वसंयोजन किये बिना अन्य शुभ कर्मों का अनुष्ठान नहीं किया जाता। इतना सब बता देने के बाद यहाँ आराधन के एकोद्दिष्ट और पार्वण नामक दो भेदों को बताने के साथ नित्य, नैमित्तिक और काम्य नामक त्रिविध आराधनों का भी परिगणन किया गया है। श्राद्ध पद की निरुक्ति और श्राद्ध में भोजन करने वालों के नियमों को बता कर यहाँ अन्त में कुछ विशेष अवसरों पर संपादनीय आम श्राद्ध का भी स्वरूप निदर्शित है।

१९. गाणपत्य होम और आनन्द होम का विवरण अपेक्षित है।

२०. रुद्रहोम को हम तैत्तिरीय संहिता, लाट्यायन श्रौतसूत्र आदि में वर्णित त्र्यम्बक होम का प्रतिनिधि मान सकते हैं। माध्यन्दिन संहिता का शतरुद्रिय नामक सोलहवां अध्याय भी इसी होम से संबद्ध है।

षष्ठ पटल में आशौच विधि निरूपित है। यह आशौच जाताशौच और शावाशौच के भेद से दो प्रकार का और पुनः अल्प, अधिक, पूर्ण और अपूर्ण के भेद से चार प्रकार का होता है। किसको कितने दिन का आशौच लगता है, इसको बताकर यहाँ कहा गया है कि ब्रह्मचारी, संन्यासी आदि को आशौच नहीं लगता। अनेक आशौचों के एक साथ आ पड़ने पर उसकी भी व्यवस्था यहां बताई गई है। यज्ञ, विवाह आदि शुभ अवसरों पर सद्य:शौच की विधि वर्णित है और कहा गया है कि सन्ध्यावन्दन, शिवार्चन आदि के अनुष्ठान में आशौच की प्रवृत्ति नहीं होती।

सप्तम पटल में आशौचविधि और प्रायश्चित्तविधि के साथ द्रव्यशुद्धि का भी विवरण दिया गया है। आत्महत्या करने वाले के लिये आशौच पालन, आराधन आदि निषिद्ध हैं। जो ऐसा करता है, उसके लिये तप्तकृच्छ्र प्रायश्चित्त का विधान है। उसका लक्षण भी यहाँ बताया गया है। पतित-संसर्ग, शृगाल-शुनक आदि से दष्ट, चण्डाल आदि के द्वारा हत व्यक्तियों के लिये तथा इनके वहन, खनन करने वालों के लिये भी यहाँ प्रायश्चित्त विहित हैं। आगे बताया है कि चक्रवाक आदि पक्षियों की, नकुल-मूषक आदि प्राणियों की [२१]हिंसा का भी प्रायश्चित्त करना पड़ता है। केश-कीट आदि से दूषित अन्न की, पात्रों की और भूमि आदि की शुद्धि की विधि को भी बताते हुए यहाँ मेध्य और अमेध्य इन्द्रियों की, शरीरगत मलों की और भस्म आदि की शुद्धि की विधि को दिखाते हुए अन्त में कहा गया है कि सोम, मधुपर्क, गुरुप्रसाद आदि कभी उच्छिष्ट नहीं होते।

चर्यापाद के अन्तिम आठवें पटल में महापातकों और उपपातकों के प्रायश्चित्त वर्णित हैं। प्रथमतः यहाँ अगम्यागमन के प्रायश्चित्तों का विधान है। बलात्कार से पीड़ित स्त्री की शुद्धि का स्वरूप बता कर यहाँ पादुकाताडन, बन्दीगृह के अन्न का भक्षण, अभक्ष्य पदार्थों के, एकोद्दिष्ट आदि श्राद्धान्न के भक्षण से जन्य, तथा सुरापान, क्षुरकर्म, प्रेतधूप आदि से उत्पन्न दोषों की निवृत्ति के लिये विविध प्रायश्चित्तों एवं शुद्धियों की व्यवस्था की गई है। अन्त में बताया गया है कि सावित्री जप आदि का प्रायश्चित्त विधि में विशेष महत्त्व है। [२२]वामदेव्य सूक्त, पुरुषसूक्त, रुद्रैकादशिनी, नीलरुद्र, त्रिसुपर्ण आदि का भी महत्त्व यहाँ वर्णित है। श्रद्धा का महत्त्व और शास्त्र की गोपनीयता का निर्देश करने के साथ यह पटल, पाद और ग्रन्थ भी समाप्त होता है।

चर्यापाद में वर्णित सभी विषय स्मृतियों और धर्मशास्त्र के निबन्ध ग्रन्थों में हमें इसी रूप में मिलते हैं। म. म. भारतरत्न पी.वी. काणे के इस विषय के महनीय एवं अतिविशिष्ट

---

२१. इस प्रकरण को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि वीरशैव धर्म पूरी तरह से अहिंसावादी है।

२२. "अस्य वामस्य" (ऋ० १.१६४; अथर्व० ९।९) इत्यादि अस्यवामीय सूक्त को ही यहाँ वामदेव्य सूक्त कहा गया है। "सहस्रशीर्षा पुरुषः" (ऋ० १०।९०; अथर्व० १९।६ तथा माध्य० ३१ अ०) यह पुरुष सूक्त अतिप्रसिद्ध है। रुद्रैकादशिनी रुद्राध्याय को ही कहते हैं। तैत्तिरीय आरण्यक (१०।१६) का "सर्वो रुद्रस्तस्मै रुद्राय नमोऽस्तु" इत्यादि सूक्त नीलरुद्र कहलाता है।

ग्रन्थ "धर्मशास्त्र का इतिहास" में ये विषय हमें व्याख्यात मिलते हैं। यहाँ उसी ग्रन्थ की सहायता से मूल ग्रन्थ में सभी आवश्यक स्थलों पर टिप्पणियाँ दे दी गई हैं। अतः अलग से उन विषयों की चर्चा अपेक्षित नहीं है। धर्मशास्त्र के ग्रन्थों में और वीरशैव मत में दो विषयों में मतभेद है। एक तो समाधि-संस्कार और दूसरा इष्टलिंग के आराधन में सूतक, रजोदोष आदि की अप्रवृत्ति। 'लिङ्गधारणचन्द्रिका' नामक ग्रन्थ में इन दोनों ही विषयों पर वीरशैव दृष्टि का वेद, पुराण और आगम शास्त्रों को उद्धृत करते हुए समर्थन किया गया है। हिन्दी अनुवाद के साथ यह ग्रन्थ जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी की शिवधर्म-ग्रन्थमाला के ३१वें पुष्प के रूप में प्रकाशित हो चुका है।

इस प्रकार हम यहाँ चन्द्रज्ञानागम के सभी अवधेय अंशों की ओर विज्ञ पाठकों का ध्यान आकृष्ट कर चुके हैं। हम देखते हैं कि आगम-तन्त्रशास्त्र की उपासना में मन्त्र का विशेष स्थान है। मन्त्र का जब तक पुरश्चरण नहीं किया जाता, तब तक वह सिद्धिदायक नहीं होता। पुरश्चरण का संक्षिप्त स्वरूप यहाँ (८।४८-५१) बताया गया है, किन्तु विषय के महत्त्व को देखते हुए उसके संक्षिप्त स्वरूप पर प्रकाश डालना उचित प्रतीत होता है।

पंचांग और दशांग के भेद से पुरश्चरण दो प्रकार का होता है। गुरुकृपा से प्राप्त मन्त्र को सिद्धिप्रद बनाने के लिये इसका अनुष्ठान अपेक्षित है। पंचांग पुरश्चरण के जप, होम, तर्पण, अभिषेक और ब्राह्मण भोजन ये पांच अंग हैं। दशांग पुरश्चरण में उक्त पांच अंगों के अतिरिक्त पटल, पद्धति, कवच, सहस्रनाम और स्तोत्र की गणना की जाती है। प्रत्येक मन्त्र के लिये शास्त्रों में निर्दिष्ट है कि उसका कितनी बार जप करना चाहिये। मन्त्र का जितनी बार जप किया जाता है, उसके दशांश से होम, उसके दशांश से तर्पण, उसके दशांश से अभिषेक[२३] (मार्जन) और उसके दशांश से ब्राह्मण(जंगम)भोजन कराया जाता है। इसका अभिप्राय यह है कि यदि हमें अपने इष्ट मन्त्र के पुरश्चरण के लिये उसका एक लाख बार जप करना है, तो इस जप के पूरा हो जाने के बाद उसी मन्त्र की १० हजार आहुतियों से होम करना पड़ेगा। एक हजार बार तर्पण, १०० बार मार्जन और अन्त में १० ब्राह्मणों (जंगमों) को भोजन कराने पर पुरश्चरण की यह विधि सम्पन्न होगी। यहाँ यह स्मरण रखना है कि होम, तर्पण और मार्जन उसी मन्त्र का उच्चारण करते हुए करना है और ब्राह्मण(जंगम)भोजन भी इसी अभिप्राय से कराना है कि ये साक्षात् मन्त्रस्वरूप

२३. अभिषेक (मार्जन) में इष्ट मन्त्र के बाद द्वितीयान्त देवता का नाम लेकर अन्त में "अभिषिञ्चामि नमः" जोड़कर अभिषेक मन्त्र बनाकर उससे अपने ही मस्तक पर दूर्वा इत्यादि से जल छिड़क कर इस विधि को पूरा किया जाता है। जैसे कि— "ॐ नमः शिवाय शिवमभिषिञ्चामि नमः" इस प्रकार मन्त्र की रचना कर उसके उच्चारण के साथ निर्दिष्ट संख्या में देवता के स्वरूप का ध्यान करते हुए मार्जन करे। इस विधि के अनेक पक्ष शास्त्रों में वर्णित हैं। उत्तम पक्ष यही है कि अपने-अपने सम्प्रदाय में प्रदर्शित विधि से ही सारे विधानों का अनुष्ठान किया जाय।

हैं। वीरशैव धर्म-दर्शन में गुरु और लिंग के समान जंगमों का भी अतिमहत्त्वपूर्ण स्थान है, यह बात चन्द्रज्ञानागम के क्रियापाद के चतुर्थ पटल से स्पष्ट हो जाती है।

पुरश्चरण के अन्तिम पांच अंगों में शास्त्रों में बताई गई पद्धति के अनुसार पटल, कवच, सहस्रनाम गैर स्तोत्र का पाठ प्रतिदिन किया जाता है और सविधि इष्टदेवता की पूजा की जाती है। तात्पर्य यह है कि उपासक वैदिक और तान्त्रिक उभयविध सन्ध्या की उपासना कर अपने इष्ट देवता की विधिपूर्वक पूजा करे। तब कवच, पटल इत्यादि का पाठ कर अन्त में पुरश्चरण के अंगभूत मन्त्र का निर्दिष्ट संख्या में जप करे। पुरश्चरण के लिये निर्दिष्ट संख्या में जप के पूरा हो जाने पर दशांश होम, तर्पण आदि का अनुष्ठान करे।

शास्त्रों में पुरश्चरण विधि का बड़ा विस्तार है। कोई व्यक्ति स्वयं पुरश्चरण करने में असमर्थ है, तो उस अवस्था में अपने प्रतिनिधि के द्वारा इसको सम्पन्न कराने का भी विधान है। पुरश्चरण के उचित स्थान की भी व्यवस्था शास्त्रों में की गई है। ब्राह्मण (जंगम) भोजन के अन्त में गुरु का पूजन कर लेने के साथ ही यह पुरश्चरण विधि पूरी होती है। पुरश्चरण विधि को पूरा करने के उपरान्त सविधि आराधित मन्त्र में ही मन्त्रचैतन्य का, मन्त्र की अधिष्ठानी देवता का स्वरूप प्रकट होता है। उस स्थिति में शिष्य, गुरु, मन्त्र और मन्त्रदेवता सब एकाकार हो जाते हैं, महालिंग में प्रतिष्ठित हो जाते हैं।।

शैवभारती शोध प्रतिष्ठान
जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी
महाशिवरात्रि, संवत् २०५० वि०

विद्वद्वशंवद
व्रजवल्लभ द्विवेदी
निदेशक



विषयानुक्रमणिका



ग्रन्थभागः

चर्यापादे

बलात्कारसंसर्गवतीनां स्त्रीणां प्रायश्चित्तम् — पादुकाताडन-बन्दीगृहान्नभक्षण-मांसभक्षणादि-जन्यपापप्रायश्चित्तम् — शूद्रान्न-सूतकान्नभक्षणप्राप्तपापप्रायश्चित्तम् — एकोद्दिष्ट-तत्त्वसंयोजनभुक्तान्नजन्यपापप्रायश्चित्तम् — सुरापान-लशुनादिभक्षण-जन्यपापप्रायश्चित्तम् — क्षुरकर्म-प्रेतधूमादिजन्यपातकप्रायश्चित्तम् — सावित्र्यादि-जपस्य महापातकनाशकत्वम् — श्रद्धायाः शिवसायुज्यप्रापकत्वम् — शास्त्रस्य गोपनीयता ।

परिशिष्टभागः



श्री जगद्गुरु विश्वाराध्य जनकल्याण प्रतिष्ठान द्वारा संचालित

शैवभारती शोध प्रतिष्ठान

डी० ३५/७७ जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी-२२१००१ (उ०प्र०)

संस्थापक

श्री जगद्गुरु विश्वाराध्य ज्ञानसिंहासनाधीश्वर श्री १००८ जगद्गुरु
डॉ० चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी जी महाराज

संरक्षक

प्रो० वि० वेङ्कटाचलम्,
कुलपति
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

निदेशक

पं० व्रजवल्लभ द्विवेदी
जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी

परामर्शदात्री समिति

१. प्रो० बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते, श्रीनिकेतनम्, एन-१६/४३ पत्रकार नगर, विनायका, वाराणसी-१०

२. डॉ० एस० बहुलकर, निदेशक दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना, केन्द्रीय तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी।

३. प्रो० रामचन्द्र पाण्डेय, बी० ३०/२२७ नगवा, वाराणसी-५

४. डॉ० सी० एस० कपाले, 'शिवरत्न' १०-२/३६ एस० बी० कालेज रोड, गुलबर्गा, कर्नाटक।

५. डॉ० एम० शिवकुमार स्वामी जी, अध्यक्ष संस्कृत विभाग, बंगलोर विश्वविद्यालय, बंगलोर, कर्नाटक।

६. डॉ० मल्लिकार्जुन परड्डी, अध्यक्ष संस्कृत विभाग, कर्नाटक विश्वविद्यालय, धारवाड़, कर्नाटक।

७. डॉ० एस० डी० पसारकर, प्राध्यापक, संगमेश्वर कालेज, सोलापुर, महाराष्ट्र।

८. पं० जी० उमापति शास्त्री, धर्मस्थल, कर्नाटक।

९. डॉ० रमा घोष, दर्शनाध्यापक आर्यमहिला महाविद्यालय, चेतगंज, वाराणसी।

चन्द्रज्ञानागमे उत्तरभागे

क्रिया-चर्यापादौ

चन्द्रज्ञानागमः

प्रथमः पटलः

कलधौताचलोत्तुङ्गशृङ्गरिङ्गन्निकेतनम् ।
धर्ममूर्तिधरं श्रीमन्महावृषभकेतनम् ॥१॥
अनन्तरुद्रप्रमथपरिषन्निकषोज्ज्वलम् ।
अनन्तरुद्रमासाद्य धिषणो धिषणोन्नतः ॥२॥
परिस्पृशन् श्रीपदाब्जपीठं मूर्ध्ना मुहुर्मुहुः ।
बद्धाञ्जलिः सुप्रसाद्य नीचैर्वाचमुवाच ह ॥३॥

बृहस्पतिरुवाच

भगवन् करुणासिन्धो सर्वज्ञानसमाश्रय ।
नाविष्कृताश्चेद् भवता स्फुटमागमसंहिताः ॥
जगत् किलान्धतामिस्रे निमज्जेद् ज्ञानवर्जितम् ॥४॥
अविज्ञायैव यो लोके भवदागमसंहिताः ।
विपश्चितं स्वं मनुते न तस्माद् विद्यते पशुः ॥५॥

सुमेरु पर्वत के शिखर पर जिनका लीलाधाम है, धर्म की जो साक्षात् मूर्ति हैं, जिनकी ध्वजा पर महावृषभ अंकित है, भगवान् रुद्र के प्रमथ गणों की विशाल सभा में जिनकी सर्वोत्तम स्थिति है, ऐसे भगवान् [१]अनन्तरुद्र के पास आकर बुद्धिमानों में श्रेष्ठ देवगुरु बृहस्पति उनके चरणकमलों में बार बार शिर नवाते हुए हाथ जोड़ कर उनके प्रसाद की प्राप्ति के लिये विनम्रतापूर्वक इस प्रकार प्रश्न करते हैं ॥१-३॥

बृहस्पति प्रश्न करते हैं—

हे करुणा के सागर, सभी प्रकार के ज्ञान के एकमात्र आश्रय, भगवन् ! यदि आपने आगम शास्त्र की विभिन्न संहिताओं का आविष्कार न किया होता, तो ज्ञान की ज्योति के अभाव में यह सारा जगत् भयंकर गाढ अन्धकार में, अज्ञान के सागर में डूब जाता ॥४॥ आपके द्वारा उपदिष्ट आगमशास्त्र की इन संहिताओं को बिना जाने जो व्यक्ति इस लोक में अपने को विद्वान् मानता है, उससे बढ कर अज्ञानी दूसरा नहीं

१. अनन्त, सूक्ष्म, शिवोत्तम, एकनेत्र, एकरुद्र, त्रिमूर्ति, श्रीकण्ठ और शिखण्डी नामक आठ विद्येश्वरों के नाम सिद्धान्तशिखामणि की टीका (३।४४) तथा अन्यत्र भी मिलते हैं। इनमें अनन्त मुख्य हैं। माया को क्षुब्ध कर ये ही मलिन सृष्टि के कर्ता माने गये हैं। अनन्तरुद्र के नाम से ये ही यहां अभिप्रेत हैं।

भवत्प्रसादसंपत्त्या भवदीयागमामृतम् ।
निपीयैवामरगुरुरभवं सिद्धसाधनः ॥६॥
आकर्णिता मया भागाश्चन्द्रज्ञानागताः शुभाः ।
बहवस्तदिह ब्रूहि कृपया शिवशासनम् ॥७॥
मोक्षधर्मा विशेषेण तत्रोच्यन्त इति श्रुतम् ।
अहं श्रुतेन येन स्यां विदिताशेषवेदनः ॥८॥

अनन्तरुद्र उवाच

युक्तं पृष्टं हि सुधिया त्रिदिवेशगुरो त्वया ।
शृणुष्वावहितो भूत्वा वक्ष्यामि शिवशासनम् ॥९॥

पशुपतिपदार्थनिर्वचनम्

ब्रह्माद्याः स्थावरान्तन्ताश्च देवदेवस्य शूलिनः ।
पशवः परिकीर्त्यन्ते संसारवशवर्तिनः ॥१०॥
तेषां पतित्वाद् विश्वेशः शिवः पशुपतिः स्मृतः ।
मलमायादिभिः पाशैः स बध्नाति पशून् पतिः ॥११॥

है ॥५॥ आपके प्रसाद (अनुग्रह) से प्राप्त, आपके द्वारा उपदिष्ट आगमों के अमृत रस का पान करके ही मैं देवताओं का गुरु बन सका हूँ, उनकी सारी समस्याओं के समाधान में समर्थ हो सका हूँ॥६॥ [२]चन्द्रज्ञान आगम के कल्याणकारी अनेक भागों को मैंने सुना है। अब इस आगम में भगवान् शिव का जो मुख्य उपदेश है, उसे आप मुझे सुनाइये ॥७॥ मैंने सुना है कि आगम के इस भाग में विशेष रूप से मोक्ष की प्राप्ति के उपायों का वर्णन किया गया है। यदि आप इस ज्ञान को मुझे सुनाते हैं, तो मैं सभी ज्ञातव्य वस्तुओं के ज्ञान से सम्पन्न हो सकूँगा ॥८॥

अनन्तरुद्र उत्तर देते हैं—

हे देवताओं के गुरु बृहस्पति! तुम बहुत समझदार हो। तुमने सही प्रश्न किया है। तुम सावधान होकर सुनो। मैं तुम्हें शिव के इस शासन को सुनाऊँगा॥९॥

ब्रह्मा से लेकर स्थावर तृणपर्यन्त सारे प्राणी देवताओं को अनुशासित रखने वाले त्रिशूलधारी भगवान् शिव के पशु कहलाते हैं। ये पशु सदा संसार के मायाजाल में फँसे रहते हैं ॥१०॥ इस पशुओं के पति (नियामक) होने से सारे विश्व के स्वामी

---

२. 'सिद्धान्त' नाम से प्रसिद्ध २८ शैवागमों में चन्द्रज्ञान परिगणित है। राजा भोजकृत तत्त्वप्रकाश की कुमारदेव कृत टीका में इसके कुछ वचन उद्धृत हैं। लुप्तागमसंग्रह के द्वितीय भाग में ये संगृहीत हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ इसी आगम का उत्तर भाग है। यहां बृहस्पति स्वयं स्वीकार करते हैं कि इसके अनेक भागों को मैंने सुना है। इससे भी उक्त बात की पुष्टि होती है।

स एव मोचकस्तेषां भक्त्या सम्यगुपासितः ।

चतुर्विंशतितत्त्वानां पाशत्वम्

चतुर्विंशतितत्त्वानि मायाकर्मगुणा अमी ॥
विषया इति कथ्यन्ते पाशा जीवनिबन्धनाः ॥१२॥
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तान् पशून् बद्ध्वा महेश्वरः ।
पाशैरेतैः पतिर्देवः कार्यं कारयति स्वकम् ॥१३॥

परशिवस्याज्ञया सर्वज्ञतत्त्वोत्पत्तिः

तस्याज्ञया महेशस्य प्रकृतिः पुरुषोचिताम् ।
बुद्धिं प्रसूते सा बुद्धिरहङ्कारमहङ्कृतिः ॥१४॥
इन्द्रियाणि दशैकं च तन्मात्रपञ्चकं तथा ।
शासनाद् देवदेवस्य शिवस्य शिवदायिनः ॥१५॥
तन्मात्राण्यपि तस्यैव शासनेन महीयसा ।
महाभूतान्यशेषाणि भावयन्त्यनुपूर्वशः ॥१६॥

भगवान् शिव पशुपति कहलाते हैं । ये मल, माया आदि पाशों से पशुओं (जीवों) को बांधे रखते हैं, इसी लिये ये इनके पति (स्वामी) कहलाते हैं ॥११॥

भगवान् शिव ही इन जीवों को इन पाशों (बन्धनों) से मुक्त भी कराते हैं। प्रकृति आदि २४ तत्त्व ही माया और कर्म की रस्सी से बुने गये विषय रूपी वे [३]पाश हैं, जिनसे कि ये जीवों को बाँधे रहते हैं ॥१२॥ ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब (तृण) पर्यन्त सभी पशुओं को इनके स्वामी भगवान् महेश्वर इन पाशों से बाँध कर इनसे अपना काम करवाते हैं ॥१३॥

भगवान् [४]महेश्वर की आज्ञा के अनुसार ही प्रकृति पुरुष के उपभोग के योग्य बुद्धि का प्रसवन करती है । वह बुद्धि अहंकार को पैदा करती है और उस अहंकार

---

३. मल, माया और कर्म नामक त्रिविध पाशों का उल्लेख आगे इसी पटल के ४५ वें श्लोक में किया गया है। शैव शास्त्र के सभी ग्रन्थों में इनका विवरण मिलता है। कुछ आचार्य तिरोधान शक्ति को लेकर पाशों की संख्या चार तथा अन्य महामाया का भी समावेश कर इनकी संख्या पांच मानते हैं, किन्तु काश्मीर के प्रत्यभिज्ञा दर्शन और वीरशैव दर्शन में भी इनकी संख्या तीन ही मानी गई है।

४. यहां सेश्वर सांख्य की पद्धति से सृष्टिप्रक्रिया वर्णित है। आगम शास्त्र की दृष्टि से यह भगवान् शिव के अशुद्ध सृष्टि है। शैवागमों में ३६ तत्त्व माने गये हैं। उनमें प्रथम पांच तत्त्व शुद्ध, आगे के सात तत्त्व शुद्धाशुद्ध और अन्तिम २४ तत्त्व अशुद्ध सृष्टि के अन्तर्भूत माने गये हैं। इन अन्तिम २४ तत्त्वों का ही यहां विवरण दिया गया है।

ब्रह्मादीनां तृणान्तानां देहिनां देहसंगतिम् ।
महाभूतान्यशेषाणि जनयन्ति शिवाज्ञया ॥१७॥

बुद्ध्यादीनां व्यापाराः

अध्यवस्यति वै बुद्धिरहङ्कारोऽभिमन्यते ।
चित्तं चेतयते चाऽपि मनः संकल्पयत्यपि ॥१८॥
श्रोत्रादीनि च गृह्णन्ति शब्दादीन् विषयान् पृथक् ।
स्वानेव नान्यान् देवस्य दिव्येनाज्ञाबलेन वै ॥१९॥
वागादीन्यपि यान्यासंस्तानि कर्मेन्द्रियाणि च ।
यथा स्वं कर्म कुर्वन्ति नान्यत् किञ्चिच्छिवाज्ञया ॥२०॥
शब्दादयोऽपि गृह्यन्ते क्रियन्ते वचनादयः ।
अविलङ्घ्या हि सर्वेषामाज्ञा शम्भोर्गरीयसी ॥२१॥

पञ्चभूतोत्पत्तिकथनम्

अवकाशमशेषाणां भूतानां संप्रयच्छति ।
आकाशः परमेशस्य शासनादेव सर्वगः ॥२२॥

से ११ इन्द्रियों की और ५ तन्मात्राओं की सृष्टि होती है। यह सब कल्याण कारी भगवान् देवदेव शिव के आदेश के अनुसार ही सम्पन्न होता है ॥१४-१५॥ उसी भगवान् शिव के महनीय शासन में इन ५ तन्मात्राओं से पंच महाभूतों की आनुपूर्वी से उत्पत्ति होती है ॥१६॥ ये महाभूत ही शिव की आज्ञा का अनुसरण करते हुए ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त समस्त देहधारियों के नाना प्रकार के देहों को उत्पन्न करते हैं॥१७॥

बुद्धि अध्यवसाय (निश्चय) करती है। अहंकार किसी भी पदार्थ में अपनापन जोड़ता है।[५]चित्त का धर्म चेतना प्रदान करना है और मन संकल्प का जनक है ॥१८॥ श्रोत्र आदि इन्द्रियां भगवान् शिव की आज्ञा के अनुसार शब्द आदि अपने अपने विषयों का ही ग्रहण करती हैं॥१९॥ वाक् आदि जो पांच इन्द्रियां हैं, वे कर्मेन्द्रियां कहलाती हैं। ये भी शिवाज्ञा का अनुसरण करती हुईं इनके लिये निर्धारित कर्मों का ही सम्पादन करती हैं, दूसरा कोई काम नहीं करतीं ॥२०॥ शब्द आदि विषयों का श्रोत्र आदि इन्द्रियों द्वारा ग्रहण किया जाता है। वचन आदि का वाक् आदि इन्द्रियों के द्वारा

५. सांख्य दर्शन में बुद्धि, अहंकार और मन नामक त्रिविध अन्तःकरण ही स्वीकृत हैं। वेदान्त शास्त्र में चित्त की भी अन्तःकरण में गणना की जाती है। तदनुसार ही यहां उसका समावेश किया गया है।

प्राणाद्यैश्च तथा नामभेदैरन्तर्बहिर्जगत् ।
बिभर्ति सर्वं शर्वस्य शासनेन प्रभञ्जनः ॥२३॥
हव्यं वहति देवानां कव्यं कव्याशिनामपि ।
पाकाद्यं च करोत्यग्निः परमेश्वरशासनात् ॥२४॥
सञ्जीवनाद्यं सर्वस्य कुर्वन्त्यापः शिवाज्ञया ।
विश्वम्भरा जगन्नित्यं धत्ते विश्वेश्वराज्ञया ॥२५॥

दिक्पालानां शिवाज्ञयैव प्रवृत्तिः

देवान् पात्यसुरान् हन्ति त्रिलोकानभिरक्षति ।
आज्ञया तस्य देवेन्द्रः सर्वदेवैरलङ्घ्यया ॥२६॥

उच्चारण किया जाता है, क्योंकि भगवान् शिव के गंभीर अनुशासन का कोई उल्लंघन नहीं कर सकता ॥२१॥

परमेश्वर के शासन का अनुसरण करता हुआ सर्वत्र विद्यमान आकाश समस्त प्राणियों को अवकाश (आश्रय) प्रदान करता है ॥२२॥ भगवान् शर्व (शिव) के शासन में विद्यमान पवन [६]प्राण आदि नामभेद से इस सारे जगत् की बाहर और भीतर से रक्षा करता है॥२३॥ परमेश्वर के शासन के अनुसार ही अग्नि देवताओं के लिये हव्य का और कव्याशी पितरों के लिये कव्य का वहन करती है। वही अग्नि मनुष्य के भोजन पकाने का साधन भी बनती है॥२४॥ शिव की आज्ञा के अनुसार ही जल सारे प्राणियों को जीवन (तृप्ति) प्रदान करते रहते हैं। इस विश्व को धारण करने में समर्थ यह पृथ्वी भी विश्वेश्वर की आज्ञा के अनुसार ही इस जगत् को धारण करती है॥२५॥

सभी देवताओं के द्वारा अलंघ्य भगवान् की आज्ञा का अनुसरण करते हुए ही देवेन्द्र [७] देवताओं की रक्षा, असुरों का संहार और इस त्रिलोकी की रक्षा करते हैं॥२६॥

---

६. सांख्यकारिका (श्लो. २९) में प्राण, अपान आदि पांच प्राणों को अन्तः करण की सामान्य वृत्ति माना गया है। सद्योजात शिवाचार्य भोगकारिका (श्लो. ३३) में अहंकार की संरम्भ नामक वृत्ति से पांच प्राणों की निष्पत्ति मानते हैं और अभिनव गुप्त (तन्त्रा. ९।२३१-२३३) भी इसी मत का अनुसरण करते हैं। वस्तुतः देखा जाय तो प्राण आदि के लिये उक्त स्थलों पर भी "शारीरा वायवः" (शरीर में स्थित वायु) इस प्रकार वायु शब्द ही प्रयुक्त है। अतः प्राण आदि को भी वायु का ही विस्तार माना जायगा।

७. इन्द्र आदि आठ दिक्पालों का यहां वर्णन किया गया है (श्लो. २६-३१)। अग्नि और पवन का ऊपर वर्णन हो जाने से यहां उनका समावेश नहीं किया गया। अमरकोश (१।६।३) में इनके नाम इस प्रकार दिये गये हैं—

इन्द्रो वह्निः पितृपतिर्नैर्ऋतो वरुणो मरुत् ।
कुबेर ईश पतयः पूर्वादीनां दिशां क्रमात् ॥

जीवतां व्याधिभिः पीडां मृतानां चैव यातनाः ।
अधार्मिकाणां धर्मेशः करोति शिवशासनात् ॥२७॥
निर्ऋतिर्विधिहीनानां फलं हरति कर्मणाम् ।
निशाचराधिपत्यं च कुरुते शङ्कराज्ञया ॥२८॥
आधिपत्यमपां नित्यं कुरुते वरुणोऽपि च ।
पाशैर्बध्नाति बध्यांश्च परमेश्वरशासनात् ॥२९॥
ददाति नित्यं यक्षेशो द्रविणं द्रविणेश्वरः ।
पुण्यानुरूपं भूतेभ्यः पुरशासनशासनात् ॥३०॥
करोति सम्पदः शश्वज्ज्ञानं चापि सुमेधसाम् ।
निग्रहं चाप्यसाधूनामीशानः शिवशासनात् ॥
धत्ते तु धरणीं मूर्ध्ना शेषः शिवनियोगतः ॥३१॥

शिव के शासन का अनुवर्तन करते हुए ही धर्मराज अधार्मिक व्यक्तियों को जीवितावस्था में नाना प्रकार की व्याधियों से पीड़ा पहुचाते हैं और मरने के बाद उनको नाना प्रकार की यातनाएं देते हैं ॥२७॥ बिना शास्त्रीय विधि के मनमाना आचरण करने वालों के समस्त कर्मों के फल को [८]निर्ऋति देवी (दुर्भाग्य देवता) अपहरण कर लेती है और शिव की आज्ञा से इन पर निशाचरों का आधिपत्य हो जाता है, अर्थात् ऐसे कर्म देवताओं की अपेक्षा राक्षसों के पोषक हो जाते हैं ॥२८॥ परमेश्वर के शासन के अनुसार ही वरुण देवता समुद्र आदि के जल पर अपना नियन्त्रण स्थापित करते हैं और अपराधियों की दण्ड देने के लिये उन्हें अपने वरुणपाश में बांधते हैं ॥२९॥ त्रिपुर पर अपना शासन स्थापित करने वाले भगवान् त्रिपुरारि शिव की आज्ञा के अनुसार ही यक्षेश धनपति कुबेर सभी प्राणियों को उनके पुण्य के अनुरूप नित्य धन प्रदान करते रहते हैं ॥३०॥ शिव की आज्ञा के अनुसार ही ईशान सज्जन पुरुषों को सदा सम्पत्ति और ज्ञान प्रदान करते रहते हैं और वे ही दुष्टों का निग्रह भी करते हैं। शिव के शासन के अनुसार ही भगवान् शेष अपने शिर पर पृथ्वी को धारण करते हैं । शिव की आज्ञा के अनुसार ही वे सज्जन पुरुषों को सदा सम्पत्ति और ज्ञान प्रदान करते रहते हैं । वे ही दुष्टों का निग्रह भी करते हैं ॥३१॥

---

८. निर्ऋति का अर्थ अलक्ष्मी=दरिद्रता है । ऋग्वेद में पापदेवता के अर्थ में इस शब्द का प्रयोग हुआ है—"दूतो निर्ऋत्या इदमाजगाम" (१०.१६०.१), यहां सायण का भाष्य इस प्रकार है—"निर्ऋत्याः पापदेवताया दूतोऽनुचरः" । यह नैर्ऋत्य कोण की स्वामिनी है । पीपल में इसकी पूजा का विधान है ।

शिवशासनादेव ब्रह्मादीनां सृष्ट्यादिकर्तृत्वम्

सृजत्यशेषमीशस्य शासनाच्चतुराननः ।
तिसृभिर्मूर्तिभिः स्वाभिः पाति चान्ते निहन्ति च ॥३२॥
विष्णुः पालयते विश्वं विश्वेश्वरनियोगतः ।
सृजते ग्रसते चापि स्वकाभिस्तनुभिस्तथा ॥३३॥
हरत्यन्ते जगत् सर्वं हरस्तस्यैव शासनात् ।
सृजत्यपि च विश्वात्मा त्रिधा भिन्नस्तु रक्षति ॥३४॥

शिवशासनादेव कालादयः प्रवर्तन्ते

कालः करोति सकलं कालः संहरति प्रजाः ।
कालः पालयते विश्वं कालकालस्य शासनात् ॥३५॥
त्रिभिरंशैर्जगद्बिभ्रत् तेजोभिर्वृष्टिमादिशन् ।
दिवि वर्षत्यसौ भानुर्देवदेवस्य शासनात् ॥३६॥

ईश्वर के शासन में स्थित होकर ही चतुर्मुख ब्रह्मा त्रिमूर्ति [९] का स्वरूप धारण कर इस सारे जगत् की सृष्टि करते हैं, वे ही इसकी रक्षा करते हैं और अन्त में उसका संहार भी कर देते हैं ॥३२॥ विश्वेश्वर से नियुक्त विष्णु इस विश्व का पालन करते हैं। अपनी विभिन्न मूर्तियों से वे इसकी सृष्टि भी करते हैं और वे ही इसको निगल भी जाते हैं ॥३३॥ उस विश्वेश्वर के शासन में ही स्थित भगवान् हर (रुद्र) अन्त में सारे जगत् का संहार कर देते हैं। अपनी त्रिधा भिन्न मूर्ति से सारे विश्व में निवास करने वाले ये शिव इसकी सृष्टि और रक्षा करने में भी समर्थ हैं ॥३४॥

काल के भी काल भगवान् शिव के शासन के अनुसार ही काल सारी प्रजा की सृष्टि करता है, वही उसका नाश भी कर डालता है और इसका पालन करने वाला भी वही है ॥३५॥ उक्त तीन अंशों (ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र) से आप्यायित हुए सूर्यदेव भगवान् शिव के शासन में रहते हुए ही सारे जगत् को प्रकाश और वर्षा प्रदान करते हुए आकाश में विचरण करते हैं ॥३६॥ चन्द्रभूषण भगवान् शिव की आज्ञा के अनुसार ही चन्द्रदेव समस्त ओषधियों को आप्यायित करते हैं, सभी प्राणियों को प्रसन्नता प्रदान करते हैं। देवगण [१०]सोम आदि में सोमलता के रूप में इनका पान भी करते हैं ॥३७॥

---

९. कुमारसंभव महाकाव्य कें महाकवि कालिदास ने इस त्रिमूर्ति का एक ही मूर्ति के रूप में इस प्रकार वर्णन किया है—"एकैव मूर्तिर्बिभिदे त्रिधा सा सामान्यमेषां प्रथमावरत्वम् । विष्णोर्हरस्तस्य हरिः कदाचिद् वेधास्तयोस्तावपि धातुराद्यौ ॥"(७।४४)

१०. सोमयाग में सोमलता के रस की आहुति दी जाती है। सोमलता का सोम (चन्द्रमा) से संबन्ध माना जाता है। इस याग में सोमलता के रस का पान कर देवगण तृप्त होते हैं। यह लता आजकल उपलब्ध नहीं होती। इसके विकल्प के रूप में आजकल पूतीका नाम औषधि के रस की आहुति दी जाती है।

पुष्यत्योषधिजातानि भूतानि ह्लादयत्यपि ।
देवैश्च पीयते चन्द्रश्चन्द्रभूषणशासनात् ॥३७॥
आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ मरुतस्तथा ।
खेचरा ऋषयः सिद्धा भोगिनो मनुजा मृगाः ॥३८॥

शिवशासनादेव स्थावरजङ्गमादीनां सृष्टिः

पशवः पक्षिणश्चैव कीटाद्याः स्थावराणि च ।
नद्यः समुद्रा गिरयः काननानि सरांसि च ॥३९॥
वेदाः साङ्गाश्च शास्त्राणि मन्त्राः सोममखादयः ।
कालाग्न्यादिशिवान्तानि भुवनानि सहाधिपैः ॥
ब्रह्माण्डान्यप्यसंख्यानि तेषामावरणानि च ॥४०॥
वर्तमानान्यतीतानि भविष्यन्त्यपि कृत्स्नशः ।
दिशश्च विदिशश्चैव कालभेदाः कलादयः ॥४१॥

---

[११]द्वादश आदित्य, [१२]आठ वस्तु, [१३]एकादश रुद्र [१४]दो अश्विनी कुमार, [१५]मरुद्गण, आकाशचारी जीव, ऋषिगण, सिद्धगण, सर्पगण, मनुष्य और मृगगण॥३८॥

पशु, पक्षी, कीट-पतंग, स्थावर (वृक्ष, पर्वत आदि), नदी, समुद्र, पहाड़, वन और सरोवर (तालाब) ॥३९॥ [१६]छः अंगों के साथ चार वेद [१७]नाना प्रकार के शास्त्र, नाना प्रकार के मन्त्र , सोम आदि याग, अपने अधिपतियों के साथ [१८]कालाग्नि से लेकर शिव पर्यन्त समस्त भुवन, असंख्य ब्रह्माण्ड और उनके आवरण ॥४०॥ वर्तमान,

---

११. इन्द्र, धाता, भग, त्वष्टा, मित्र, वरुण, अर्यमा, विवस्वान्, सविता, पूषा, अंशुमान् और विष्णु —ये ही बारह आदित्य हैं।

१२. महाभारत के अनुसार धर, ध्रुव, सोम, विष्णु, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास —ये आठ वसु हैं। भागवत में इनके नाम ये हैं— द्रोण, प्राण, ध्रुव, अर्क, अग्नि, दोष, वस्तु और विभावसु।

१३. अज, एकपात्, अहिर्बुघ्न्य, पिनाकी, अपराजित, त्र्यम्बक, महेश्वर, वृषाकपि, शंभु, हरण और ईश्वर— ये एकादश (ग्यारह) रुद्र हैं।

१४. अश्विनीकुमार-युगल देवताओं के वैद्य माने जाते हैं। इनके नाम नासत्य और दस्र हैं।

१५. आवह, प्रवह आदि सात वातस्कन्धों में से प्रत्येक में सात-सात मरुत् स्थित हैं। सब मिलाकर इनकी संख्या ४९ है। वेद, पुराण आदि में इनका ही मरुद्गण के रूप में वर्णन है।

१६. शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छन्द-ये वेद के छः अंग हैं।

१७. ऋक्, यजुः, साम और अथर्व— ये चार वेद हैं। ऋक्, यजुः और साम त्रयी के नाम से प्रसिद्ध हैं।

१८. कालाग्नि से लेकर अनुत्तर शिव पर्यन्त २२४ भुवनों का वर्णन शैवागमों में मिलता है। तन्त्रयात्रा (पृ. २६-२७) में इनका विवरण देखा जा सकता है। विभिन्न आगमों में इनकी विभिन्न संख्याएं भी मिलती हैं।

सर्वं शिवशासनादेव प्रवर्तते

यच्च किञ्चिज्जगत्यस्मिन् दृश्यते श्रूयतेऽपि वा ।
तत्सर्वं शङ्करस्याज्ञाबलेन समधिष्ठितम् ॥४२॥
आज्ञाबलात्तस्य धरा स्थितेह धराधरा वारिधराः समुद्राः ।
ज्योतिर्गणाः शक्रमुखाश्च देवाः स्थिरं चरं वा चिदचिद्यदस्ति ॥४३॥

बन्धमोक्षौ

एतावतां पशूनां हि द्विपदां च चतुष्पदाम् ।
ईशः शिवो बन्धमोक्षौ तद्वशे तिष्ठतो ध्रुवम् ॥४४॥

दीक्षया शिवप्रसादप्राप्तिः

अनन्तजन्ममरणकारणात् पाशसंचयात् ।
मुमुक्षुराचरेद्दीक्षां शाम्भवीं पाशकृन्तिनीम् ॥४५॥
न विना तत्प्रसादेन प्राणिनां बन्धविच्युतिः ।
लभ्यते तत्प्रसादोऽपि नानया दीक्षया विना ॥
वेदानुशासनमिदमेतद् वै शिवशासनम् ॥४६॥

अतीत, और भविष्य में होने वाले अथवा हुए समस्त पदार्थ, दिशाएं, विदिशाएं और कला आदि कालभेद अथवा कालभेद और कलाभेद ॥४१॥

जो कुछ भी इस जगत् में दिखाई पड़ता है अथवा जिसके विषय में सुनाई पड़ता है, वह सब कुछ भगवान् शंकर की आज्ञा के बल से ही टिका हुआ है।॥४२॥ उस भगवान् शंकर की आज्ञा से ही यहां पृथिवी टिकी हुई है। धरा (पृथ्वी) को स्थिर रखने वाले पर्वत, जल को धारण करने वाले समुद्र, आकाश में स्थित चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र आदि ज्योतिर्गण, इन्द्र आदि देवता ही क्या, इस जगत् के यावत् स्थावर-जंगम, जड़ और चेतन पदार्थ हैं, वे सब उस भगवान् शिव के शासन में ही स्थित हैं ॥४३॥

इन सब दो पैर वाले अथवा चार पैर वाले पशुओं के स्वामी भगवान् शिव ही है। इन्हीं के वश में उनके बन्ध और मोक्ष की व्यवस्था है, यह ध्रुव सत्य है ॥४४॥

अनन्त जन्म और मरण की प्रक्रिया में पशुओं के मल, माया, कर्म आदि पाश संचित होते जाते हैं। इन पाशों को काट डालने वाली दीक्षा ही मुमुक्षु (मोक्ष की इच्छावाले) के लिये एक मात्र सहारा है।॥४५॥ भगवान् शिव के [१९]प्रसाद (अनुग्रह) के सिवाय प्राणी को इन पाशों के बन्धनों से छुटकारा नहीं मिलता और उनका प्रसाद दीक्षा के बिना प्राप्त नहीं किया जा सकता। यही वेदों का अनुशासन (उपदेश) है और यही शिव की भी आज्ञा है।॥४६॥

---

१९. सृष्टि, स्थिति, संहार, निग्रह और अनुग्रह — ये भगवान् शिव के पांच कृत्य हैं। आगमशास्त्र के सभी ग्रन्थों में और शिवपुराण में भी इनका विवरण मिलता है। यहां अनुग्रह को प्रसाद कहा गया है। वीरशैव दर्शन में इस शब्द का अन्य अर्थों में भी प्रयोग मिलता है।

शाम्भवव्रतस्य भवनिवारकत्वम्

वेधामनुक्रियाभिख्यदीक्षात्रितयशोभितम् ।
षडध्वशुद्धिकलितं गुरुकारुण्यसंभृतम् ॥
भस्मरुद्राक्षश्रीलिङ्गधारणात्मकमुत्तमम् ॥४७॥
शाम्भवव्रतमेतद्धि वेदशास्त्रैकचोदितम् ।
इदं शिवप्रसादैककारणं भववारणम् ॥४८॥
एकैकमपि चास्याङ्गं मुक्तिदं कीर्तितं श्रुतौ ।
किमु वाच्यं नु सर्वाङ्गकलितं मोक्षदं त्विति ॥४९॥

इति श्रीचन्द्रज्ञानागमे उत्तरभागेऽनन्तरुद्रबृहस्पतिसंवादे शिवशासने क्रियापादे शिवाधिक्यकथनं नाम प्रथमः पटलः ॥१॥

वेदों और शास्त्रों के द्वारा उपदिष्ट यह उत्तम शांभव व्रत[२०] वेधा, मनु (मन्त्र) और क्रिया नाम की त्रिविध दीक्षा [२१]से शोभित है, [२२]षडध्वशुद्धि से पवित्र है, गुरु की करुणा से ओतप्रोत है। इसमें शास्त्रोपदिष्ट विधि से भस्म, रुद्राक्ष और इष्टलिंग को धारण किया जाता है । शिव के अनुग्रह की प्राप्ति का यह व्रत एकमात्र कारण है । इसके आचरण से भक्त भवसागर से मुक्त हो जाता है ॥४७-४८॥ श्रुति (वेद और आगम शास्त्र) में इसका एक एक अंग भी मुक्ति का कारण माना गया है । फिर सभी अंगों का यदि एक साथ अनुष्ठान किया जाय, तो फिर मोक्ष की प्राप्ति के लिये कहना ही क्या है? अर्थात् अवश्य ही अतिशीघ्र मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है ॥४९॥

इस प्रकार अनन्त रुद्र और ब्रहस्पति के संवाद के रूप में आगत श्रीचन्द्रज्ञानागम नामक इस शिवशास्त्र के उत्तर भाग के क्रियापाद का यह शिवाधिक्य कथन *नाम का प्रथम पटल समाप्त हुआ ।*

---

२०. यहां संक्षेप में निर्दिष्ट शांभव व्रत का इस आगम के आगे के पटलों में अष्टावरण, पंचाचार आदि के रूप में विशद विवेचन मिलता है ।

२१. वेधा, मन्त्र और क्रिया नामक त्रिविध दीक्षा का निरूपण सिद्धान्तशिखामणि (६।११-२१) में गुरुकारुण्यस्थल का वर्णन करते समय किया गया है।

२२. शिव और शक्ति का शास्त्रों में शब्द और अर्थ के जैसा अविनाभाव संबन्ध माना गया है। महाकवि कालिदास ने रघुवंश के प्रथम मंगल श्लोक में पार्वती और परमेश्वर की इसी रूप में स्तुति की है। सृष्टि के समय शब्द का वर्ण, पद और मन्त्र के रूप में तथा अर्थ का कला, तत्त्व और भुवन के रूप में विस्तार होता है। यह विस्तार ही षडध्वात्मक संसार के नाम से व्यवहृत होने लगता है। दीक्षा देते समय आचार्य शिष्य के शरीर में स्थित इन षड्विध अध्वाओं की शुद्धि का भी विधान करता है। शैव शास्त्रों में इसका विस्तार से वर्णन मिलता है। तन्त्रालोक के ६-१२ आह्निकों में षडध्वशुद्धि की प्रक्रिया विस्तार से देखी जा सकती है।



द्वितीयः पटलः

बृहस्पतिरुवाच

सर्वज्ञानसुधाम्बोधे करुणैकविभूषण ।
शाम्भवीयव्रताङ्गानां माहात्म्यं विनिबोधय ॥१॥

अनन्तरुद्र उवाच

अष्टावरणानि

गुरुर्लिङ्गं जङ्गमश्च तीर्थं चैव प्रसादकः ।
भस्मरुद्राक्षमन्त्राश्चेत्यष्टावरणसंज्ञिताः ॥२॥
इमानि शिवभक्तानां भवदोषततेः सदा ।
निवारणैककार्याणि ख्यातान्यावरणाख्यया ॥३॥

१. गुरुस्वरूपं महिमा च

अष्टानामादितस्त्वेषां स्वरूपं महिमाऽपि च ।
संग्रहेण प्रवक्ष्यामि श्रृणुष्वैकाग्रचेतसा ॥४॥

बृहस्पति प्रश्न करते हैं—

हे सभी प्रकार के ज्ञानामृत के समुद्र, एकमात्र करुणा को ही भूषण के रूप में धारण करने वाले अनन्तरुद्र ! आप मुझे इस शांभव व्रत के अंगों के माहात्म्य को समझाइये ॥१॥

अनन्तरुद्र उत्तर देते हैं—

गुरु, लिंग, जंगम, तीर्थ, प्रसाद, भस्म, रुद्राक्ष और मन्त्र— ये आठ अंग अष्टावरण के नाम से प्रसिद्ध हैं॥२॥ ये आठ अंग शिवभक्तों के सांसारिक दोषों के समूह को उनसे सदा दूर रखते हैं । इसीलये ये [१]आवरण के नाम से प्रसिद्ध हैं॥३॥

इन आठों का मैं क्रमशः संक्षेप में प्रारंभ से अन्त तक स्वरूप और माहात्म्य बता रहा हूँ । इसको तुम एकाग्र मन से सुनो॥४॥ मोक्ष की प्राप्ति के लिये यदि किसी को दीक्षा लेनी है, तो वह गुरु से ही मिल सकती है । बिना गुरु की सहायता के कोई

---

१. डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामीजी ने अपने हिन्दी ग्रन्थ "अष्टावरण विज्ञान" में आवरण शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है-"आव्रियते देहादिकं येन तद् आवरणम्" यह आवरण शब्द की व्युत्पत्ति है। इसके ढकना, छिपाना, घेरना आदि अनेक अर्थ होते हैं। आवरण के दो प्रयोजन हैं— पहला किसी को वस्तु का वास्तविक ज्ञान न होने देना और दूसरा सभी प्रकार की विनाशकारी शक्तियों से रक्षा करना । इस प्रकार आवरण शब्द से स्वरूप का आच्छादन और रक्षा का कवच—ये दोनों अर्थ सिद्ध होते हैं" (पृ.३)। प्रस्तुत प्रकरण में द्वितीय अर्थ प्रधान है।

मोक्षस्य दीक्षासंप्राप्त्यै गुरुः स्यान्मूलकारणम् ।
न विना गुरुणा सिद्ध्यै साधनानि भवन्त्यलम् ॥५॥
शिष्यस्तु शिक्षणीयत्वाद् गुरुर्गौरवकारणम् ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन गुरोर्गौरवमाचरेत् ॥६॥
यो गुरुः स शिवः प्रोक्तो यः शिवः स गुरुः स्मृतः ।
गुरुर्वा शिव एवाथ विद्याकारेण संस्थितः ॥७॥

शिव-विद्या-गुरूणां समानफलदत्वम्

यथा शिवस्तथा विद्या यथा विद्या तथा गुरुः ।
शिवविद्यागुरूणां च पूजया सदृशं फलम् ॥८॥
सर्वदेवात्मकश्चासौ सर्वमन्त्रमयो गुरुः ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन तस्याज्ञां शिरसा वहेत् ॥९॥

गुर्वाज्ञापालनेन सत्फलप्राप्तिः

श्रेयोऽर्थी यदि गुर्वाज्ञां मनसाऽपि न लङ्घयेत् ।
गुर्वाज्ञापालको यस्माद् ज्ञानसंपत्तिमश्नुते ॥१०॥

भी साधन फल-प्राप्ति में सहायक नहीं हो सकता ॥५॥ शिष्य को गुरु शिक्षा देता है , शिष्य के लिये गुरु गौरव का कारण बनता है, शिष्य के गौरव को बढाता है । इस लिये शिष्य को चाहिये कि वह सभी प्रकार से गुरु के प्रति आदरभाव प्रदर्शित करे ॥६॥ जो गुरु है, वही शिव कहलाता है और जो शिव है वही गुरु माना गया है । गुरु हो अथवा शिव, विद्या (मन्त्र) के रूप में इन दोनों की स्थिति मानी गई है, अर्थात् विद्या इन दोनों से भिन्न नहीं है ॥७॥

जैसे शिव हैं, वैसी ही विद्या (मन्त्र) है और जैसी विद्या (मन्त्र) है, वैसे ही गुरु भी हैं । इस प्रकार [२]शिव, विद्या और गुरु की पूजा करने से समान फल की प्राप्ति होती है ॥८॥ गुरु सर्वदेवात्मक तथा सर्वमन्त्रात्मक हैं, अर्थात् सभी देवता और मन्त्र गुरु के शरीर में स्थित हैं । इसलिये मनुष्य को चाहिये कि वह सभी तरह से गुरु की आज्ञा को सिर नवाकर उसका पालन करे॥९॥

अपना कल्याण चाहने वाला व्यक्ति गुरु की आज्ञा का उल्लंघन करने की बात मन में भी न सोचे, क्योंकि गुरु की आज्ञा का पालन करने वाला व्यक्ति ज्ञान के खजाने को पा जाता है॥१०॥ चलते हुए, बैठ कर, सोते समय, भोजन करते समय, व्यक्ति जो कुछ काम करता है, गुरु के सामने रहने पर वह सब गुरु की आज्ञा के अनुसार

२. योगिनीहृदय (२.४८-६८) में निगर्भार्थ और कौलिकार्थ का निरूपण करते समय शिव, विद्या (मन्त्र) और गुरु के साथ शिष्य (आत्मा) का भी अभेद स्थापित किया गया है ।

गच्छंस्तिष्ठन् स्वपन् भुञ्जन् यद्यत्कर्म समाचरेत् ।
समक्षं यदि कुर्वीत तत्सर्वं गुर्वनुज्ञया ॥११॥
गुरोर्गेहे समक्षे वा न यथेष्टासनो भवेत् ।
गुरुर्देवो यतः साक्षात् तद्गृहं देवमन्दिरम् ॥१२॥
पापिनां च यथा संगात् तत्पापफलभाग् भवेत् ।
तद्वदाचार्यसङ्गेन तद्धर्मफलभाग् भवेत् ॥१३॥
यथेह वह्निसंपर्कान्मलं त्यजति काञ्चनम् ।
तथैव गुरुसंपर्कात् पापं त्यजति मानवः ॥१४॥
यथा प्रज्वलितो वह्निर्निष्ठां काष्ठस्य निर्दहेत् ।
तथाऽयमपि सन्तुष्टो गुरुः पापं क्षणाद् दहेत् ॥१५॥

गुरोः क्रोधेन सर्वनाशः

मनसा कर्मणा वाचा गुरोः क्रोधं न कारयेत् ।
तस्य क्रोधेन दह्यन्ते ह्यायुःश्रीर्ज्ञानसत्क्रियाः ॥१६॥
तत्क्रोधकारिणो ये स्युस्तेषां यज्ञाश्च निष्फलाः ।
यमाश्च नियमाश्चैव नात्र कार्या विचारणा ॥१७॥

ही करे ॥११॥ गुरु के घर पर अथवा उसके सामने रहने पर व्यक्ति मनमाना आचरण न करे, क्योंकि गुरु साक्षात् देवता है और उसका घर साक्षात् देवमन्दिर है॥१२॥ पापियों के संसर्ग से जैसे व्यक्ति उनके पापों के फल का भोक्ता हो जाता है, उसी तरह से आचार्य के सम्पर्क से वह उसके शुभ कर्मों का भी फल प्राप्त कर सकता है॥१३॥ जैसे यहाँ संसार में अग्नि के संम्पर्क से सोना अपनी मलिनता का त्याग कर देता है, उसी तरह से गुरु के सम्पर्क से मनुष्य अपने सारे पापों का त्याग कर देता है॥१४॥ जैसे प्रज्वलित अग्नि लकड़ी को पूरी तरह से जला डालती है, उसी तरह से यह सन्तुष्ट गुरु भी व्यक्ति के सारे पापों को क्षणमात्र में भस्म कर डालता है ॥१५॥

मनुष्य को चाहिये कि वह मन, वचन और कर्म से ऐसा कोई कार्य न करे कि गुरु को क्रोध आवे, क्योंकि गुरु के क्रोध में मनुष्य की आयु, लक्ष्मी, ज्ञान और शुभ कर्म-ये सब कुछ भस्म हो जाते हैं ॥१६॥ जो मनुष्य गुरु को अकारण क्रोध दिलाता है, उसके यज्ञ-याग आदि सारे शुभ कर्म निष्फल हो जाते हैं। उसका [३]अहिंसा आदि

---

३. पातंजल योगसूत्र (२।३०) में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह नामक पांच यम निरूपित हैं।

गुरोर्विरुद्धं यद्वाक्यं न वदेज्जातुचिन्नरः ।
वदेद् यदि महाघोरे रौरवे पतति ध्रुवम् ॥१८॥
नैर्गुण्ये ख्यापिते तस्य नैर्गुण्यशतभाग्भवेत् ।
गुणे तु ख्यापिते तद्वत् सर्वं पुण्यफलं भवेत् ॥१९॥
गुरोर्हितं प्रियं कुर्यादादिष्टो वा नरः सदा ।
असमक्षं समक्षं वा तस्य कार्यं समाचरेत् ॥२०॥

गुरोरागमने शिष्यस्याचरणम्

गुरुं स्वगृहमायान्तं दृष्ट्वा भक्तियुतो जनः ।
नत्वा तदासनं दत्त्वा चासीत तदनुज्ञया ॥२१॥
स्वाचार्यचरणद्वन्द्वप्रक्षालितजलं सदा ।
यः पिबेद् धारयेद्भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२२॥
चन्दनं चाक्षतं पुष्पं स्वर्णं ताम्बूलमम्बरम् ।
पात्रे निधाय गुरवे शिष्यो दद्यान्न पाणिना ॥२३॥

यमों और शौच आदि नियमों [४] का पालन करना भी व्यर्थ हो जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥१७॥ जो वाक्य गुरु के विरुद्ध जाता हो, उसका उच्चारण मनुष्य कभी न करे। यदि वह ऐसा करेगा, तो अवश्य ही रौरव नरक में गिरेगा ॥१८॥ यदि कोई व्यक्ति गुरु की निर्गुणता (दोष) का प्रचार करता है, तो वह स्वयं सैकड़ों निर्गुणताओं (दोषों) का खजाना बन जाता है। इसी तरह से गुरु के गुणों की प्रशंसा करने पर वह सभी तरह के पुण्यफल का भागी बनता है ॥१९॥ मनुष्य गुरु की आज्ञा के अनुसार अथवा बिना कुछ कहे भी सदा गुरु के हितकारी और प्रिय कार्यों को उनके सामने अथवा परोक्ष में भी सदा करता रहे ॥२०॥

गुरु को अपने घर की तरफ आते हुए देख कर मनुष्य भक्तिभावपूर्वक उनको प्रणाम करे और उनको योग्य आसन देकर उनकी आज्ञा मिलने पर स्वयं बैठे ॥२१॥ अपने आचार्य के दोनों चरणों को धोकर जो व्यक्ति उस चरणोदक को पीता है और भक्तिभावपूर्वक उससे अपने शरीर को प्रोक्षित करता है, वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है ॥२२॥ शिष्य को चाहिये कि वह चन्दन, अक्षत, पुष्प, सुवर्ण, ताम्बूल अथवा वस्त्र, जो कुछ भी गुरु को निवेदित करे, उसे पात्र में रखकर दे, खाली हाथ से नहीं

---

४. पातंजल योगसूत्र (२.३२) में ही शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान नामक पांच नियम बताए गये हैं। अनेक पुराणों में यम और नियम के दस-दस भेद वर्णित हैं। लकुलीश पाशुपतसूत्र के कौण्डिन्यभाष्य (१.९) में, विशुद्धमुनि के यमप्रकरण नामक ग्रन्थ में और गणकारिका एवं उसकी भासर्वज्ञ कृत टीका में भी इनका स्वरूप मिलता है।

संभोजयित्वा स्वगुरुं पश्चाद् भुञ्जीत बुद्धिमान् ।
गुरोः पुरस्ताद्यो भुङ्क्ते गुरुद्रोही स उच्यते ॥२४॥
ताम्बूलमुत्तमं तस्मै ततः पात्रेण दापयेत् ।
पश्चादिष्टानि वस्तूनि दत्त्वा नत्वा क्षमापयेत् ॥२५॥
शुभकार्येषु सर्वेषु विवाहादिषु भक्तितः ।
गुरुमभ्यर्चयेच्छिष्यो वस्त्रैर्हैमाङ्गुलीयकैः ॥२६॥
दरिद्रश्चोदितेष्वेषु निजशक्तिमवञ्चयन् ।
अवश्यमर्चयेच्छिष्यो गुरुं लब्धधनेन वा ॥२७॥

गुरुयात्राफलाधिक्यम्

गुरुयात्रा देवयात्रा तीर्थयात्रेति च त्रिधा ।
आसां त्रिविधयात्राणां गुरुयात्रा फलाधिका ॥२८॥
गुरुसंदर्शनार्थाय भक्त्या यात्रां करोति यः ।
पुण्यदेही स विज्ञेयः समस्तामरवल्लभः ॥२९॥
शिष्यो गुरुस्थितं ग्रामं प्रविशन् वाहनादिकम् ।
वर्जयेद् गृहसामीप्ये तथा वै पादुकानि च ॥३०॥

॥२३॥ बुद्धिमान् व्यक्ति को चाहिये कि वह अपने गुरु को भोजन कराने के उपरान्त ही स्वयं भोजन करे । जो व्यक्ति गुरु से पहले स्वयं भोजन कर लेता है, वह गुरु-द्रोही कहलाता है॥२४॥ भोजन के उपरान्त गुरु को पात्र में रखकर उत्तम ताम्बूल देना चाहिये। इसके बाद इष्ट वस्तुओं को समर्पित कर उनसे क्षमाप्रार्थना करनी चाहिये॥२५॥ विवाह आदि सभी शुभ अवसरों कर भक्तिभाव से शिष्य को गुरु के लिये वस्त्र एवं सुवर्ण की अंगूठी आदि आभरणों को समर्पित कर उनका पूजन करना चाहिये॥२६॥ दरिद्र होने पर भी शिष्य को चाहिये कि वह अपनी शक्ति के अनुसार गुरु की ऊपर बताई गई विधि से जो कुछ उसे उपलब्ध हो, उससे अवश्य आराधना करे॥२७॥

गुरुयात्रा, देवयात्रा और तीर्थयात्रा-यह तीन प्रकार की यात्रा होती है । इन त्रिविध यात्राओं में गुरु के दर्शन के लिये की गई यात्रा सबसे अधिक फल देने वाली है ॥२८॥ जो व्यक्ति गुरु के दर्शन के लिये भक्तिपूर्वक यात्रा करता है, उसे पुण्यवान् माना जाता है । वह समस्त देवताओं का प्रिय हो जाता है॥२९॥ शिष्य को चाहिये कि वह जब उस ग्राम में प्रवेश करे, जहां कि गुरु निवास करते हैं, तब अपने वाहन से उतर जाय और गुरु के घर के पास आने पर पादुका भी उतार दे॥३०॥

गुरुसेवाविधानम्

गुरुं दिदृक्षुर्यः शिष्यः सद्भक्त्याऽनुदिनं मुदा ।
रिक्तपाणिर्न संपश्येद्यथा राजा तथा गुरुः ॥३१॥
फलं प्रसूनं ताम्बूलमन्यत् किमपि वस्तु च ।
तेष्वेकं गुरवे दत्त्वा नमस्कुर्यात् ततो गुरुम् ॥३२॥
श्रीमानपि तपस्वी च शास्त्रज्ञः कुलशीलवान् ।
कुर्याद्दण्डनमस्कारं निर्लज्जो गुरुसन्निधौ ॥३३॥
उपचारेषु सर्वेषु द्वावेवात्यन्तशोभनौ ।
प्रियवाणी प्रणामश्च तौ विनाऽन्ये वृथा स्मृताः ॥३४॥

गुरुप्रदक्षिणा

अग्रे दृष्ट्वा नमस्कृत्य प्रदक्षिणमनुस्मरन् ।
प्रदक्षिणं च कुर्वीत यथा शक्त्यनुसारतः ॥३५॥
प्रदक्षिणज्ञो यो धीमान् न तु दीर्घपदं न्यसेत् ।
न गच्छेत् त्वरितो धीमान् न वदेदितरैः सह ॥३६॥
पदे पदान्तरं न्यस्य करौ चलनवर्जितौ ।
स्तुतिं वाचा हृदा ध्यानमेवं कुर्यात् प्रदक्षिणम् ॥३७॥

जो शिष्य भक्तिपूर्वक प्रतिदिन प्रसन्नता से भरा हुआ गुरु का दर्शन करना चाहता है, उसे चाहिये कि वह खाली हाथ गुरु के पास न जाय, क्योंकि राजा के समान ही गुरु भी मान्य होता है।।३१।। अतः फल, पुष्प, ताम्बूल अथवा जो कोई भी वस्तु सरलता से मिल सके, उनमें से किसी एक को गुरु को समर्पित कर तब गुरु को प्रणाम करे ।।३२।। शिष्य भले ही श्रीमान् हो, तपस्वी हो, शास्त्रज्ञ विद्वान् हो, कुलशील सम्पन्न हो, किन्तु उसे बिना किसी संकोच के गुरु के सामने दण्डवत् प्रणाम करना चाहिये।।३३।। सभी प्रकार के शिष्टाचारों में दो अत्यन्त प्रशंसनीय माने जाते हैं। उनमें से एक है प्रिय वाणी और दूसरा है प्रणाम करना। इनके बिना अन्य सभी उपचार वृथा हो जाते हैं ।।३४।।

गुरु को सामने देख कर प्रणाम करना चाहिये, उनका ध्यान करना चाहिये और अपनी शक्ति के अनुसार उनकी प्रदक्षिणा भी करनी चाहिये ।।३५।। जो बुद्धिमान् प्रदक्षिणा के क्रम को जानता है, उसे प्रदक्षिणा करते समय लम्बे डग नहीं भरने चाहिये। उसे चाहिये कि प्रदक्षिणा करते समय जल्दीबाजी न करे और न किसी से वार्तालाप ही करे ।।३६।। एक पैर को रख लेने के बाद दूसरा पैर धीरे धीरे रखता और उठाता हुआ, दोनों हाथों को बिना हिलाये-डुलाये वाणी से स्तुति और हृदय से गुरु का ध्यान करता हुआ प्रदक्षिणा करे ।।३७।।

गुरो: पुरत: शिष्यस्याचरणम्

स्वगुरोः पुरतः शिष्यो नेतरान् कीर्तयेज्जनान् ।
असह्यभाषणं चैव न वदेदितरेतरम् ॥३८॥
नानृतं नाप्रियं वाक्यं न गुह्यं चापि भाषयेत् ।
नाप्रच्छन्नमुखो ब्रूयाद् गुरोरग्रे कदाचन ॥३९॥
स्वामि-भट्टारकाचार्य-देव-श्रीगुरुनामभिः ।
वाच्यः सदा गुरुः शिष्यैर्जातुचिन्नान्यनामभिः ॥४०॥
त्वंशब्दं न प्रयुञ्जीत गुरौ शिष्यः कदाचन ।
आज्ञां न लङ्घयेत् तस्य समं नोपविशेत् तथा ॥४१॥
आसनं वाहनं वस्त्रं भूषणं शयनं तथा ।
न कुर्याद् गुरुसादृश्यं गतिसिद्धिहितेप्सुभिः ॥४२॥
पात्रं स्नानजलं छायां माल्योपकरणानि च ।
भक्तिहीनोऽपि पादाभ्यां न स्पृशेन्नैव लङ्घयेत् ॥४३॥

गुरोरुपेक्षा हानिकरी

यः पश्यति गुरुं शिष्यः साधारणमनुष्यवत् ।
तस्य भक्तिर्वृथा विद्वन् भवत्यत्र न संशयः ॥४४॥

शिष्य को चाहिये कि वह अपने गुरु के सामने अन्य अनावश्यक व्यक्तियों की चर्चा न करे। इसी तरह से आपस में एक दूसरे के साथ असह्य, उत्तेजक भाषण भी न करे॥३८॥ गुरु के साथ असत्य, अप्रिय अथवा गुह्य भाषण (कानाफूसी), कभी न करे। उसको चाहिये कि वह गुरु के सामने मुँह पर हाथ या वस्त्र रखे बिना न बोले॥३९॥ स्वामी, भट्टारक, आचार्य, देव, श्रीगुरु जैसे नामों से ही गुरु को संबोधित करना चाहिये। शिष्यों को चाहिये कि वे इनके सिवाय अन्य किसी नाम से गुरु को संबोधित न करें॥४०॥ शिष्य को चाहिये कि वह गुरु के प्रति [५]त्वं (तुम) शब्द का प्रयोग कभी न करे, उसकी आज्ञा का उल्लंघन न करे और उसके साथ समान आसन पर न बैठे॥४१॥ जो व्यक्ति अपनी सद्गति चाहता है, सिद्धि प्राप्त करना चाहता है और अपना हित चाहता है, उसे चाहिये कि वह आसन, वाहन, वस्त्र, भूषण और शयन में गुरु की बराबरी न करे॥४२॥ जिस शिष्य की गुरु के प्रति कोई भक्ति नहीं रह गई है, उसे भी चाहिये कि गुरु के पात्र को, स्नान जल को, छाया को और माला आदि उपकरणों को पैरों से न छूए॥४३॥

जो शिष्य गुरु के प्रति साधारण मनुष्य की जैसी दृष्टि रखता है, उसे केवल मनुष्य

---

५. ''गुरुं त्वंकृत्य हुंकृत्य गुरुं निर्जित्य वादतः'' गुरुगीता का यह १०४ वां श्लोक देखिये।

समस्तदेवतावासं सर्वमन्त्रास्पदं गुरुम् ।
उपेक्षते यः पापात्मा रौरकं नरकं व्रजेत् ॥४५॥

गुरुभक्तिमहिमा

गुरावत्यन्तभक्तस्य शिष्यस्येह परत्र च ।
न किञ्चिद् दुर्लभं विद्वन् समस्तं सुलभं सदा ॥४६॥
इत्थमाचारवान् भक्त्या नित्यमुद्युक्तमानसः ।
गुरुप्रियकरः शिष्यः सर्वान् धर्मांस्तथार्हति ॥४७॥

गुरुलक्षणम्

गुरुश्च गुणवान् प्राज्ञः परमान्दभासकः ।
तत्त्वविच्छिवसंसक्तो मुक्तिदो न तु चापरः ॥४८॥
शैवसिद्धान्ततत्त्वज्ञः प्रतिष्ठामन्त्रपारगः ।
मोक्षदः करुणोपेतो वीतरागो विमत्सरः ॥४९॥
क्रियादिज्ञानपर्यन्तशिवतत्त्वविनिश्चयः ।
सम्प्रदायागतज्ञानो गुरुवंशसमुद्भवः ॥५०॥

मानता है, उसकी सारी भक्ति वृथा चली जाती है। हे बृहस्पति! इसमें किसीप्रकार का संशय नहीं है।।४४।। समस्त देवता और समस्त मन्त्र जहाँ निवास करते हैं, उस गुरु की जो व्यक्ति उपेक्षा करता है, उससे बढ कर कोई परमात्मा नहीं है। वह रौरव नरक में जाता है।।४५।।

हे विद्वन्, जिस शिष्य की गुरु के प्रति अत्यन्त भक्ति है, उसके लिये इस लोक और परलोक में कुछ भी दुर्लभ नहीं है, उसके लिये सब कुछ सुलभ हो जाता है।।४६।। इस प्रकार के आचारों से सम्पन्न, भक्तिपूर्वक गुरु के प्रिय कार्यों को सम्पन्न करने में सदा तत्पर रहने वाला शिष्य सभी प्रकार के धर्माचरण में समर्थ हो जाता है।।४७।।

गुरु भी वही हो सकता है, जो गुणवान्, विद्वान्, परमानन्द की अनुभूति कराने में समर्थ, तत्त्ववेत्ता, शिवभक्त और मुक्ति को दिलाने में समर्थ हो। यदि ऐसा नहीं है, तो वह गुरु नहीं हो सकता।।४८।। गुरु शैव सिद्धान्त के तत्त्वों को जानने वाला होता है, वह वह प्रतिष्ठा की विधि और मन्त्रों का जानकार होता है। वह मोक्ष की प्राप्ति कराने वाला, करुणा से सम्पन्न, वीतराग और मत्सर (ईर्ष्या) से रहित होता है।।४९।। क्रिया से [६]ज्ञान पर्यन्त, अर्थात् शिवागम के क्रिया, चर्या, योग और ज्ञान नामक चार

---

६. ''त्रिपदार्थं चतुष्पादं महातन्त्रम्'' इस वाक्य की व्याख्या करते हुए सर्वदर्शनसंग्रहकार अपने ग्रन्थ के शैवदर्शन प्रकरण में पति, पशु और पाश नामक तीन पदार्थों की तथा ज्ञान, क्रिया, योग और चर्या नामक चार पादों की स्पष्ट व्याख्या प्रस्तुत करते हैं (पृ० ६५-६६)।

लिङ्गाङ्गस्थलभेदज्ञः षट्स्थलज्ञानतत्परः ।
दीक्षाकर्मादिकुशलः षडध्वज्ञानवत्सलः ॥५१॥
शिवस्य च गुरोर्भक्तः शिवैकाहितमानसः ।
शिवार्चनासक्तचित्तः शिवध्यानैकतत्परः ॥५२॥

गृहस्थस्यैव गुरुत्वसमर्थनम्

गुरुर्गृहस्थ एव स्यान्न कदाचिद्यतिर्गुरुः ।
वानप्रस्थयतीनां तु गुरुत्वं निष्फलं भवेत् ॥५३॥

गुरुतत्त्वनिर्णयः

गुरवो बहवः सन्ति शिष्यवित्तापहारकाः ।
दुर्लभोऽयं गुरुर्लोके शिष्यहृत्तापहारकः ॥५४॥
संवित्तिजननं सत्यं परानन्दसमुद्भवम् ।
तत्तत्त्वं विदितं येन स एवानन्ददर्शकः ॥५५॥
स पुनर्नाममात्रेण संवित्तिरहितस्तु यः ।
अन्यं न तारयेदज्ञः किं शिला तारयेच्छिलाम् ॥५६॥

पादों के समस्त विषयों के तत्त्वों का जिसे निश्चित ज्ञान है, गुरु परम्परा से जिसे ज्ञान प्राप्त हुआ है और जो गुरु वंश में उत्पन्न हुआ है।॥५०॥ लिंग और अंग स्थल के भेद को जो भली भांति जानता है, षट्स्थल के रहस्य को समझाने में जो सदा लगा रहता है, दीक्षा आदि कर्मों के सम्पादन में जो कुशल है और जिसको [७]षडध्व का ज्ञान अतिप्रिय है।॥५१॥ जो शिव और गुरु के प्रति भक्ति रखता है, एकमात्र शिव के प्रति ही जिसका मन लगा हुआ है, शिव की पूजा में ही जिसका चित्त सदा रमा रहता है और जो सदा शिव के ध्यान में तत्पर है, वही वास्तव में गुरु होता है ॥५२॥

गुरु गृहस्थ ही हो सकता है । यति को कभी गुरु नहीं बनाया जा सकता । वानप्रस्थ और यति का गुरुत्व निष्फल माना जाता है।॥५३॥

शिष्य के धन का अपहरण करने वाले गुरु तो बहुत से मिल जायेंगे, किन्तु वैसा गुरु दुर्लभ है, जो शिष्य के हृदय में स्थित ताप को दूर कर सके।॥५४॥ संवित्ति (सत्य ज्ञान) की निष्पत्ति निश्चय ही परानन्द से उत्पन्न होती है, अर्थात् जो व्यक्ति परानन्द में निमग्न है, वही दूसरे व्यक्ति में सत्य ज्ञान को पैदा कर सकता है। इस सत्य को जो जानता है, वही गुरु शिष्य को आनन्द का दर्शन करा सकता है।॥५५॥ इसके विपरीत जिस गुरु में अभी स्वयं ही सत्य ज्ञान की उद्भूति (उत्पत्ति) नहीं हुई है, वह नाममात्र का गुरु है। ऐसा आज्ञानी व्यक्ति दूसरे को तार नहीं सकता। क्या एक शिला

---

७. वर्ण, पद, मन्त्र और कला, तत्त्व, भुवन नामक छः अध्वाओंका स्वरूप प्रथम पटल की २२वीं टिप्पणी में बताया जा चुका है।

एषा तन्नाममात्रेण मुक्तिर्वै नाममात्रिका ।
यैः पुनर्विदितं तत्त्वं ते मुक्ता मोचयन्त्यपि ॥५७॥
तत्त्वहीने कुतो बोधः कुतो ह्यात्मपरिग्रहः ।
परिग्रहविनिर्मुक्तः पशुरित्यभिधीयते ॥५८॥
पशुभिः प्रेरितश्चापि पशुत्वं नातिवर्तते ।
तस्मात्तत्त्वं विदित्वेह मुक्तो मोचक इष्यते ॥५९॥
सर्वलक्षणयुक्तोऽपि सर्वशास्त्रं विदन्नपि ।
सर्वोपायविधिज्ञोऽपि तत्त्वहीनस्तु निष्फलः ॥६०॥

दुष्टगुरुलक्षणम्

व्यसनी वामनः कुब्जो कोपी च कुटिलः खलः ।
चपलोऽधिकहीनाङ्गः पापीयान् सूचकोऽन्त्यजः ॥६१॥
व्याधिगस्तार्किकः शूरः काकनादो बकव्रती ।
गुरुदेवद्विजातीनां निन्दको वृषलीपतिः ॥६२॥

दूसरी शिला को तार सकती है?॥५६॥ कुछ दार्शनिक मुक्तावस्था में शिला के सदृश स्थिति मानते हैं। यह कोरी नाम मात्र की स्थिति है। इसके विपरीत जो तत्त्वज्ञानी हैं, वे स्वयं मुक्त हैं और दूसरों को भी मुक्त कराते हैं।॥५७॥ जो व्यक्ति तत्त्वज्ञान से रहित है, उसे ८बोध (शिवज्ञान) कैसे हो सकता है? और उसे आत्मस्वरूप का ज्ञान भी कैसे हो सकता है? जिस व्यक्ति को आत्मस्वरूप का ज्ञान नहीं है, वह 'पशु' कहलाता है।॥५८॥ एक पशु से प्रेरित दूसरे पशु का पशुत्व निवृत्त नहीं हो सकता। इस लिये तत्त्व को जानकर स्वयं मुक्त हुआ व्यक्ति ही दूसरे को मुक्त करा सकता है।॥५९॥ सभी लक्षणों से युक्त, सभी शास्त्रों को और सभी उपायों एवं विधियों को जानने वाला व्यक्ति भी यदि तत्त्ववेत्ता नहीं है, तो यह सब कुछ व्यर्थ है।॥६०॥

जो गुरु व्यसनी, बौना, कुबड़ा, क्रोधी, कुटिल, दुष्ट, चपल, अधिक अथवा हीन अंग वाला, पापी, चुगलखोर और अन्त्यज है।॥६१॥ जो गुरु बीमार, तार्किक, पहलवान, काक जैसी कटु बोली वाला, बक के समान ध्यान लगाने वाला, गुरु, देवता और द्विजाति का निन्दक और कुलटा का पति है।॥६२॥ जो व्यक्ति लम्बे होठों वाला, टेढी नाक वाला, कुष्ठी, कलहप्रिय, दूसरे की निन्दा करने वाला है, ऐसे को अपना

---

८. अष्टप्रकरण के नाम से प्रकाशित सिद्धान्त शैवागम के ग्रन्थों में अध्यवसायात्मक तथा अनध्यवसायात्मक द्विविध बोध का निरूपण किया गया है। इनमें अनध्यवसायात्मक बोध से ही शिवस्वरूप ज्ञात हो सकता है। यहां (मोक्षकारिका) के कुछ श्लोक (१०६, १११) नारदीय पुराण (१।६३।११०-१११) में भी उपलब्ध होते हैं। विशेष शब्दार्थ सूचिका की सहायता से बोध शब्द का विस्तृत विवरण प्राप्त किया जा सकता है।

लम्बोष्ठो वक्रनासश्च गलीनः (लितः) कलहप्रियः ।
परापवादशीलश्च वर्जनीयो गुरुः स्मृतः ॥६३॥
अधोदृष्टिर्नैष्कृतिकः स्वार्थसाधनतत्परः ।
शठो मिथ्याविनीतश्च बकव्रतचरो द्विजः ॥६४॥

योग्यगुरुवरणम्

यस्यानुभवपर्यन्ता मतिस्तत्त्वे प्रतिष्ठिता ।
तस्यावलोकनाद्यैश्च परानन्दोऽभिजायते ॥६५॥
तस्माद्यस्यैव संपर्कात् प्रबोधानन्दसंभवः ।
गुरुं तमेव वृणुयान्नापरं मतिमान्नरः ॥६६॥

शिष्यलक्षणं तत्कर्तव्यं च

तत्रादावुपसंगम्य ब्राह्मणं वेदपारगम् ।
गुरुमाराधयेत् प्राज्ञं सुभगं प्रियदर्शनम् ॥६७॥
सर्वाख्येयप्रदातारं करुणाक्रान्तमानसम् ।
तोषयेत् तं प्रयत्नेन मनसा कर्मणा गिरा ॥६८॥
तावदाराधयेच्छिष्यः प्रसन्नोऽसौ भवेद्यथा ।
तस्मिन् प्रसन्ने शिष्यस्य सद्यः पाशक्षयो भवेत् ॥६९॥

गुरु नहीं बनाना चाहिये॥६३॥ जिसकी नजरें झुकी रहती हैं, जो दुराचारी है, सदा स्वार्थ सिद्ध करने में लगा रहता है, धूर्त है और मिथ्या विनय दिखाता है, ऐसे बगुलाभगत द्विज को गुरु नहीं बनाना चाहिये॥६४॥

जिसकी बुद्धि तत्त्व में प्रतिष्ठित होकर उसका साक्षात्कार करने में समर्थ हो गई है और जिसको देखने अथवा बात करने मात्र से परमानन्द की अभिव्यक्ति होती है, वही सद्गुरु वरणीय है॥६५॥ इसलिये जिसके सम्पर्क से प्रबोध और आनन्द की अनुभूति होती है, बुद्धिमान् व्यक्ति को चाहिये कि उसी को अपने गुरु के रूप में वरण करे, दूसरे को नहीं॥६६॥

इसके लिये प्रारंभ में वेदवेदान्त के पारंगत ब्राह्मण के पास जाकर बुद्धिमान्, सौभाग्यशाली, सौम्य गुरु के रूप में वरण कर उसकी आराधना करे॥६७॥ सभी प्रकार के ज्ञान के प्रदाता, करुणा से ओत-प्रोत चित्त वाले उस गुरु को मन, कर्म और वाणी से सन्तुष्ट करने का प्रयत्न करे॥६८॥ शिष्य उस गुरु की तब तक सेवा करता रहे, जब तक कि वह प्रसन्न नहीं हो जाते। गुरु के प्रसन्न हो जाने पर शिष्य के सारे पाश क्षीण हो जाते हैं॥६९॥ इसलिये शिष्य को चाहिये कि वह सभी पाशों का क्षय कर देने वाले

तस्माद्धनानि रत्नानि क्षेत्राणि च गृहाणि च ।
भूषणानि च वासांसि यानशय्यासनानि च ॥७०॥
एतानि गुरवे दद्याद् भक्त्या वित्तानुसारतः ।
वित्तशाठ्यं न कुर्वीत यदीच्छेत् परमां गतिम् ॥७१॥
स एव जनको माता भ्राता बन्धुजनः स्वयम् ।
मित्रं धनं च यत्तस्मात् सर्वं तस्मै निवेदयेत् ॥७२॥
निवेद्य पश्चात् स्वात्मानं सान्वयं सपरिग्रहम् ।
समर्प्य सादरं तस्मै नित्यं तद्वशगो भवेत् ॥७३॥
यदा शिवाय स्वात्मानं दत्तवान् देशिकात्मने ।
तदा शैवो भवेद् देही न ततोऽस्ति पुनर्भवः ॥७४॥
देशिकाकृतिमास्थाय पशोः पाशानशेषतः ।
छित्वा परं पदं देवो नयत्येनमसंशयम् ॥७५॥

शिष्यपरीक्षा

गुरुस्तु स्वाश्रितं शिष्यं परीक्षेद् वर्षमेककम् ।
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं द्वित्रिवर्षकमेव वा ॥७६॥

गुरु को धन, रत्न, खेत, घर, भूषण, वस्त्र, यान, शय्या, आसन आदि समर्पित करे।॥७०॥ अपनी धन-सम्पत्ति को ध्यान में रखते हुए शिष्य को गुरु के लिये यह सब कंजूसी दिखाये बिना भक्तिपूर्वक देना चाहिये। ऐसा करने से उसे परम गति मिलती है।॥७१॥ वह गुरु ही उसका पिता, माता, भ्राता है। वही उसका बन्धु, मित्र और धन भी है। इसलिये सब कुछ उसके लिये समर्पित कर देना चाहिये।॥७२॥ इन सबको समर्पित कर देने के बाद उसे अपने पूरे वंश और पुत्र-कलत्र आदि को भी आदरपूर्वक समर्पित कर उसकी आज्ञा के अनुसार चलना चाहिये।॥७३॥ जब शिष्य देशिक (गुरु) के रूप में विद्यमान शिव को अपने को [१]समर्पित कर देता है, तब वह स्वयं शिव स्वरूप हो जाता है। उसका पुनर्जन्म नहीं होता।॥७४॥ देशिक के रूप में भगवान् शिव ही इस पशु के समस्त पाशों को काट कर परम पद तक पहुँचा देते हैं, इसमें कोई संशय नहीं है।॥७५॥

गुरु को भी चाहिये कि वह अपने पास आये ब्राह्मण शिष्य की एक वर्ष तक,

१. मुण्डक (३।२।३) और कठ (२।२३) उपनिषदों में उपदिष्ट-"नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यः" इस मन्त्र के अनुसार प्रवचन सुनने से, विविध शुभ कर्मों के अनुष्ठान से और शास्त्रों के निरन्तर श्रवण करने से भी शिवस्वरूप की प्रतीति नहीं होती। यह तो उसी को प्रतीत होता है, जिसके कि सामने स्वयं वह अपनी इच्छा से प्रकट होता है। इसके लिये शरणागति ही सबसे प्रमुख उपाय है। इसी लिये यहां गुरुस्वरूप शिव के प्रति आत्मसमर्पण की बात कही गई है।

प्राणद्रव्यप्रदानाद्यैरादेशैश्च समासमैः ।
उत्तमांश्चाधमे कृत्वा नीचानुत्तमकर्मणि ॥७७॥
आकृष्टास्ताडिता वा ये विषादं नैव यान्त्यपि ।
ते योग्याः सततं शुद्धाः शिवसंस्कारकर्मणि ॥७८॥
अहिंसका दयावन्तो नित्यमुद्युक्तचेतसः ।
अमानिनो बुद्धिमन्तस्त्यक्तस्पर्धाः प्रियंवदाः ॥७९॥
ऋजवो मृदवः स्वच्छा विनीताः स्थिरचेतसः ।
शौचाचारसमोपेताः शिवभक्ता द्विजातयः ॥८०॥
एवं वृत्तसमोपेता वाङ्मनःकायकर्मभिः ।
शोध्या बोध्या यथान्याय्यमिति शास्त्रविनिश्चयः ॥८१॥

गुरुमहिमा

शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता न रुष्टे निजसद्गुरौ ।
त्राता शिवस्तदेतस्माद् गुरुपूजारतो भवेत् ॥८२॥
यः स्वस्य गुरुपूजां तु त्यक्त्वा शिवपदं यजेत् ।
पराङ्मुखः शिवस्तस्य नरकं संप्रयच्छति ॥८३॥

क्षत्रिय की दो वर्ष और वैश्य शिष्य की तीन वर्ष तक परीक्षा करे।॥७६॥ उस शिष्य को प्राण द्रव्य आदि देने के उलटे-सीधे आदेश देता रहे। उत्तम वंश के शिष्य को नीच कार्यों में और नीच वंश के शिष्य को उत्तम कार्यों में लगावे।॥७७॥ डाटने-डपटने से अथवा मारने-पीटने पर भी जो शिष्य दुःखी या क्रुद्ध न होता हो, ऐसा शिष्य शिव-दीक्षा के लिये सदा शुद्ध और योग्य अधिकारी माना जाता है।॥७८॥ अहिंसक, दयावान्, सदा सावधान चित्त वाले, निरभिमानी, बुद्धिमान्, ईर्ष्या-द्वेष से रहित, प्रिय वचन बोलने वाले, सरल स्वभाव के, मृदुभाषी, स्वच्छ मन के, विनीत, स्थिर चित्तवाले, शौच और आचार से सम्पन्न, शिवभक्त, द्विजाति कुलोत्पन्न, सदाचार सम्पन्न इस प्रकार के शिष्य के वाणी, मन, शरीर और कर्म का न्यायपूर्वक शोधन और बोधन करना चाहिये।॥७९-८१॥

शिव के रुष्ट हो जाने पर तो गुरु शिष्य की रक्षा करना है, किन्तु सद्गुरु के रुष्ट हो जाने पर शिव उसकी रक्षा नहीं करते। इसलिये व्यक्ति गुरु की पूजा में सदा लगा रहे।॥८२॥ जो व्यक्ति अपने गुरु की पूजा को छोड़ कर शिव पद का यजन करता है, उसके प्रति शिव पराङ्मुख हो जाते हैं, उसे नरक का भागी बना देते हैं।॥८३॥

गुरुपूजाफलम्

एतत्सर्वं परिज्ञाय पूजां कुर्याद् गुरोः स्वयम् ।
गुरुः पूजाभिसंतुष्टः स्वसायुज्यं प्रयच्छति ॥८४॥
कार्तिके सोमवारे च पुष्पैः पत्रैः फलैर्यजेत् ।
शक्तश्चेत्तस्य पूजायां मासमेकमतन्द्रितः ॥
त्रिकालं वाऽथ षट्कालं प्रदोषे वा समर्चयेत् ॥८५॥
भूतिरुद्राक्षभूषाढ्यः पञ्चाक्षरमनुं जपन् ।
त्वरया गुरुसामीप्यं गतस्तत्पादपङ्कजौ ॥
नमस्कृत्वाऽऽनयेद्भक्त्या स्वगृहं प्रति तं गुरुम् ॥८६॥

गृहागतस्य गुरोः सत्कारः

आन्दोलिकायामारोप्य गजे वाऽपि तुरङ्गमे ।
अनुगच्छेत् स्वयं भक्त्या वाद्यघोषसमन्वितः ॥८७॥
गृहं नीत्वा गुरुं पश्चात् क्षालयंस्तत्पदद्वयम् ।
तेनोदकेन शिरसि संप्रोक्ष्य स्वजनैः सह ॥८८॥
दत्त्वा हस्तावलम्बं च ततो नीत्वा गृहान्तरम् ।
प्रकल्प्य चासनं श्रेष्ठं निवेश्य प्रीतिपूर्वकम् ॥
यथाविध्यवधानेन पूजयेद् गुरुमव्ययम् ॥८९॥

इन सब बातों को जान कर शिष्य को चाहिये कि वह स्वयं सदा गुरु की पूजा करे। गुरु की पूजा से सन्तुष्ट हुए भगवान् शिव उसे अपना सायुज्य देते हैं॥८४॥ कार्तिक मास में सोमवार के दिन पत्र, पुष्प और फल से गुरु की पूजा करनी चाहिये। यदि समर्थ है, तो उसे पूरे मास भर निरालस्य हो गुरु का पूजन तीन काल में छः काल में अथवा प्रदोष वेला में करना चाहिये॥८५॥ भस्म और रुद्राक्ष से विभूषित हो, पंचाक्षर मन्त्र का जप करते हुए, द्रुत गति से गुरु के समीप जाकर, उनके चरणकमलों में प्रणाम कर, भक्तिपूर्वक गुरु को अपने घर पर ले आना चाहिये॥८६॥

आन्दोलिका (पालकी), हाथी अथवा घोड़े पर बैठाकर बाजे-गाजे के साथ भक्तिभाव से ले जाते हुए उनके पीछे चलना चाहिये॥८७॥ घर ले आकर सबसे पहले गुरु के दोनों पैरों को धोकर उस जल को बन्धु-बान्धवों के साथ अपने सिर पर छिड़कना चाहिये॥८८॥ वहां से हाथ का सहारा देते हुए उन्हें घर के भीतर ले जाय, प्रीतिपूर्वक श्रेष्ठ आसन पर उन्हें बैठावे और विधिपूर्वक सावधानी से शाश्वत गुरुदेव का पूजन करे॥८९॥ बुद्धिमान् शिष्य गुरु का पूजन करते समय १०८ अथवा ३६ दीपकों को यथाशक्ति प्रतिदिन प्रज्वलित करे। त्रयोदशी आदि पर्व दिनों में भव्य मण्डप

गुरोः समर्चासमये दीपानष्टोत्तरं शतम् ।
षट्त्रिंशद्वा यथाशक्ति ज्वालयेदन्वहं बुधः ॥
त्रयोदश्यादिषु गुरुमर्चयेद् भव्यमण्टपे ॥९०॥
उक्तं यद्गुरुणा पूर्वं शक्यं वाऽशक्यमेव च ।
करोत्येव हि पूतात्मा प्राणैरपि धनैरपि ।
शरीराद्यर्थकं सर्वं गुरुं दद्यात् स शिष्यकः ॥९१॥
माहेश्वरान् सपत्नीकान् पत्न्या सह दृढव्रतः ।
पूजयेद् भोजनाद्यैश्च पञ्च वा दश वा शतम् ॥
अग्रपाकं निवेद्याग्रे भुञ्जीयाद् गुर्वनुज्ञया ॥९२॥
धनरूपैः पादुकाद्यैः पादसंग्रहणादिभिः ।
स्नानाभ्यञ्जननैवेद्यभोजनैश्चापि पूजयेत् ॥९३॥

गुरुप्रसादग्रहणम्

गुरुपूजैव पूजा स्याच्छिवस्य परमात्मनः ।
गुरुशेषं तु तत्सर्वमात्मशुद्धिकरं भवेत् ॥९४॥
तस्माद् गुरुमुखात् कर्म ज्ञानं चापि विशेषतः ।
ज्ञात्वा कर्तव्यमखिलं भोगमोक्षोपलब्धये ॥९५॥
गुरुप्रसादपात्रं यः स हि मोक्षाय कल्पते ।
न मुक्तिमूलमन्यद्धि विहाय गुरुसत्कृपाम् ॥९६॥

में गुरु का पूजन करे॥९०॥ गुरु जो कुछ करने को कहते हैं, वह शक्य हो या अशक्य, पवित्र शिष्य को चाहिये कि अपने प्राण और धन का मोह छोड़कर भी उसे पूरा करे। शिष्य को चाहिये कि वह अपना शरीर, धन आदि सब कुछ गुरु को समर्पित कर दे॥९१॥ दृढनिश्चयी शिष्य को चाहिये कि वह अपनी पत्नी के साथ सपत्नीक पाँच, दस अथवा सौ माहेश्वरों का भोजन आदि से सत्कार करे। प्रथमतः गुरु को निवेदित करने के उपरान्त ही उनकी आज्ञा से स्वयं भी भोजन करे॥९२॥ धन-धान्य, पादुका आदि प्रदान कर, पादसंवाहन कर, स्नान, उबटन आदि लगाकर, नैवेद्य और भोजन आदि के द्वारा गुरु का पूजन करे॥९३॥

गुरु पूजा ही वस्तुतः भगवान् शिव की पूजा है। गुरु जो कुछ प्रसाद छोड़ देते हैं, वही शिष्य की आत्मा की शुद्धि के लिये पर्याप्त माना जाता है॥९४॥ इसीलिये गुरु के मुख से कर्मयोग की और विशेष रूप से ज्ञानयोग की शिक्षा प्राप्त कर भोग और मोक्ष की प्राप्ति के लिये शिष्य को कर्म और ज्ञान का आचरण करना चाहिये॥९५॥ जो शिष्य गुरु की प्रसन्नता को प्राप्त करने की योग्यता अर्जित कर लेता है, वही मोक्ष

गुरुरूपं सुराचार्य लोकानुग्रहकाङ्क्षया ।
आद्यमावरणं प्रोक्तं किमतः श्रोतुमिच्छसि ॥९७॥

इति श्रीचन्द्रज्ञानागमेऽनन्तरुद्रबृहस्पतिसंवादे शिवशासने क्रियापादे गुरुस्वरूपनिरूपणं नाम द्वितीयः पटलः ॥

का अधिकारी हो सकता है। गुरु की सत्कृपा के सिवाय मुक्ति का दूसरा कोई मार्ग नहीं है॥९६॥ हे सुराचार्य ! इस प्रकार मैंने तुमको गुरुरूप इस प्रथम आवरण का उपदेश लोक पर अनुग्रह करने की इच्छा से दिया है। इसके बाद अब तुम क्या सुनना चाहते हो॥९७॥

इस प्रकार अनन्तरुद्र और बृहस्पति के संवाद के रूप में प्रस्तुत इस चन्द्रज्ञानागम के क्रियापाद का गुरु के स्वरूप का निरूपण करने वाला यह दूसरा पटल समाप्त हुआ॥



तृतीय पटलः

बृहस्पतिरुवाच

अनन्तज्ञाननिलय लोकानुग्रहतत्पर ।
अनन्तरुद्र भगवन् धन्यो भवदनुग्रहात् ॥१॥
असीमानं वरगुरोर्भूमानं श्रीमदाननात् ।
श्रावंश्रावं निमग्नोऽस्मि निर्भरानन्दवारिधौ ॥२॥
अथ द्वितीयं शुश्रूषुः शिवलिङ्गं सुपावनम् ।
तस्य रूपं महत्त्वं च वद मे करुणाकर ॥३॥

अनन्तरुद्र उवाच

अहो निबोधयिष्यामि महालिङ्गस्य वैभवम् ।
यज्ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुरचिरेण बृहस्पते ॥४॥

२. लिङ्गस्वरूपं महिमा च

पूर्वमेकार्णवे घोरे नष्टे स्थावरजङ्गमे ।
मध्ये समुत्थितं लिङ्गमैश्वरं तैजसं परम् ॥५॥
ज्वालामालावृतं दिव्यमप्रमेयमनामयम् ।
कल्पान्ते तत्र लीयन्ते वर्तन्ते सर्वदेवताः ॥६॥

बृहस्पति प्रश्न करते हैं—

हे अनन्त ज्ञान के खजाने भगवन् अनन्तरुद्र देव! आप सामान्य जन पर भी अनुग्रह करने के लिये सदा तत्पर रहते हैं। आपके अनुग्रह के ही कारण मैं धन्य हूँ कि आपके मुँह से श्रेष्ठ गुरु की असीमित महिमा को सुन-सुन कर गहरे आनन्द-सागर में डूब गया हूँ॥१-२॥ अब मैं सबको पवित्र कर देने वाले दूसरे आवरण शिवलिंग के स्वरूप और उसकी महिमा को सुनना चाहता हूँ। हे करुणामय आप मुझे यह सब कुछ सुनाइये॥३॥

अनन्तरुद्र उत्तर देते हैं—

हे बृहस्पति! मैं तुमको उस महालिंग के वैभव को सुनाऊँगा, जिसको जानकर जीव बिना विलम्ब के मुक्त हो जाता है॥४॥

पूर्व काल में जब कि सर्वत्र एकमात्र समुद्र का जल ही घोर गर्जन कर रहा था, स्थावर और जंगम यह सारा जगत् नष्ट हो चुका था, तब उस समुद्र के बीच में से ईश्वर का परम तेजोमय लिंग प्रकट हुआ॥५॥ यह लिंग ज्वाला की मालाओं से आवृत था। दिव्य, अप्रमेय और अनामय (सभी प्रकार की व्याधियों से निर्मुक्त) इस लिंग में ही प्रत्येक कल्प की समाप्ति पर सारे देवता लीन होकर रहते हैं॥६॥ इस लिंग के

हृदये चैव गायत्री सर्वदेवोत्तमोत्तमा ।
लीयन्ते मूर्ध्नि वै वेदाः सषडङ्गपदक्रमाः ॥७॥
जठरे लीयते सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम् ।
पुनरुत्पद्यते यस्मात् तद्ब्रह्म लिङ्गसंज्ञकम् ॥८॥
अव्यक्तं लिङ्गमाख्यातमनन्तमजरं ध्रुवम् ।
गुणत्रयं तदेवेशः सृजत्यवति हन्ति च ॥९॥

शिवलिङ्गं चतुर्विधम्

तदेव शिवलिङ्गं हि तल्लिङ्गं तु चतुर्विधम् ।
परबिन्दुः परो नादश्चापरौ बिन्दुनादकौ ॥
उपर्यधोभागनिष्ठाश्चत्वारोऽपि सुरार्चित ॥१०॥
अधः स्यादपरो बिन्दुस्तदूर्ध्वमपरो ध्वनिः ।
तदूर्ध्वं परबिन्दुः स्यात् परनादस्तदूर्ध्वगः ॥११॥

हृदय में सभी देवताओं में श्रेष्ठ गायत्री का निवास है। [1]छः अंगों और पद, क्रम आदि [2]विकृतियों के साथ सारे वेद कल्पान्त में इसके सिर में लीन हो जाते हैं।॥७॥ यह स्थावर-जङ्गमात्मक सारा जगत् इस लिंग के उदर में लीन हो जाता है और वहीं से पुनः पैदा भी होता है। इसी लिये इसे परब्रह्म रूपी लिंग कहते हैं॥८॥ इस लिंग को ही अव्यक्त भी कहते हैं। यह अनन्त, अजर और अविकार है। यह लिंगस्वरूपी ईश्वर ही त्रिगुणात्मक शरीर धारण कर सृष्टि, पालन और संहरण कार्य का सम्पादन करता है॥९॥

वह परब्रह्म लिंग ही शिवलिंग है। इसके चार भेद होते हैं। उनके नाम पर बिन्दु, पर नाद, अपर बिन्दु और अपर नाद हैं। हे देवताओं का द्वारा पूजित बृहस्पति! इन चारों की स्थिति ऊपर और नीचे मानी जाती है॥१०॥ सब से नीचे अपर बिन्दु स्थित है। उसके ऊपर अपर नाद, उसके ऊपर पर बिन्दु और सबके ऊपर पर नाद की स्थिति मानी गई है॥११॥ प्रणव अर्थात् ॐकार वेदि है और इसमें यह नादात्मक लिंग स्थित

---

१. शिक्षा, कल्प (श्रौत, गृह्य और धर्म सूत्र), व्याकरण, निरुक्त (निघण्टु सहित), ज्यौतिष, (सिद्धान्त, गणित और फलित) और छन्द-ये वेद के छः अंग हैं।

२. "जटा माला शिखा रेखा ध्वजो दण्डो रथो घनः। अष्टौ विकृतयः प्रोक्ताः क्रमपूर्वा महर्षिभिः॥" इस श्लोक में वेद की आठ विकृतियां वर्णित हैं। वेदों के प्रत्येक पद को और उनके क्रम को सुरक्षित रखने के लिये वेदपाठ की ये विभिन्न पद्धतियां है। इनके ज्ञाता वेदपाठी के लिये घनान्तपाठी शब्द आज भी प्रचलित है। इन विकृतियों का सोदाहरण परिचय सातवलेकर के ऋग्वेद के संस्करण (पृ. ७९२-८०८) से प्राप्त किया जा सकता है।

प्रणवो वेदिरस्यायं नादो लिङ्गाकृतिर्मुखे ।
बिन्दुनादमये लिङ्गे नित्यं सन्निहितः शिवः ॥१२॥

बिन्दुनादात्मकं जगत्

बिन्दुनादात्मकं सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम् ।
बिन्दुः शक्तिः शिवो नादः शिवशक्त्यात्मकं जगत् ॥१३॥
नादाधारमयं बिन्दुर्बिन्द्वाधारमिदं जगत् ।
जगदाधारभूतौ हि बिन्दुनादौ व्यवस्थितौ ॥१४॥
बिन्दुनादयुतं सर्वं सकलीकरणं भवेत् ।
सकलीकरणाज्जन्म जगत् प्राप्नोत्यसंशयम् ॥१५॥

बिन्दुनादात्मकं लिङ्गं जगत्कारणम्

बिन्दुनादात्मकं लिङ्गं जगत्कारणमुच्यते ।
तस्माज्जन्मनिवृत्त्यर्थं शिवलिङ्गं प्रपूजयेत् ॥१६॥
माता देवी बिन्दुरूपा नादरूपः शिवः पिता ।
पितृभ्यां दत्तमैश्वर्यं यथा भोगाय कल्प्यते ॥
तयोरैश्वर्यलाभार्थं शिवलिङ्गं प्रपूजयेत् ॥१७॥

है। हे बृहस्पति! इस बिन्दुनादमय लिंग में भगवान् शिव सदा विराजमान रहते हैं॥१२॥

यह सारा स्थावर-जंगमात्मक जगत् बिन्दुनादात्मक है। इनमें बिन्दु शक्ति है और शिव नाद है। इस तरह से यह जगत् शिवशक्त्यात्मक ही तो है॥१३॥ यहां बिन्दु नाद पर आधारित है और जगत् बिन्दु पर आधारित है। इस प्रकार बिन्दु और नाद ये दोनों इस जगत् के आधारभूत हैं॥१४॥ बिन्दु और नाद की सहायता से ही सकलीकरण सम्पन्न होता है और [३]सकलीकरण की प्रक्रिया से ही सारे जगत् की उत्पत्ति होती है, इसमें कोई सन्देह नहीं रहना चाहिये॥१५॥

बिन्दुनादात्मक यह लिंग ही सारे जगत् का कारण है, अतः इस जन्मपरम्परा से जो मुक्ति चाहता है, उसे शिवलिंग की पूजा करनी चाहिये॥१६॥ बिन्दुरूपा देवी पार्वती माता और नादस्वरूपी शिव पिता हैं। मातापिता के द्वारा दिया गया ऐश्वर्य जैसे इस लोक में भोग का सम्पादक है, वैसे ही शिव और शक्ति के ऐश्वर्य की प्राप्ति के

---

३. सकलीकरण की प्रक्रिया का विशद स्वरूप सोमशम्भुपद्धति (कर्मकाण्डक्रमावली) के पाण्डिचेरी संस्करण के प्रथम भाग के प्रथम परिशिष्ट में देखिये। विभिन्न मन्त्रों के द्वारा साधक का अपने देह को विद्यामय बना देना ही सकलीकरण विधि का मुख्य उद्देश्य है। न "हृदयादिकरान्तेषु कनिष्ठाद्यङ्गुलीषु च। हृदादिमन्त्रविन्यासः सकलीकरणं मतम्॥" (सोमशम्भुपद्धति, श्लो. १४५)।

मातापितृरूपं शिवलिङ्गम्

सा देवी जगतां माता स शिवो जगतः पिता ।
पित्रोः शुश्रूषुके नित्यं कृपाधिक्यं हि वर्धते ॥
कृपयाऽन्तर्गतैश्वर्यं पूजकस्य ददाति हि ॥१८॥
तस्मादन्तर्गतानन्दलाभार्थं मुनिपुङ्गव ।
पितृमातृस्वरूपं हि शिवलिङ्गं प्रपूजयेत् ॥१९॥

महालिङ्गस्वरूपम्

निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम् ।
प्रत्यस्तमितभेदं यत् सत्तामात्रमगोचरम् ॥
वचसामात्मसंवेद्यं तन्महालिङ्गमुच्यते ॥२०॥
ऋतं सत्यं परं ब्रह्म सच्चिदानन्दलक्षणम् ।
अनन्यपरमं ब्रह्म तदतो ध्येयमास्तिकैः ॥२१॥
ततः सर्वं परित्यज्य महालिङ्गैकतत्परः ।
निर्ममो निरहङ्कारस्तद्ध्याननिरतो भवेत् ॥२२॥

लिये शिवलिंग की आराधना करे॥१७॥

वह देवी सारे जगत् की माता और भगवान् शिव जगत् के पिता हैं। इस लोक में माता-पिता की सेवा करने से जैसे उनकी कृपा में नित्य वृद्धि होती है, उसी परिपाटी से ये भी अपनी पूजा करने वाले को कृपापूर्वक सर्वविध ऐश्वर्य प्रदान करते हैं॥१८॥ इसलिये हे मुनिपुंगव! आन्तर आनन्द की प्राप्ति के लिये माता-पिता स्वरूप शिवलिंग की पूजा करनी चाहिये॥१९॥

जो निष्क्रिय, शान्त, अनिन्द्य, निरंजन स्वरूप है, जहां सारे भेद समाप्त हो जाते हैं, जिनकी प्रतीति केवल सत्ता के रूप में ही होती है, जो अगोचर है, जो वाणी का विषय न होकर आत्मसंवेद्य है, उसे ही महालिंग कहते हैं॥२०॥ यह परब्रह्म ऋत और सत्य है, सत्, चित् और आनन्द स्वरूप हैं। इस ब्रह्म से बढ कर कोई नहीं है, अतः आस्तिक मनुष्य को सदा उसका ही ध्यान करना चाहिये॥२१॥ इसलिये सब कुछ छोड़ कर साधक को इस महालिंग की ही उपासना करनी चाहिये, ममता और अहंकार से मुक्त होकर सदा उसके ध्यान में ही लगे रहना चाहिये॥२२॥

महालिङ्गस्य त्रैविध्यम्

महालिङ्गं त्रिधा जातं सुजनानुजिघृक्षया ।
प्रथमं भावलिङ्गं तु द्वितीयं प्राणलिङ्गकम् ॥
तृतीयमिष्टलिङ्गं स्यादित्येवं त्रिविधं मतम् ॥२३॥
निष्कलं भावलिङ्गं स्याद् भावग्राह्यं परात्परम् ।
प्राणलिङ्गं मनोग्राह्यं भवेत् सकलनिष्कलम् ॥२४॥
सकलं दृक्कलाग्राह्यमिष्टलिङ्गं प्रकीर्तितम् ।
इष्टसिद्धिकरं सम्यगनिष्टपरिहारकम् ॥२५॥

षड्विधलिङ्गनिरूपणम्

भावादिलिङ्गत्रितयं द्विविधं द्विविधं भवेत् ।
भावलिङ्गं महालिङ्गप्रसादाभिख्यकं द्वयम् ॥२६॥
प्राणलिङ्गं तथा चरशिवलिङ्गद्वयं भवेत् ।
इष्टं तु गुरुलिङ्गाख्यमाचाराख्यं द्वयं भवेत् ॥२७॥
आचारलिङ्गमाख्यातं सद्योजातमुखात्मकम् ।
गुरुलिङ्गं तथा वामदेववक्त्रात्मकं भवेत् ॥२८॥
शिवलिङ्गं तथाऽघोरमुखरूपं भवेत् पुनः ।
चरलिङ्गं भवत्येव तत्पूरुषमुखात्मकम् ॥२९॥

सज्जनों पर अनुग्रह करने की दृष्टि से यह महालिंग तीन स्वरूप धारण करता है। इनमें पहला भावलिंग, दूसरा प्राणलिंग और तीसरा इष्टलिंग कहलाता है। इस प्रकार यह महालिंग तीन प्रकार का माना गया है॥२३॥ इनमें भावलिंग निष्कल है। इस परात्पर लिंग का केवल भावना से ही साक्षात्कार हो सकता है। प्राणलिंग सकल-निष्कलात्मक है। यह मनोमात्रग्राह्य है॥२४॥ इष्टलिंग सकल स्वरूप है। दृक् शक्ति की कलाओं से, अर्थात् ज्ञानेन्द्रियों से इसका ग्रहण संभव है। यह इष्टलिंग इष्ट की सिद्धि और अनिष्ट के परिहार में समर्थ है॥२५॥

ऊपर जिन भाव आदि तीन लिंगों की चर्चा आई है, इन सभी के दो-दो भेद होते हैं। भावलिंग महालिंग और प्रसादलिंग के नाम से द्विविध है॥२६॥ प्राणलिंग के चरलिंग और शिवलिंग नाम के दो भेद तथा इष्टलिंग के गुरुलिंग और आचारलिंग नामक दो भेद होते हैं॥२७॥ इनमें आचारलिंग सद्योजात मुख से अभिन्न है और गुरुलिंग वामदेव मुख स्वरूप है॥२८॥ शिवलिंग अघोरमुख स्वरूप होता है और चरलिंग तत्पुरुष मुख से अभिन्न माना जाता है॥२९॥ प्रसादलिंग ईशान मुख से अभिन्न है और महालिङ्ग तो स्वयं अखण्ड स्वरूप साक्षात् शिव ही है॥३०॥

प्रसादलिङ्गं कथितमीशानमुखसंज्ञकम् ।
महालिङ्गं तथाऽखण्डशिवरूपं प्रकीर्तितम् ॥३०॥

इष्टलिङ्गे शिवः पूजनीयः

लिङ्गे संपूजनाद् ध्यानाच्छम्भुः सम्यक्प्रसीदति ।
ध्यायते पूज्यते चैव लिङ्गे सन्निहितः शिवः ॥३१॥
इष्टलिङ्गे ततो नित्यं पूजनीयः परः शिवः ।
ध्येयश्च सततं विद्वन् लिङ्गरूपोऽम्बिकापतिः ॥३२॥

आधारादिषु प्राणलिङ्गध्यानम्

[४]आधारे कनकप्रख्यं हृदये विद्रुमप्रभम् ।
भ्रूमध्ये दीपसंकाशं प्राणलिङ्गं प्रकीर्तितम् ॥३३॥
ज्योतिर्लिङ्गमिदं विद्वन् ध्यानस्थानं महेशितुः ।
ज्योतिर्लिङ्गं विभाव्यैव तत्र ध्येयः परः शिवः ॥३४॥
प्राणेष्वन्तर्मनःस्थानं हृदयाब्जगतं शिवम् ।
लिङ्गं यत् तदिह ग्राह्यं प्राणलिङ्गसमाह्वयम् ॥३५॥
ज्योतीरूपं तदेव स्यात् स्थानं मुख्यं महेशितुः ।
तत्र निध्यायमानं तु शम्भुर्मोचयतेऽचिरात् ॥३६॥

इन षड्विध लिंगों में उसकी पूजा और ध्यान करने से भगवान् शिव प्रसन्न होते हैं। लिंग में संनिहित होने के कारण ही भगवान् शिव का ध्यान और पूजन संभव हो पाता है॥३१॥ इसलिये भगवान् परशिव की इष्टलिंग में सदा पूजा करनी चाहिये और लिंगस्वरूप धारी भगवान् शिव का ही हे विद्वन्! सदा ध्यान करना चाहिये॥३२॥

प्राणलिंग का स्वरूप मूलाधार स्थान में सुवर्ण के समान, हृदय में विद्रुम मणि के समान और भ्रूमध्य में दीपशिखा के समान माना गया है। इसका अभिप्राय यह है कि प्राणलिंग की इसी प्रकार भावना की जाती है॥३३॥ हे विद्वन्! इस ज्योतिर्लिंग में ही भगवान् महेश्वर का ध्यान किया जाता है। इस ज्योतिर्लिंग में भावना के स्थिर होने पर ही परशिव में भी ध्यान लग सकता है॥३४॥ हृदयस्थित कमल के भीतर कल्याणकारी प्राणों का और उसके भी भीतर मन का स्थान है। प्राणलिंग नामक लिंग के इसी स्वरूप की यहां मानसिक आराधना की जाती है॥३५॥ भगवान् महेश्वर का ज्योर्तिमय यह धाम ही मुख्य स्थान माना गया है। यहां विशेष रूप से ध्यायमान भगवान् शिव ध्याता को बिना किसी विलम्ब के मुक्त कर देते हैं॥३६॥

---

४. यह श्लोक सिद्धान्तशिखामणि (६.४०) में भी पाठभेद के साथ उपलब्ध है ।

भावलिङ्गलक्षणम्

सच्चित्सुखमयं शान्तमादिमध्यान्तवर्जितम् ।
निष्कलं शाम्भवं यत्तदरूपं रूपमुच्यते ॥
तद्भावनास्पदं विद्वन् भावलिङ्गं प्रकीर्तितम् ॥३७॥
भावग्राह्यं मनोऽतीतं भावाभावपरं शिवम् ।
कलासर्गकरं सत्यं भावलिङ्गं प्रकीर्तितम् ॥३८॥
प्रत्याहृतेन्द्रियग्रामैरमनस्कपदास्पदैः ।
पदे तुरीयातीताख्ये भावनीयं तु योगिभिः ॥३९॥
विस्मृतेतरभावानुभाविताखण्डतत्त्वकैः ।
योगिभिर्भाव्यते नित्यं भावलिङ्गं महात्मभिः ॥४०॥
भावलिङ्गानुभावात्तपरानन्दामृताब्धयः ।
निस्पृहा निर्भयाः शान्ता जीवन्मुक्ता न संशयः ॥४१॥

सत्, चित्, सुखमय, शान्त; आदि, मध्य और अन्त से वर्जित निष्कल—इस प्रकार यह जो भगवान् शिव का आकाररहित स्वरूप कहा गया है, उसे ही हे बृहस्पति! भावलिंग कहा जाता है, जो कि केवल भावना से ही गृहीत हो सकता है॥३७॥ मन से अतीत यह स्वरूप भाव और अभाव से परे है। यह मंगलमय स्वरूप भावनामात्र से जाना जा सकता है। [५]कलाओं की सृष्टि का यही वास्तविक कारण है। इसीलिये इसे भावलिंग कहा जाता है॥३८॥ योगी जन अपने सारे इन्द्रियसमूह को अन्तर्मुख बना कर, [६]अमनस्क स्थिति में रह कर, तुरीयातीत पद में स्थित होकर इसकी भावना करते हैं॥३९॥ अन्य समस्त सांसारिक भावों को भुला कर एकमात्र अखण्ड शिवतत्त्व की भावना में निरत महात्मा योगी जन ही इस भावलिंग का नित्य साक्षात्कार कर सकतें हैं॥४०॥ भावलिंग की भावना करते करते जिनको परमानन्दरूपी

५. निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति और शान्त्यतीता नामक पांच कलाओं का तो निरूपण प्रायः सभी शैवागम ग्रन्थों में मिलता है। इनके अतिरिक्त शिव के सद्योजात आदि पांच मन्त्रों में स्थित ३८ कलाओं का वर्णन नेत्रतन्त्र (२२.२६-३४) आदि में देखा जा सकता है। लिङ्गधारणचन्द्रिका में भी कलाशुद्धि प्रकरण में इनका उल्लेख है।

६. तन्त्रशास्त्र के ग्रन्थों में अमनस्क योग का विशद विवेचन मिलता है। इसी नाम का एक ग्रन्थ भी उपलब्ध है। इसकी भूमिका में श्रद्धेय श्री श्री गोपीनाथ कविराज महोदय ने इस योग का विशद स्वरूप प्रदर्शित किया है। शैव शास्त्रों में ॐ को वैदिक प्रणव, ह्रीं को शाक्त प्रणव और हूँ को शैव प्रणव कहा गया है। इनमें अ उ म् आदि तीन स्थूल अक्षरों के अतिरिक्त बिन्दु, अर्धचन्द्र, रोधिनी, नाद, नादान्त, शक्ति, समना और उन्मना नामक सूक्ष्म नाद की विभिन्न अवस्थाएं विद्यमान हैं। इनके स्वरूप, कालमान आदि का ज्ञान योगिनीहृदय, वरिवस्यारहस्य जैसे ग्रन्थों से ज्ञात हो सकता है। यहाँ बताई गई अन्तिम स्थिति उन्मना को ही हम अमनस्क स्थिति मान सकते हैं।

लिङ्गत्रयाराधनम्

ज्योतीरूपं प्राणलिङ्गं हृदयाब्जे प्रतिष्ठितम् ।
हृदये वा भ्रुवोर्मध्ये तुरीये ध्येयमास्तिकैः ॥४२॥
ध्यानस्य शम्भोः पूजायाः स्थानमिष्टं भवेद्बहिः ।
जाग्रद्दशायां संसेव्यं भोगमोक्षफलार्थिभिः ॥४३॥
तथैवान्तरगं स्थानं प्राणलिङ्गं प्रकीर्तितम् ।
सेव्यमेतत् तुरीये स्याद् भवबन्धमुमुक्षुभिः ॥४४॥
इष्टं स्थूलतनोः प्रोक्तं प्राणं सूक्ष्मतनोः स्मृतम् ।
भावाख्यं कारणस्यैवं तनुत्रयगतं त्रयम् ॥४५॥

मलत्रयक्षपणी दीक्षा

आणवं मायिकं चैव कार्मिकं च यथाक्रमम् ।
मलत्रयमनादीदं तनुत्रयगतं भवेत् ॥४६॥
तनुत्रयगतानादिमलत्रयमिदं गुरुः ।
दीक्षात्रयेण निर्दग्ध्वा लिङ्गत्रयमुपादिशेत् ॥४७॥

अमृतसागर की प्राप्ति हो गई है, ऐसे निस्पृह, निर्भय और शान्तस्वभाव के योगी जीवन्मुक्त हो जाते हैं, इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं है॥४१॥

ऊपर वर्णित ज्योतिःस्वरूप प्राणलिंग हृदयस्थित कमल में प्रतिष्ठित है। आस्तिक जनों को इस प्राणलिंग का हृदय अथवा भ्रूमध्य में तुरीयावस्था में ध्यान करना चाहिये॥४२॥ स्थूल ध्यान का और शिव की बाह्य पूजा का आधार इष्टलिंग ही हो सकता है। अतः भोग और मोक्ष को चाहने वालों को जाग्रदवस्था में इष्टलिंग की ही आराधना करनी चाहिये॥४३॥ इसी तरह से आन्तर पूजा का स्थान प्राणलिंग है। सांसारिक बन्धनों से मुक्ति चाहने वालों को इसकी तुरीयावस्था में उपासना करनी चाहिये॥४४॥ इष्टलिंग का स्थूल शरीर से, प्राणलिंग का सूक्ष्म शरीर से और भावलिंग का संबन्ध कारण शरीर से माना गया है। इस प्रकार यह लिंग तीनों शरीरों से संबद्ध है॥४५॥

आणव, मायिक और कार्मिक — ये तीन मल अनादि काल से चले आ रहे हैं। ये तीनों मल यथाक्रम कारण, सूक्ष्म और स्थूल शरीरों से संबद्ध हैं॥४६॥ उक्त तीनों शरीरों से संबद्ध इन तीनों अनादि मलों को त्रिविध दीक्षा से भस्म कर देने के उपरान्त गुरु उक्त त्रिविध लिंगों के स्वरूप का उपदेश करते हैं॥४७॥

लिङ्गत्रयाराधनमहिमा

पूजयन्निष्टलिङ्गं तु निध्यायन् प्राणलिङ्गकम् ।
भावयन् भावलिङ्गं वै मृत्युपाशांश्छिनत्ति स: ॥४८॥
सर्वदेवमयं लिङ्गं तस्मिन् साक्षाच्छिव: स्वयम् ।
अनुग्रहाय वसति तस्माल्लिङ्गं प्रपूजयेत् ॥४९॥
पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च ।
लीयन्ते लिङ्गमूले तु तस्माल्लिङ्गं प्रपूजयेत् ॥५०॥
आकाशं लिङ्गमित्याहु: पृथिवी तस्य पीठिका ।
आलय: सर्वभूतानां लयनाल्लिङ्गमुच्यते ॥५१॥
यस्तु पूजयते नित्यं लिङ्गं त्रिभुवनेश्वरम् ।
स सर्वमोक्षराज्यस्य क्षिप्रं भवति भाजनम् ॥५२॥
सर्वे लिङ्गमया लोका: सर्वं लिङ्गे प्रतिष्ठितम् ।
तस्मात् संपूजयेल्लिङ्गं यदीच्छेत् सिद्धिमात्मन: ॥५३॥
शिवलिङ्गस्वरूपम् च महिमानं च शाश्वतम् ।
न्यबोधयं देवगुरो किमत: श्रोतुमिच्छसि ॥५४॥

इति श्रीचन्द्रज्ञानागमे उत्तरभागे अनन्तरुद्रबृहस्पति–
संवादे शिवशासने क्रियापादे लिङ्गस्वरूप–
निरूपणं नाम तृतीय: पटल: ॥३॥

गुरु से दीक्षा और लिंगत्रय का उपदेश प्राप्त कर लेने के उपरान्त इष्टलिंग की पूजा, प्राणलिंग का ध्यान और भावलिंग की भावना करने वाला शिवभक्त मृत्यु के पाशों को काट डालता है।।४८।। यह लिंग सर्वदेवमय है। इसमें साक्षात् शिव स्वयं निवास करते हैं और भक्तों पर अनुग्रह करते रहते हैं। इसलिये लिंग का पूजन अवश्य करना चाहिये।।४९।। इस पृथिवी पर जितने भी तीर्थ हैं और पवित्र स्थान हैं, वे सब इस लिंग में ही निवास करते हैं, अत: लिंग की पूजा अवश्य करनी चाहिये।।५०।। आकाश को लिंग कहा जाता है और पृथिवी उसकी पीठिका है। ये ही सारे प्राणियों के आश्रय-स्थल हैं। सबको अपने में विलीन करके रखने से ही इसको लिंग कहा जाता है।।५१।। जो व्यक्ति तीनों भुवनों के स्वामी इस लिंग की नित्य पूजा करता है, वह सारे मोक्ष राज्य की प्राप्ति की योग्यता शीघ्र ही प्राप्त कर लेता है।।५२।। सारे लोक

लिंगमय हैं। यह सारा जगत् लिंग में ही प्रतिष्ठित है। इसलिये यदि व्यक्ति अपना उद्धार चाहता है, तो उसे नित्य लिंग की पूजा करनी चाहिये।।५३।। हे देवगुरु ! इस तरह से मैंने तुम्हें शिवलिंग के स्वरूप को और उसकी शाश्वत महिमा को समझा कर बताया है। अब इसके आगे तुम क्या सुनना चाहते हो।।५४।।

इस प्रकार अनन्तरुद्र और बृहस्पति के संवाद के रूप
में प्रस्तुत इस चन्द्रज्ञानागम के क्रियापाद का लिंग
के स्वरूप का निरूपण करने वाला यह
तीसरा पटल समाप्त हुआ ।।३।।



चतुर्थः पटलः

बृहस्पतिरुवाच

करुणाकर सर्वज्ञ भक्तानुग्रहतत्पर ।
सर्वागमामृतनिधेऽनन्तरुद्र नमोऽस्तु ते ॥१॥
धन्योऽस्मि शिवलिङ्गस्य वैभवाकर्णनादहम् ।
लक्षणं जङ्गमस्यापि माहात्म्यं ब्रूह्यनुग्रहात् ॥२॥

अनन्तरुद्र उवाच

अहो निबोधयाम्यद्य शृणु जङ्गमवैभवम् ।
निगूढमागमान्तेषु[१] यज्ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते ॥३॥

३. जङ्गमलक्षणं महिमा च

जङ्गमं स्थावरं चेति शम्भो रूपद्वयं स्मृतम् ।
स्थावरं च सयंव्यक्तं प्रतिष्ठितमिति द्विधा ॥४॥
स्वयंव्यक्तं तत्र भवेत् काशीविश्वेश्वरादिकम् ।
प्रतिष्ठितं कर्षणाद्यैः संस्कृतं मानुषैर्भवेत् ॥५॥

बृहस्पति प्रश्न करते हैं—

हे करुणा के सागर, सब कुछ जानने वाले, भक्तों के ऊपर अनुग्रह करने में सदा लगे रहने वाले, सभी आगमों के अमृत सागर अनन्तरुद्र देव! मैं आपको प्रणाम करता हूँ॥१॥ मैं शिवलिंग के अनन्त वैभव को सुन कर धन्य हो गया हूँ। अब मेरे ऊपर अनुग्रह कर आप मुझे जंगम का लक्षण और उसकी महिमा सुनाइये॥२॥

अनन्तरुद्र उत्तर देते हैं-

हे बृहस्पति! मैं तुम्हें जंगम के वैभव को सुनाता हूँ। इसका स्वरूप आगमों के [१]उत्तर भाग में छिपा हुआ है। जो इसको जान लेता है, वह अमृत (मोक्ष) पदवी को जाता है॥३॥

जंगम और स्थावर ये दो भगवान् शिव के रूप हैं। इनमें से स्थावर के भी दो भेद हैं — स्वयंव्यक्त और प्रतिष्ठित॥४॥ काशी विश्वेश्वर आदि का स्वरूप स्वयंव्यक्त

---

१. वेदान्त पद से जैसे वेदों के अन्तिम भाग में स्थित उपनिषदों का ग्रहण किया जाता है, उसीतरह से यहां आगमान्त पद से आगमों के उत्तर भाग का ग्रहण किया जाता है। सिद्धान्तशिखामणि (५।१४) में स्पष्ट रूप से बताया गया है कि सिद्धान्त शास्त्र के नाम प्रसिद्ध कामिकादि वातुलान्त २८ शैवागमों के उत्तर भाग में वीर शैवमत प्रतिपादित हैं।प्रस्तुत स्थल में इन्हीं आगमों का आगमान्त पद से उल्लेख हुआ है।

द्विविधो जङ्गमः

जङ्गमं द्विविधं प्रोक्तं मान्त्रिकं सहजं त्विति ।
मान्त्रिकं मन्त्रसामर्थ्यादावाहितमुदीरितम् ॥
ध्रियमाणं महाशैवैश्चरलिङ्गादिकं मुने ॥६॥
सहजं जङ्गमं माहेश्वर इत्यभिधीयते ।
माहेश्वरश्चरो भक्तः शैवो जङ्गम इत्यपि ॥
सहजस्याभिधानानि भवन्तीश्वरशासनात् ॥७॥

त्रिविधः सहजजङ्गमः

ब्रह्मचारी गृही चैव निराभारीति ते त्रयः ।
यथोत्तरं विशिष्यन्ते पूजनीया यथाविधि ॥८॥

भक्तिचिह्नानि

वक्ष्यामि भक्तिचिह्नानि प्रीती रुद्राक्षधारणे ।
भस्मत्रिपुण्ड्रे विश्वासः श्रद्धा पञ्चाक्षरे शुभे ॥९॥

है और आचार्य के द्वारा भूमिकर्षण से लेकर प्रतिष्ठा पर्यन्त [२]क्रियाकलाप द्वारा संपादित स्वरूप प्रतिष्ठित कहलाता है।।५।।

जंगम भी दो प्रकार का शास्त्रों में वर्णित है। इनके नाम मान्त्रिक और सहज हैं। मन्त्र की सामर्थ्य से आवाहित शिवस्वरूप वाला यह जंगम लिंग मान्त्रिक कहलाता है। इसी को चरलिंग भी कहते हैं। महाशैव (वीरशैव) इसे इष्टलिंग के रूप में धारण करते हैं।।६।। सहज नाम का जंगम माहेश्वर कहलाता है। माहेश्वर, चर, भक्त, शैव, जंगम ये सब ईश्वर के उपदेश के अनुसार सहज जंगम के विभिन्न नाम हैं।।७।।

इस सहज जंगम की तीन स्थितियां हैं — ब्रह्मचारी, गृही और निराभारी। इनमें एक से दूसरा श्रेष्ठ है, अर्थात् ब्रह्मचारी से गृही और गृही से निराभारी श्रेष्ठ है। इनकी विधिपूर्वक पूजा करनी चाहिये।।८।।

अब मैं तुम्हें शिव के प्रति [३]भक्ति की उत्पत्ति के लक्षण बताता हूँ। ऐसे शिवभक्त

---

२. आगमों के क्रियापाद में भूमिकर्षण से लेकर मूर्तिप्रतिष्ठा पर्यन्त कार्यकलाप का वर्णन मिलता है। क्रियापाद में इस पूरे विधिविधान का यहां स्मरण किया गया है। शिष्य दीक्षा से लेकर प्रासाद और मूर्तिनिर्माण आदि सभी संबद्ध विषयों का आगमों के क्रियापाद में विशद वर्णन मिलता है।

३. शैव शास्त्रों में शक्तिपात अर्थात् ईश्वर के अनुग्रह के सूचक चिह्नों के रूप में इस प्रकार के विवरण मिलते हैं। शक्तिपात और उसके चिह्नों का स्वरूप लुप्तागमसंग्रह, द्वितीय भाग के उपोद्घात (पृ. १५५-१५७) में देखा जा सकता है।

आसक्तिः शिवशुब्द्रे चात्यादरो लिङ्गधारणे ।
चरान्तरे परा प्रीतिः शिवकार्ये मनोजयः ॥१०॥
शैवशास्त्रे परा श्रद्धा तदध्यापनमन्वहम् ।
स्वयमध्ययनं चापि चरलक्ष्माणि निश्चिनु ॥११॥

चर(जङ्गम)दशचिह्नानि

तेषां बाह्यानि चिह्नानि दश सन्ति बृहस्पते ।
प्रथमं भस्मरुद्राक्षलिङ्गधारणमीरितम् ॥
द्वितीयं गुरुसेवा च शिवस्तोत्रं तृतीयकम् ॥१२॥
नामोच्चारणमीशस्य चतुर्थं परिकीर्तितम् ।
पञ्चमं देवदेवस्य पूजनं समुदीरितम् ॥१३॥
षष्ठं शिवागमार्थानुसन्धानमिति चोदितम् ।
तथा शिवपुराणानां श्रवणं सप्तमं विदुः ॥१४॥
नमस्कारश्चराणां च परिकीर्तितमष्टमम् ।
नवमं शिवभक्तानां गृहभोजनमीरितम् ॥१५॥
दानं च दशमं ज्ञेयं जङ्गमे च गुरावपि ।
एवं बाह्यानि चिह्नानि कथितानि दशैव तु ॥१६॥

की रुद्राक्ष धारण में रुचि, भस्म और त्रिपुण्ड्र धारण करने में विश्वास तथा शुभ पंचाक्षर मन्त्र में श्रद्धा जाग उठती है॥९॥ उसकी शिव शब्द पर अत्यन्त आसक्ति, लिंग धारण में अति आदर तथा अन्य जंगमों के प्रति परम प्रीति जाग उठती है और वह शिव के कार्य के लिये मन पर विजय प्राप्त कर लेता है, अर्थात् सब तरफ से ध्यान हटा कर एकाग्र मन से शिव की आराधना में लग जाता है॥१०॥ शैवशास्त्र में उसकी परम श्रद्धा जाग उठती है। वह प्रतिदिन इन शास्त्रों के अध्ययन और अध्यापन में लगा रहता है। शिवभक्तिसम्पन्न जंगम में ये ही सब लक्षण प्रकट हो उठते हैं॥११॥

हे बृहस्पति! जंगमों के बाह्य दस चिह्न होते हैं। इनमें पहला चिह्न भस्म, रुद्राक्ष और लिंग को धारण करना है। दूसरा चिह्न गुरुसेवा और तीसरा शिव के स्तोत्रों का पाठ करना है॥१२॥ चौथा चिह्न ईश्वर के नामों को उच्चारण करना और पाँचवां चिह्न देवताओं के देवता शिव का पूजन करना है॥१३॥ छठा चिह्न शिवागमों के अर्थ का अनुसन्धान करना कहा गया है और सातवां चिह्न शिवपुराणों का श्रवण करना है॥१४॥ जंगमों के प्रति नमस्कार करना आठवां और नवां चिह्न अपने घर में शिवभक्तों को भोजन कराना है॥१५॥ जंगम और गुरु को अभीष्ट दान करना दसवां बाह्य चिह्न है। इस तरह से ये दस बाह्य चिह्न कहे गये हैं॥१६॥

आन्तराणि त्रीणि चिह्नानि

त्रीण्यान्तराणि चिह्नानि कथितानि महात्मनाम् ।
शृणु तानि यथा विद्वन् मानसः प्रथमो जपः ॥१७॥
पूजा च मानसी ज्ञेया द्वितीया परमेशितुः ।
साक्षात्कारस्तृतीयस्तु स्वान्तरे परमेशितुः ॥१८॥
आन्तराण्यपि बाह्यानि येषां सन्ति यदा पुनः ।
तदाऽपराणि चिह्नानि दश तेषां भवन्ति हि ॥१९॥

अपराणि दश चिह्नानि

कण्ठे विकारः प्रथमं गद्गदाख्यं द्वितीयकम् ।
जिह्वास्पन्दस्तृतीयं तु स्फुरणं त्वोष्ठयोरपि ॥२०॥
कम्पनं च शरीरस्य चतुर्थं भक्तिलक्षणम् ।
रोमाञ्चः पञ्चमं षष्ठं स्वेदश्च कीर्तितम् ॥२१॥
स्खलनं सप्तमं ज्ञेयमष्टमं बाष्पनिर्गमः ।
रोदनं नवमं चिह्नं दशमं पारवश्यकम् ॥
एतानि दशचिह्नानि भक्तेरुक्तानि शूलिना ॥२२॥
उक्तान्येतानि चिह्नानि येषां सन्ति महात्मनाम् ।
ते भक्ताः शाङ्करा ज्ञेयाः सर्वलोकैकपावनाः ॥२३॥

महात्माओं के तीन आन्तर चिह्न भी शास्त्रों में बताये गये हैं। हे विद्वन्! तुम उनको सुनो। उनमें से पहला चिह्न है मानस जप॥१७॥ परमेश्वर की मानस पूजा दूसरा चिह्न है और अपने हृदय में परमेश्वर का साक्षात्कार करना तीसरा चिह्न है॥१८॥ जिन महात्माओं में ये बाह्य और आन्तर दोनों प्रकार के चिह्न विद्यमान रहते हैं, तब उनमें अन्य दस प्रकार के चिह्न भी प्रकट हो जाते हैं॥१९॥

इनमें पहला चिह्न है कण्ठ का विकार (खरास)। दूसरा चिह्न वाणी का गद्गद हो जाना है। तीसरी स्थिति में जिह्वा और ओष्ठों का परिस्पन्दन होने लगता है॥२०॥ भक्ति की परिपक्वता का चौथा चिह्न शरीर का कम्पन और पाँचवां चिह्न रोमांच है। छठी स्थिति में पसीना छूटने लगता है॥२१॥ सप्तम स्थिति में व्यक्ति अधीर हो उठता है और आठवीं में आंसू आने लगते हैं। नवीं स्थिति में भक्त रोने लगता है और दसवीं स्थिति में वह एक दम परवश हो जाता है। भगवान् त्रिशूलधारी शिव ने भक्ति के ये दस चिह्न कहे हैं॥२२॥ ऊपर बताये गये ये सब चिह्न जिन महात्माओं में प्रकट हो उठते हैं, ऐसे भगवान् शंकर के ये भक्त सभी लोकों को पवित्र बना देने में समर्थ होते हैं॥२३॥

भक्तमहिमा

अपारो भक्तमहिमा तद्वक्तुं केन शक्यते ।
स्वभक्तान् देवदेवोऽपि यत् स्वस्मान्मनुतेऽधिकान् ॥२४॥
अगस्त्यः कुम्भजन्मा तु शिवभक्त्यैव केवलम् ।
पपौ समुद्रमतुलं शिवभक्त्युपबृंहितः ॥२५॥
अणुर्महत्त्वं संयाति महच्चाणुत्वमाव्रजेत् ।
स्थलं जलधितां याति जलधिः स्थलतां व्रजेत् ॥२६॥
संकल्पमात्रतो येषां शिवानुभवशालिनाम् ।
महिमा वाङ्मनोदूरस्तेषां कैर्वक्ष्यते कथम् ॥२७॥
तस्मात् सर्वोत्तमा भक्ताः शिवेनैवोदितं पुरा ।
यद्यदिच्छन्ति मे भक्तास्त्रैलोक्येऽपि च दुर्लभम् ॥
तत् सद्यः साधयिष्यामि व्रतमेतत् सदा मम ॥२८॥

चर(जङ्गम)महिमा

ऐहिकामुष्मिका भोगा मोक्षस्तत्संगतो भवेत् ।
चरसंगस्तु सर्वेषां सर्वकामफलप्रदः ॥२९॥
तत्पादपांसुभिः पूतं भवनं चेतरद् वनम् ।

भक्ति की महिमा अपार है। इसका वर्णन नहीं किया जा सकता। देव-देव भगवान् शिव ऐसे अपने भक्तों को अपने से भी बढ कर मानते हैं॥२४॥ घड़े से उत्पन्न हुए महर्षि अगस्त्य केवल एक शिवभक्ति के प्रभाव से ही अपार समुद्र के जल का पान कर गये। शिवभक्ति का यह उनमें चरम उत्कर्ष माना जायगा॥२५॥ शिवभक्ति की यह महिमा है कि इसके प्रभाव से अणु महान् बन जाता है और महान् अणु हो जाता है। स्थल समुद्र बन जाता है और समुद्र स्थल हो जाता है॥२६॥ शिव के अनुग्रह से सम्पन्न जिन महानुभावों के संकल्पमात्र से सब कुछ संभव हो सकता है, जिनकी महिमा वाणी और मन से अतीत है, ऐसे भक्तों के विषय में कौन क्या कह सकता है॥२७॥ इसीलिये शिव ने पहले ही कहा है कि मनुष्यों में भक्त सर्वश्रेष्ठ हैं। इसलिये ये जो कुछ चाहते हैं, वह भले ही त्रैलोक्य में दुर्लभ हो, उसे मैं तुरन्त प्रदान करूँगा, यह मेरा सनातन व्रत है॥२८॥

ऐहिक और पारलौकिक भोग ही नहीं, मोक्ष भी उनको अनायास मिल जायगा। इसीलिये चर जंगम की संगति सभी की सब प्रकार की कामनाओं को पूरा करने वाली है॥२९॥ वास्तव में घर वही है, जो ऐसे चर भक्तों की चरणरज से पवित्र है। बाकी

तद्यथाशक्ति संपूज्या जङ्गमा हि हितेप्सुना ॥
यदमी मानुषाकाराः प्रत्यक्षपरमेश्वराः ॥३०॥

त्रिविधा चरभक्तिः

चरेऽधिका स्वेष्टलिङ्गादुत्तमा भक्तिरुच्यते ।
चरेष्टलिङ्गयोस्तुल्या मध्यमेति निगद्यते ॥३१॥
चरे न्यूना स्वेष्टलिङ्गात् कनिष्ठा भक्तिरुच्यते ।
तस्माद्धि कुशलो नित्यमुत्तमां भक्तिमाश्रयेत् ॥३२॥

चरपूजा गरीयसी

सर्वतीर्थाभिषेकाच्च सर्वयज्ञविधानतः ।
सर्वदेवाराधनाच्च चरपूजा गरीयसी ॥३३॥
दूरे विलोक्य माहेशानभिगम्याभिवाद्य च ।
गृहमानीय यष्टव्यमित्येतच्छिवशासनम् ॥३४॥
चरो लोकहितार्थी स्यादहं चरहिते रतः ।
इति चरान् सुयष्टव्यमित्येच्छिवशासनम् ॥३५॥
जङ्गमानसमच्र्यैव मत्पूजा क्रियते यदि ।
सा पूजा विफलैव स्यादित्येतच्छिवशासनम् ॥३६॥

तो सब वन के समान हैं। इसलिये जो व्यक्ति अपना कल्याण चाहता है, उसे ऐसे जंगमों की शक्ति के अनुसार पूजा करनी चाहिये, क्योंकि ये तो मनुष्य की आकृति में साक्षात् परमेश्वर ही हैं॥३०॥

जिस व्यक्ति में अपने इष्टलिंग से बढकर चर से भक्ति है, वह उत्तम भक्ति कहलाती है। इन दोनों में समान भक्ति मध्यम कही जाती है॥३१॥ अपने इष्टलिंग से यदि चर में भक्ति न्यून है, तो यह भक्ति कनिष्ठ मानी जाती है। इसलिये समझदार व्यक्ति को चाहिये कि वह सदा उत्तम भक्ति का सहारा ले॥३२॥

चर की पूजा सभी तीर्थों में स्नान करने से, सभी प्रकार के यज्ञों का अनुष्ठान करने से और सभी देवताओं की आराधना से भी बढकर मानी गई है॥३३॥ माहेश्वर भक्तों को दूर से ही आता हुआ देखकर उनके पास पहुँच कर प्रणाम करना चाहिये और उन्हें अपने घर पर लाकर उनकी पूजा करनी चाहिये। यही शिव का शासन है॥३४॥ जंगम सारी प्रजा की हितकामना करता है और मैं उस चर की आवश्यकताओं को पूरा करने में लगा रहूँ, इसी अभिप्राय से इनकी पूजा करनी चाहिये। यही शिव -शास्त्र का आदेश है॥३५॥ जंगमों की बिना पूजा किये जो व्यक्ति मेरी पूजा करता है, तो उसकी यह पूजा निष्फल जाती है, यही शिवशास्त्र का उपदेश है॥३६॥ इसलिये

तदात्महितमाकाङ्क्षामाणः संपूजयेच्चरान् ।
तेषां यथा मनस्तृप्तिः सैव पूजा निगद्यते ॥३७॥
इदं ते चरमाहात्म्यं भोगमोक्षार्थसिद्धिदम् ।
कथितं संग्रहेणाथ किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥३८॥

इति चन्द्रज्ञानागमे उत्तरभागे अनन्तरुद्रबृहस्पति-
संवादे शिवशासने क्रियापादे जङ्गमस्वरूप-
निरूपणं नाम चतुर्थः पटलः ॥४॥

अपने हित की कामना वाला व्यक्ति चर की सर्वप्रथम उपासना करे। उनका मन जिस बात से सन्तुष्ट होता है, यही उनकी वास्तविक पूजा कही जाती है॥३७॥ इस तरह से हे बृहस्पति, मैंने तुमको भोग और मोक्ष की सिद्धि को देने वाले चर जंगम के माहात्म्य को संक्षेप में सुनाया है। इसके बाद अब तुम क्या सुनना चाहते हो॥३८॥

इस प्रकार अनन्तरुद्र और बृहस्पति के संवाद के रूप में
प्रस्तुत इस चन्द्रज्ञानागम के क्रियापाद का जंगम
के स्वरूप का निरूपण करने वाला यह
चौथा पटल समाप्त हुआ ॥४॥



पञ्चमः पटलः

बृहस्पतिरुवाच

अशेषज्ञाननिलय लोकानुग्रहतत्पर ।
अनन्तमहिमाम्बोधेऽनन्तरुद्र नमोऽस्तु ते ॥१॥
महिमानमिहानन्तं चराणां शिवयोगिनाम् ।
कृतकृत्योऽस्मि विश्वात्मन्नाकर्ण्य श्रीमदाननात् ॥२॥
शुश्रूषुरद्य भूमानं पादतीर्थप्रसादयोः ।
तमप्यावेद्य विश्वेश कृपयाऽनुग्रहाण माम् ॥३॥

अनन्तरुद्र उवाच

श्रृणु ते कथयिष्यामि पादतीर्थप्रसादयोः ।
स्वरूपमपि माहात्म्यमीश्वरेण प्रकाशितम् ॥४॥

पादतीर्थस्य त्रैविध्यम्

पादतीर्थं त्रिधा शम्भोर्गुरुजङ्गमयोरपि ।
दीक्षा शिक्षा ज्ञानमिति त्रिसंज्ञं तद्भवत्यहो ॥५॥

गुरुलिङ्गजङ्गमपादोदकव्यवस्था

पादतीर्थं सदा पेयं भवबन्धमुमुक्षुभिः ।
गुरोरपीष्टलिङ्गस्य चरस्यापि विशेषतः ॥६॥

बृहस्पति प्रश्न करते हैं—

समस्त ज्ञान के भण्डार, प्राणी मात्र पर अनुग्रह करने में कटिबद्ध, अनन्त महिमा के समुद्र हे अनन्तरुद्र! मैं आपको प्रणाम करता हूँ॥१॥ हे विश्वात्मन्! चर संज्ञक (जंगम नामक) शिवयोगियों की अनन्त महिमा को आपके मुख से सुनकर मैं कृतकृत्य हो गया हूँ॥२॥ अब मैं पादतीर्थ और प्रसाद की महिमा मो सुनना चाहता हूँ। हे विश्वेश! उसे भी मुझे बता कर अनुगृहीत कीजिये॥३॥

अनन्तरुद्र उत्तर देते हैं—

हे बृहस्पति! सुनो, मैं तुम्हें भगवान् शिव के द्वारा उपदिष्ट पादतीर्थ एवं प्रसाद का स्वरूप और माहात्म्य बताता हूँ॥४॥

पादतीर्थ तीन प्रकार का होता है—इष्टलिंग का, गुरु का और जंगम का। इन्हीं को क्रमशः दीक्षा पादोदक, शिक्षा पादोदक और ज्ञान पादोदक कहा जाता है॥५॥

संसार के बन्धन से मुक्ति चाहने वालों को गुरु के, इष्टलिंग के और विशेष कर जंगम के भी पादतीर्थ का पान सदा करना चाहिये॥६॥ गुरु और जंगम के

गुरोश्चरस्य चालाभे इष्टलिङ्गपदोदकम् ।
लब्ध्वा गुर्वादिपादोदं भावयेन्मनसैव तत् ॥७॥
चरवर्जं गुरोर्लाभे लब्ध्वा गुरुपदोदकम् ।
गुरुजङ्गमपादोदं लब्धवानिति भावयेत् ॥८॥
गुरुवर्जं चरप्राप्तौ लब्ध्वा चरपदोदकम् ।
तदेव गुरुपादोदमिति मत्वा पिबेत् तदा ॥९॥
पाद्यं दत्वा विभोस्तस्य गृह्णीयात् पादतो जलम् ।
शतधारेण मन्त्रेण पञ्चाक्षरयुतेन च ॥१०॥
धृत्वा शिरसि पादाम्बु महत्फलमवाप्नुयात् ।
ऋतं सत्यमिति प्राश्य चाऽनन्तफलमश्नुते ॥११॥
अकालमृत्युमथनं सर्वव्याधिविनाशनम् ।
सर्वपापोपशमनं शम्भोः पादोदकं शुभम् ॥१२॥
मङ्गलं मङ्गलानां च सर्वपावनपावनम् ।
दुष्टग्रहोपशमनम् इष्टसिद्धिप्रदायकम् ॥१३॥

पादोदक के न मिलने पर इष्टलिंग के पादोदक को ही लेकर उसमें गुरु और जंगम के पादोदक की भी भावना कर लेनी चाहिये।।७।। जंगम को छोड़ केवल गुरु के मिल जाने पर भी गुरु के पादोदक को प्राप्त कर उसमें ऐसी भावना करे कि गुरु और जंगम दोनों का पादोदक मिल गया है।।८।। गुरु को छोड़ केवल जंगम के मिल जाने पर भी जंगम के पादोदक को प्राप्त कर उसमें ऐसी भावना करे कि गुरु का पादोदक भी मिल गया है और तब उसका पान करे।।९।। भगवान् शिव के स्वरूप गुरु को पाद्य समर्पित कर उनके चरणोदक का पंचाक्षर मन्त्र के साथ [१]शतधार मन्त्र से पात्र में उसका संग्रह चाहिये।।१०।। उस चरणोदक को सिर पर धारण करने से महान् फल की प्राप्ति होती है और [२]ऋतं सत्यं मन्त्र से उसका पान कर अनन्त फल का भागी होता है।।११।। इष्टलिंग का कल्याणप्रद यह पादोदक अकाल मृत्यु को रौंद देने वाला, सभी प्रकार के रोगों का नाश कर देने वाला और सभी पापों का उपशमन करने वाला है।।१२।। यह पादोदक मंगलों का भी मंगल, सभी पावन वस्तुओं को भी पवित्र करने

१. पूरे मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—"वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्त्रधारम्। देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा कामधुक्षः ॥" (शुक्लयजुर्वेद माध्यन्दिन संहिता, १.२)
२. पूरी ऋचा इस प्रकार है—"ऋतं सत्यं परं ब्रह्म पूरुषं कृष्णपिङ्गलम् । ऊर्ध्वरेतं विरूपाक्षं विश्वरूपाय वै नमः॥" (तैत्तिरीय आरण्यक, १०.१२.१)

सर्वदुःखप्रशमनं सर्वोपद्रवनाशनम् ।
सर्वसिद्धिप्रदं सद्यः सर्वेषां मुक्तिदायकम् ॥१४॥
एकमूर्तेस्त्रयो भागा गुरुर्लिङ्गं च जङ्गमः ।
तदेवंगुणकं ग्राह्यं गुरुजङ्गमयोरपि ॥१५॥

पादोदकमहिमा

शोषणं पापपङ्कस्य दीपनं ज्ञानतेजसः ।
गुरोः पादोदकं चित्रं संसारद्रुमनाशनम् ॥१६॥
सर्वतीर्थाभिषेके या शुद्धिर्मनसि जायते ।
गुरोरङ्घ्रिस्पर्शजले शिरसा धारिते हि सा ॥१७॥
सप्तसागरपर्यन्तं तीर्थस्नानफलं सदा ।
गुरोरङ्घ्रिपयोबिन्दुसहस्रांशं न पूरयेत् ॥१८॥
चरपादोदमहिमा वर्णितुं केन शक्यते ।
तद्धि मोचयितुं सद्यः शक्नुते यच्चराचरम् ॥१९॥

वाला, दुष्ट ग्रहों की शान्ति करने वाला और इष्ट सिद्धि को देने वाला है॥१३॥ यह पादोदक सभी प्रकार के दुःखों को शान्त करने वाला, सभी प्रकार के उपद्रवों का नाश करने वाला, सभी प्रकार की सिद्धियों को देने वाला और तत्काल सभी को मुक्ति दिलाने वाला है॥१४॥ गुरु, लिंग और जंगम ये एक ही भगवान् शिव के तीन स्वरूप हैं। इस लिये इष्टलिंग के पादोदक के समान गुण वाले गुरु और जंगम के पादोदक को भी ग्रहण करना चाहिये॥१५॥

यह पादोदक पापरूपी वृक्ष की जड़ को सुखा डालना है, ज्ञान की दीप्ति को बढाता है। यह गुरु का चरणोदक ऐसा विचित्र[३] है कि संसाररूपी वृक्ष का नाश कर देता है॥१६॥ सभी तीर्थों में स्नान करने से जो शुद्धि मन में उत्पन्न होती है, वह शुद्धि गुरु के चरणोदक को सिर पर धारण करने से अनायास मिल जाती है॥१७॥ सात सागरों तक पृथ्वी पर जितने भी तीर्थ हैं, उनमें स्नान करने जो फल मिलता है वह गुरु के चरणोदक की एक बूँद के सेवन से मिलने वाले फल के हजारवें भाग की बराबरी नहीं कर सकता॥१८॥ जंगम के पादोदक की महिमा का वर्णन कौन कर सकता है? क्योंकि वह तो चराचर सारे जगत् को तत्काल मुक्त करने में समर्थ है॥१९॥

---

३. लगभग इसी अभिप्राय के इस वचन को देखिये—"न केनापि श्रुतं दृष्टं वारिणा वारि शुष्यति। अहो भागीरथीवारा भवसिन्धुर्विशुष्यति ॥" सन्त शिरोमणि मन्मथ स्वामी की इस वाणी को भी देखिये—"गंगा तीर्थी एक अवगुण । खोली जाता जाय बुडोल॥"

५. प्रसादस्वरूपं माहात्म्यं च

अथ वक्ष्ये प्रसादस्य रूपं तद्वैभवं शृणु ।
गुरुलिङ्गजङ्गमानां भुक्तशेषः प्रसादकः ॥२०॥

त्रिविध: प्रसाद:

शुद्धसिद्धप्रसिद्धाख्यः स हि मुक्त्येकसाधनः ।
द्वयोस्त्रयाणां वा लाभे ग्राह्योऽयं पादतीर्थवत् ॥२१॥
शिवेन[४] भुक्तं भुञ्जीयात् तत्पीतं हि जलं पिबेत् ।
शिवाघ्रातं सदा जिघ्रेदेष धर्मः सनातनः ॥२२॥

शिवार्पितस्यैव प्रसादस्य परिग्राह्यत्वम्

भुञ्जते ये तु सम्मूढास्त्र्यम्बकायासमर्पितम् ।
ते भुञ्जते क्रिमीनेनांस्यधो गच्छन्ति शाश्वतम् ॥२३॥

पादतीर्थ की महिमा बताने के उपरान्त अब मैं प्रसाद का स्वरूप और उसकी महिमा को बता रहा हूँ, तुम उसे सुनो! गुरु, लिंग और जंगम को भोजन कराने के उपरान्त जो बचता है, उसे प्रसाद कहा जाता है॥२०॥

यह प्रसाद तीन प्रकार का है। इनके नाम शुद्धप्रसाद, सिद्धप्रसाद और प्रसिद्धप्रसाद हैं। यह प्रसाद मुक्ति का एकमात्र साधन है। दो अथवा तीनों के मिलने पर [५]पादोदक की प्रक्रिया के अनुसार ही इनका ग्रहण किया जाता है॥२१॥ शिव को भोग लगा कर ही स्वयं भोजन करें, उनके द्वारा पिये गये जल को ही स्वयं पिये, शिव के द्वारा आघ्रात गन्ध का ही स्वयं आघ्राण करे। यही सनातन धर्म है॥२२॥

जो मूढ व्यक्ति भगवान् शिव को बिना समर्पित किये स्वयं भोजन करते हैं, वे कृमि-कीट तथा पापपुंजों का ही भक्षण करते हैं, अर्थात् उनका भोजन करना कृमि-कीट के भक्षण के समान और [६]पापपुंज के भक्षण के समान हो जाता है। वे

---

४. यह श्लोक सिद्धान्तशिखामणि (९.७०) में पाठभेद के साथ उपलब्ध है। टीकाकार ने जाबाल श्रुति को भी उद्धृत किया है।

५. इसका अभिप्राय यह है कि गुरु का प्रसाद प्राप्त होने पर उसी में इष्टलिंग और जंगम के प्रसाद की भावना कर लेनी चाहिये। आचार दो प्रकार का है—सहजाचार और संबन्धाचार। स्वाभाविक रूप से प्राप्त किसी भी प्रसाद का ग्रहण सहजाचार तथा किसी एक प्रसाद के प्राप्त होने पर उसी में अन्य प्रसादों की भावना करना संबन्धाचार है। जैसे कि गुरु के प्रसाद के मिल जाने पर उसमें लिंग और जंगम के प्रसाद की भावना कर ली जाती है।

६. ''भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्'' (३।१३) भगवद्गीता के इस वचन का भी यही अभिप्राय है।

पत्रं पुष्पं फलं तोयमन्नपानाद्यमौषधम् ।
असमर्प्य न भुञ्जीत भगवन्तं सदाशिवम् ॥२४॥
शब्दस्पर्शरूपरसगन्धतन्मात्रपञ्चकम् ।
असमर्प्य न भुञ्जीत भगवन्तमुमापतिम् ॥२५॥
यदिन्द्रियागतं किञ्चिद् यत्सुखं तच्छिवार्पितम् ।
तत्प्रसादं च भोक्तव्यं तदिन्द्रियमुखेन च ॥२६॥
संयोगेषु वियोगेषु चाणुमात्रसुखानि च ।
इष्टलिङ्गे समर्प्यैव भुञ्जीयात् तानि सन्ततम् ॥२७॥
समर्पणं द्विधा प्रोक्तं स्थूलसूक्ष्मविभेदतः ।
यच्छब्दाद्यविभागेनैवेष्टलिङ्गे समर्प्यते ॥
द्रव्यं तत्स्थूलमित्युक्तमर्चाङ्गं तत्प्रकीर्तितम् ॥२८॥
शब्दादिविषया यत्र भावेनैव न चान्यथा ।
समर्प्यंते रूपमेव तद्धि स्थूलं (सूक्ष्मं) प्रकीर्तितम् ॥२९॥
अर्चाङ्गं स्थूलमित्युक्तं सूक्ष्मं स्यादौपभोगिकम् ।
पदार्थभोगावसरे शब्दादीनां विभागतः ॥
समर्पणं हि तत्सूक्ष्ममिदं स्यात् सार्वकालिकम् ॥३०॥

अनन्त काल तक अधोगति प्राप्त करते हैं॥२३॥ अतः पत्र, पुष्प, फल, जल, अन्न, पान, औषध आदि को भगवान् सदाशिव को समर्पित किये बिना ग्रहण न करे॥२४॥ शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध नामक पांच तन्मात्राओं का भी भगवान् उमापति को समर्पित किये बिना उपभोग न करे, अर्थात् विषयों के सूक्ष्म रूपों को भी मन में न लावे॥२५॥ जिस जिस इन्द्रिय के माध्यम से जो कुछ भी सुख मिलता है, उसे शिव को समर्पित कर देना चाहिये और तब भगवत्प्रसाद के रूप में ही उस इन्द्रिय-सुख का उपभोग करे॥२६॥ (इष्ट) संयोग और (अनिष्ट) वियोग से क्षणमात्र के लिये जो सुख मिलता है, उसका भी सदा इष्टलिंग को समर्पित करके ही उपभोग करना चाहिये॥२७॥ स्थूल और सूक्ष्म के भेद से समर्पण दो प्रकार का होता है। शब्द, स्पर्श आदि का विभाग किये बिना इष्टलिंग के प्रति जो द्रव्य समर्पित किया जाता है, उसको स्थूल कहते हैं। यह अर्चा (पूजा) का अंग माना जाता है॥२८॥ शब्द, स्पर्श आदि विषय जहां भाव के रूप में ही अर्पित किये जाते हैं, अन्य रूप में नहीं, वह सूक्ष्म समर्पण कहलाता है॥२९॥ स्थूल समर्पण अर्चा का अंग है। इसका सूक्ष्म अंग औपभोगिक कहलाता है। पदार्थों की भोग दशा में शब्द, स्पर्श आदि के विभागों का निरीक्षण करते हुए सदा सदा के लिये उनको भगवदर्पित कर दिया जाता है। यही

यदा येनेन्द्रियेणैव विषयो ह्युपभुज्यते ।
तदिन्द्रियगते लिङ्गे ह्यर्पणं सूक्ष्ममीरितम् ॥३१॥
समर्पणविशेषं ये भक्ताः सम्यग् विजानते ।
शम्भोः प्रसादमतुलमश्रमं विन्दते हि ते ॥३२॥

प्रसादलक्षणं महिमा च

समर्पितः प्रसादैककारणत्वान्महेशितुः ।
प्रसादत्वेन विख्यातः परमानन्ददायकः ॥३३॥
ऋतं सत्यं परं ब्रह्मामृतमित्यपि गीयते ।
प्रसादस्तस्य महिमा केन वा वर्ण्यते कथम् ॥३४॥
गुरूच्छिष्टं पुरोडाशं चरस्यापि विशेषतः ।
चरगुर्वोः प्रसादस्तु ध्रुवं पावित्र्यदायकः ॥३५॥
प्रसादमहिमाऽचिन्त्यः प्रोक्तो देवगुरो तव ।
गोपनीयः प्रयत्नेन किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥३६॥

*इति श्रीचन्द्रज्ञानागमे उत्तरभागेऽनन्तरुद्रबृहस्पति-
संवादे शिवशासने क्रियापादे पादोदकप्रसाद-
स्वरूपनिरूपणं नाम पञ्चमः पटलः ॥५॥*

उनका औपभोगिक सूक्ष्म रूप है॥३०॥ जब जिस इन्द्रिय से जिस विषय का उपभोग किया जाता है, उस इन्द्रिय में स्थित लिंग को उसे समर्पित कर देना ही सूक्ष्म समर्पण कहलाता है॥३१॥ इस सूक्ष्म समर्पण की विशेष प्रक्रिया को जो भली भांति जानते हैं, वे बिना प्रयास के शिव की अतुल प्रसन्नता को प्राप्त कर लेते हैं॥३२॥

समर्पित किये जाने के बाद जो महेश्वर की प्रसन्नता का एकमात्र कारण है, परम आनन्द का प्रदाता है, वह पदार्थ ही प्रसाद के नाम से विख्यात है॥३३॥ परब्रह्म की [७]ऋत, सत्य और अमृत के रूप में स्तुति की जाती है। इसकी महिमा का नाम ही प्रसाद है। इसकी महिमा का गुणगान कौन किस प्रकार कर सकता है॥३४॥ गुरु के द्वारा छोड़ा गया [८]पुरोडाश और विशेष रूप से जंगम का पुरोडाश अथवा इन दोनों का प्रसाद निश्चय ही पवित्रता प्रदान करने वाला है॥३५॥ इस प्रकार हे देवगुरो ! तुम्हारे

---

७. ऊपर की दूसरी टिप्पणी देखिये।

८. याग में देवता को आहुति देने के लिये जौ या चाँवल के आटे का हविर्द्रव्य के रूप में पुरोडाश बनाया जाता है। जिस वारणकाष्ठ के प्रादेश-प्रमाण के चतुरस्र पात्र में इसको रखा जाता है, उसको पुरोडाशपात्र कहते हैं।

षष्ठः पटलः

बृहस्पतिरुवाच

अप्रमेयप्रभावाढ्य जगदीश नमोऽस्तु ते ।
श्रुत्वा प्रसादभूमानं कृतकृत्योऽस्मि साम्प्रतम् ॥१॥
षष्ठस्य भस्मनश्चापि यन्माहात्म्यमनुत्तमम् ।
तदप्यावेद्य कृपया धन्यं संपादयाद्य माम् ॥२॥

अनन्तरुद्र उवाच

ब्रह्मन्नावेदयिष्यामि भस्मसंपादनं तथा ।
धारणं वैभवं चापि सावधानमनाः शृणु ॥३॥

६. भस्माख्यं षष्ठमावरणम्

विद्याशक्तिः समस्तानां शक्तिरित्यभिधीयते ।
गुणत्रयाश्रया विद्या सा विद्या च तदाश्रया ॥४॥

गो-गोमय-गोमूत्रस्वरूपनिरूपणम्

गुणत्रयमिदं धेनुर्विद्याऽभूद्गोमयं शुभम् ।
मूत्रं चोपनिषत् प्रोक्तं कुर्याद्भस्म ततः परम् ॥५॥

भस्मसम्पादनविधिः

पञ्चाक्षरेण मन्त्रेण धेनुं तत्राभिमन्त्रयेत् ।
अष्टोत्तरशतेनाथ प्राशयेत्तु जलं तृणम् ॥६॥

बृहस्पति प्रश्न करते हैं—

हे अपरिमित प्रभाव से सम्पन्न जगत् के स्वामी अनन्तरुद्र! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। अभी मैं प्रसाद की महिमा को सुन कर कृतकृत्य हो गया हूँ॥१॥ अब छठे भस्म नामक आवरण की श्रेष्ठ महिमा को सुनाकर आप आज मुझे धन्य बना दें॥२॥

अनन्तरुद्र उत्तर देते हैं—

हे बृहस्पति! भस्म कैसे बनाई जाती है तथा कैसे धारण की जाती है, इसकी महिमा क्या है? ये सब बातें मैं सुनाता हूँ। तुम सावधान होकर सुनो॥३॥

विद्याशक्ति समस्त पदार्थों की शक्ति मानी जाती है। यह विद्या तीनों गुणों का आधार है और इन तीनों गुणों पर विद्या आश्रित है॥४॥

ये तीन गुण ही धेनु का और विद्या कल्याणप्रद गोमय का रूप धारण करते हैं। उपनिषद् गोमूत्र है। इन तीनों से ही श्रेष्ठ भस्म तैयार की जाती है॥५॥

पंचाक्षर मन्त्र से धेनु को अभिमन्त्रित करके १०८ बार पंचाक्षर मन्त्र से ही अभिमन्त्रित जल और तृण उसे पान और भोजन के लिये दे॥६॥ शुक्ल पक्ष अथवा

उपोष्य च चतुर्दश्यां शुक्ले कृष्णेऽथवा व्रती ।
परेद्युः प्रातरुत्थाय शुचिर्भूत्वा समाहितः ॥७॥
कृतस्नानो धौतवस्त्रः पयोऽर्थं विसृजेच्च गाम् ।
उत्थाप्य गां प्रयत्नेन गायत्र्या मूत्रमाहरेत् ॥८॥
सौवर्णे राजते ताम्रे धारयेन्मृण्मये घटे ।
पौष्करेऽथ पलाशे वा पात्रे गोश‍ृङ्ग एव वा ॥९॥
आददीत हि गोमूत्रं मूलमन्त्रेण गोमयम् ।
अभूमिपातं गृह्णीयात् पात्रे पूर्वोदिते गृहे ॥१०॥
गोमयं शोधयेद् विद्वान् मूलमन्त्राष्टकेन च ।
दशजप्तेन मन्त्रेण गोमूत्रं शोधयेत् तथा ॥११॥
भवाय नममन्त्रेण गोमूत्रं गोमये क्षिपेत् ।
शर्वाय नम इत्येवं पिण्डानां च चतुर्दश ॥१२॥
कुर्यात् संशोष्य किरणैः सप्तमूलेन चाहरेत् ।
विदध्यादथ पूर्वोक्तपात्रे गोमयपिण्डकान् ॥१३॥

कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को उपवास रख कर व्रती साधक दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर पवित्र और एकाग्रचित्त होकर।॥७॥ स्नान कर के उपासक धुले हुए पवित्र वस्त्र धारण कर दूध दुहने के लिये गाय को उद्यत करे। पहले गाय को उठाकर प्रयत्नपूर्वक गायत्री मन्त्र से गोमूत्र का ग्रहण करे॥८॥ सुवर्ण के, चांदी के, ताम्र के अथवा मिट्टी के पात्र में अथवा कमलदल, पलाशपत्र आदि से बनाये गये पात्र में, अथवा गोश‍ृंग में गोमूत्र को मूल पंचाक्षरी मन्त्र का उच्चारण करते हुए ग्रहण करे। इसी प्रकार अपने घर में ही पूर्वोक्त पात्रों में से किसी एक में जमीन पर गिरने से पहले ही गोमय का भी संग्रह करे॥९-१०॥ विद्वान् साधक मूल पंचाक्षरी मन्त्र का आठ बार उच्चारण कर गोमय को तथा इसी तरह से दस बार मन्त्र का जप करते हुए गोमूत्र को सुसंस्कृत करे॥११। 'भवाय नमः' [१]मन्त्र से गोमूत्र को गोमय में मिलाना चाहिये। इसी तरह से 'शर्वाय नमः' [२]मन्त्र से गोमय के चौदह पिण्ड बनावे॥१२॥ फिर सूर्य की किरणों से उनको सुखा कर सात बार पंचाक्षर मन्त्र का उच्चारण करते हुए गोमय के पिंडों को उठा कर पहले बताये गये सोने, चांदी आदि के पात्र में रखना चाहिये॥१३॥

---

१. महानारायणोपनिषत्, १४.६
२. महानारायणोपनिषत्, १४.७

आहुतिविधानम्

शैवागमोक्तविधिना प्रतिष्ठाप्याग्निमर्चयेत् ।
पिण्डांश्च निक्षिपेत् तत्र चाद्यन्तप्रणवेन तु ॥१४॥
षडक्षरस्य मन्त्रस्य व्यावृत्तस्य तथाऽक्षरैः ।
स्वाहान्तैर्जुहुयात् तत्र वर्णैर्गोमयपिण्डकान् ॥१५॥
मूलेनैवाज्यभागौ च प्रक्षिपेदेव संयतः ।
ततो निधनपतये त्रयोविंशं जुहोति च ॥
होतव्याः पञ्चब्रह्माख्या नमो देवाय शम्भवे ॥१६॥
इति सर्वाहुतीर्हुत्वा चतुर्थ्यन्तैश्च मन्त्रकैः ।
भवः शर्वो मृडो रुद्रो हरः शम्भुर्महेश्वरः ॥१७॥
एतैश्च जुहुयाद् विद्वान् मूलमन्त्राष्टकं तथा ।
शिवाय त्रयहोमश्च स्विष्टकृन्मूलमन्त्रतः ॥१८॥

तब शैवागमों में बताई गई विधि से [3]अग्नि की स्थापना कर उसका पूजन करना चाहिये। इसके बाद मूल पंचाक्षर मन्त्र के आदि और अन्त में प्रणव का उच्चारण करते हुए उन गोमय पिण्डों को अग्नि में रखना चाहिये॥१४॥ षडक्षर मन्त्र के वर्णों का क्रम से और विपरीत [4]क्रम से उच्चारण करते हुए अन्त में स्वाहा पद को जोड़ कर इन गोमय पिंडों को अग्नि में रखना चाहिये॥१५॥ इसके अनन्तर संयतेन्द्रिय साधक को षडक्षर मन्त्र से आज्य भाग की आहुति देनी चाहिये। तब 'निधनपतये' [5]मन्त्र से २३वीं आहुति देकर 'पंचब्रह्म' [6]मन्त्रों से तथा 'नमो देवाय शम्भवे' मन्त्र से घृत की आहुतियां देनी चाहिये॥१६॥ इस तरह से ऊपर बताई गई आहुतियों को देने के बाद भव, शर्व, मृड, रुद्र, हर, शम्भु, महेश्वर और शिव—इन आठ नामों के साथ [7]चतुर्थी

---

३. अग्निस्थापन की विधि अजितागम क्रियापाद के २१ वें पटल में विस्तार से दी गई है। वीरशैव-दीक्षाविधि (पृ० ९६-१०२) भी देखिये।

४. "ॐ नमः शिवाय" यह षडक्षर मन्त्र का अनुलोम क्रम है। विलोम क्रम मे "य वा शि मः न ॐ" यह मन्त्राक्षरों का क्रम होगा।

५. "निधनपतये नमः। निधनपतान्तिकाय नमः" (महाना० १४.१)

६. "सद्योजातं प्रपद्यामि, वामदेवाय नमः, अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यः, तत्पुरुषाय विद्महे, ईशानः सर्व-विद्यानाम्" (तैत्तिरीय आरण्यक, १०। ४३-४७) ये पांच मन्त्र पंचब्रह्म के नाम से शैव शास्त्रों में प्रसिद्ध हैं। महाना० १५-१९ अनुवाद भी देखिये।

७. मन्त्रक्रम इस प्रकार होगा—भवाय शिवाय नमः, शर्वाय शिवाय नमः, मृडाय शिवाय नमः, रुद्राय शिवाय नमः, हराय शिवाय नमः, शम्भवे शिवाय नमः, महेश्वराय शिवाय नमः, शिवाय शिवाय नमः।

इत्थं शेषं तु निर्वर्त्य पूर्णपात्रोदकं तथा ।
अष्टोत्तरशतेनाथ तर्पयेच्छुद्धमानसः ॥१९॥

पुलकाहरणम्

पञ्चब्रह्मेण मन्त्रेण तज्जलं शिरसि क्षिपेत् ।
दशवारं तु जप्तेन दिक्षु तोयं विनिक्षिपेत् ॥
शैवानां दक्षिणां दत्वा शान्त्यै पुलकमाहरेत् ॥२०॥
शैवानामाहरिष्यामि सर्वेषां कर्मगुप्तये ।
जातवेदसमेनं त्वां पुलकैश्छादयाम्यहम् ॥२१॥
मन्त्रेणानेन तं वह्निं पुलकैश्छादयेत् ततः ।
त्रिदिनं ज्वलनस्थित्यै छादनं पुलकं स्मृतम् ॥
ब्राह्मणान् भोजयेद् भक्त्या स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ॥२२॥
दिनत्रयेण यदि वा प्रथमे दिवसेऽथवा ।
द्वितीये वा तृतीये वा प्रातः स्नात्वा सिताम्बरः ॥२३॥
शुक्लभास्वद्यज्ञसूत्रः शुद्धभस्मानुलेपनः ।
मूलमन्त्रं समुच्चार्य पुलकं भस्म सन्त्यजेत् ॥२४॥

विभक्ति जोड़कर और प्रत्येक चतुर्थ्यन्त मन्त्र के साथ पंचाक्षर मन्त्र का उच्चारण करते हुए आहुतियां देनी चाहिये। तब पंचाक्षर मन्त्र से शिव के लिये स्विष्टकृद्[८] होम की तीन आहुतियां दे॥१७-१८॥ इसी तरह से अन्य सारी क्रियाओं को पूरा करके शुद्ध मन वाला साधक १०८ बार मूल मन्त्र का उच्चारण कर जल से तर्पण करे॥१९॥

तब पंचब्रह्म मन्त्र से उस जल को अपने सिर पर छिड़के । दस बार अभिमन्त्रित जल को क्रमशः दशों दिशाओं में छिड़के । तब शैवाचार्यों को दक्षिणा देकर शान्ति के लिये पुलक[९] का आहरण करे॥२०॥ सभी शैव भक्तों के द्वारा सम्पादित कर्मों की रक्षा के लिये मैं पुलक का आहरण करता हूँ। हे अग्निदेव! अब मैं तुमको इन पुलकों से ढंक रहा हूँ॥२१॥ इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए पुलक से वह्नि को ढंक दे। तीन दिन तक अग्नि जलती रहे, इसके लिये साधनभूत विधि को ही पुलक कहा जाता है। इसके बाद भक्तिभावपूर्वक ब्राह्मणों को भोजन करावे और मौन धारण कर स्वयं भी भोजन करे॥२२॥ तीन दिन बाद अथवा पहले दिन, दूसरे दिन या तीसरे दिन प्रातः स्नान कर शुक्ल वस्त्र धारण करे॥२३॥ उज्ज्वल शुक्ल यज्ञोपवीत धारण

८. स्विष्टकृद् होम वीरशैवलिंगीब्राह्मणदशकर्मपद्धति के वीरशैव दीक्षाविधि प्रकरण (पृ० ११९) में देखिये।

९. पुलक शब्द का प्रयोग यहां धान की भूसी के लिये हुआ है, जिसकी धीमी आंच में रखकर अभिमन्त्रित गोबर के गोलों को पकाकर भस्म तैयार की जाती है।

ततश्चावाहनमुखानुपचारांस्तु षोडश ।
कृत्वाऽऽहृत्य तथा शैवं ततोऽग्निमुपसंहरेत् ॥२५॥

सद्यादिमन्त्रेण भस्मशुद्धीकरणम्

सद्यादिकेन मन्त्रेण गृह्णीयाद् भस्म चोत्तमम् ।
तदनन्तरमन्त्रेण प्रमृज्य च ततः परम् ॥
संयोज्य गन्धसलिलैः कपिलामूत्रकेण वा ॥२६॥
चन्द्रकुङ्कुमकस्तूरीमुशीरं चन्दनं तथा ।
अगरुद्वितयं चैव चूर्णयित्वा तु सूक्ष्मतः ॥२७॥
प्रणवेनाहरेद् विद्वान् बृहतो वटकानथ ।
अघोरमन्त्रतश्चाथ दशजप्तेन मूलतः ॥२८॥

भस्मसम्पादनस्य विधानान्तरम्

विधान्तरं प्रवक्ष्यामि भस्मसंपादनं लघु ।
सद्येन गोशकृद् ग्राह्यं वामेन त्वभिमन्त्रयेत् ॥२९॥
अघोरेण दहेत् पिण्डं ग्राह्यं तत्पुरुषेण तु ।
नित्यमीशानमन्त्रेण स्वाङ्गे धार्यं प्रयत्नतः ॥३०॥

कर और शुद्ध भस्म का अनुलेपन कर साधक पंचाक्षर मन्त्र का उच्चारण करते हुए पुलक की भस्म को हटावे॥२४॥ तब आवाहन आदि सोलह उपचारों से अग्नि का पूजन कर वहां से हटाकर उस [१०]शैव अग्नि का विसर्जन कर दे॥२५॥

अब [११]सद्योजात मन्त्र से उस उत्तम भस्म को लेकर बाद के वामदेव मन्त्र से उसका चूर्ण बना कर इसके बाद उसमें सुगन्धित जल या कपिला गौ का मूत्र मिलावे॥२६॥ कपूर, कुंकुम, कस्तूरी, उशीर, चन्दन और दोनों तरह की अगुरु का सूक्ष्म चूर्ण बना कर उसमें मिलाना चाहिये॥२७॥ इसके बाद विद्वान् साधक ॐकार का उच्चारण करते हुए अघोर मन्त्र का और पंचाक्षर मन्त्र का दस बार उच्चारण करते हुए भस्म के बड़े गोले बनावे॥२८॥

भस्म बनाने की एक दूसरी संक्षिप्त विधि भी मैं तुमको बताता हूँ। इसके अनुसार सद्योजात मन्त्र से गोमय का ग्रहण तथा वामदेव मन्त्र से उसको अभिमन्त्रित करते हुए उसे सुखावे॥२९॥ अघोर मन्त्र से गोमयपिंड का दहन करे और तत्पुरुष

१०. ऊपर तीसरी टिप्पणी में प्रदर्शित अजितागम के २१ वें पटल (श्लो. ६७-८४) में अग्नि के संस्कार की विधि प्रदर्शित है। इन संस्कारों से संस्कृत अग्नि को शैव अग्नि कहा जाता है ।

११. सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः। भवे भवे नातिभवे भवस्व मां भवोद्भवाय नमः ॥ (तै० आ० १०.४३.१. तथा महाना० १५ अनु.)

भस्मत्रैविध्यम्

शान्तिकं पौष्टिकं भस्म कामदं च त्रिधा भवेत् ।
गोमयं योनिसम्बद्धं यद्धस्तेनैव गृह्यते ॥
ब्रह्ममन्त्रैश्च संदग्धं तच्छान्तिकमिहोच्यते ॥३१॥
सावधानेन गोयोनिनिस्सृतं गोमयं तु यत् ।
अन्तरिक्षे गृहीत्वा तं षडङ्गेन दहेत् ततः ॥
पौष्टिकं तु समाख्यातं कामदं तु ततः शृणु ॥३२॥
सुशुद्धे भूतले दैवात् पतितं गोमयं तु यत् ।
प्रसादेन दहेदेवमेतत् कामदमुच्यते ॥३३॥

भस्मधारणम्

शिवाग्निजनितं भस्म शस्तं स्याच्छिवयोगिनाम् ।
विरजानलजं चैव धार्यं भस्म महामुनेः ॥३४॥
औपासनसमुत्पन्नं गृहस्थानां विशिष्यते ।
समिदग्निसमुत्पन्नं शस्तं वै ब्रह्मचारिणाम् ॥३५॥
त्रैवर्णिकानां सर्वषामग्निहोत्रसमुद्भवम् ।
शूद्राणां श्रोत्रियागारपचनाग्निसमुद्भवम् ॥
अन्येषामपि सर्वेषां धार्यं दावानलोद्भवम् ॥३६॥

मन्त्र से उसका ग्रहण कर ईशान मन्त्र से प्रयत्नपूर्वक अपने शरीर पर उसे धारण करे॥३०॥

यह भस्म शान्तिक, पौष्टिक और कामद के भेद से तीन प्रकार की होती है। गोयोनि से निकलते समय ही गोमय को हाथ में लेकर उसे पंचब्रह्म मन्त्रों से संदग्ध कर जो भस्म बनाई जाती है, वह शान्तिक भस्म कहलाती है॥३१॥ गोयोनि से निःसृत गोमय को पृथ्वी पर गिरने से पहले ही सावधानी से बीच में ही लेकर षडंग मन्त्रों से उसे संदग्ध कर जो भस्म बनाई जाती है, वह पौष्टिक भस्म कहलाती है॥३२॥ अनायास पवित्र भूमि पर गिरे गोमय को लेकर प्रसाद मन्त्र से उसे संदग्ध कर बनाई गई भस्म कामद कहलाती है॥३३॥

शिवयोगियों के लिये शिवाग्नि से तैयार की गई भस्म प्रशस्त है। मुनियों के लिये विरजानल से तैयार की गई भस्म धारणीय मानी गई है॥३४॥ [१२]औपासन अग्नि से उत्पन्न भस्म गृहस्थों के लिये और समिधा से उत्पन्न भस्म ब्रह्मचारियों के लिये प्रशस्त है॥३५॥ सभी त्रैवर्णिकों के लिये अग्निहोत्र से उत्पन्न भस्म और शूद्रों

---

१२. औपासनाग्नि गृह्याग्नि का ही दूसरा नाम है।

भस्मस्नानोद्धूलनविधि:

भस्मस्नानविधिं वक्ष्याम्यशेषाघौघनाशनम् ।
भस्ममुष्टिं समादाय संहितामन्त्रमन्त्रितम् ॥
मस्तकात् पादपर्यन्तं भस्मस्नानं समाचरेत् ॥३७॥
ईशेन पञ्चधा भस्म विकिरेन्मूर्ध्नि यत्नतः ।
मुखे चतुस्तत्पुरुषेणाघोरेणाष्टधा हृदि ॥३८॥
वामेन गुह्यदेशे तु त्रिदशधा ततः पुनः ।
अष्टधा सद्यमन्त्रेण पादमुद्धूल्य यत्नतः ॥
सर्वाङ्गोद्धूलनं कुर्यात् पञ्चभिर्ब्रह्मभिः पुनः ॥३९॥

त्रिविधं भस्मधारणम्

उद्धूलनं ततश्चैवमवगुण्ठनमेव च ।
त्रिपुण्ड्रं चेति विख्यातं त्रिविधं भस्मधारणम् ॥४०॥

के लिये श्रोत्रिय के रसोई घर की अग्नि से उत्पन्न भस्म श्रेष्ठ है। इसी तरह से ऊपर निर्दिष्ट चार वर्णों से भिन्न सभी व्यक्तियों के लिये दावानल से उत्पन्न भस्म धारणीय मानी गई है॥३६॥

अब मैं समस्त पापसमूह का नाश कर देने वाली भस्मस्नान की विधि बताऊँगा। संहिता में बताये मन्त्रों से अभिमन्त्रित भस्म को मुष्टि में लेकर उससे मस्तक से पाद पर्यन्त स्नान करना चाहिये॥३७॥ ईशान मन्त्र से मस्तक पर पांच बार यत्नपूर्वक भस्म डाले, तत्पुरुष मन्त्र से मुख पर चार बार और अघोर मन्त्र से हृदय पर आठ बार भस्म डाले॥३८॥ वामदेव मन्त्र से तेरह बार गुह्य देश पर भस्म डाले और तब सद्योजात मन्त्र से आठ बार पैर पर भस्म का यत्नपूर्वक उद्धूलन[१३] करके तत्पश्चात् पुनः पंचब्रह्म मन्त्र से एक साथ सारे शरीर पर भस्म को डालकर भस्मस्नान की विधि को सम्पन्न करे॥३९॥

उद्धूलन, अवगुण्ठन और त्रिपुण्ड्र के भेद से भस्म धारण की तीन विधियां विख्यात है॥४०॥ पंचब्रह्म मन्त्रों से अथवा पंचाक्षर मन्त्र से अभिमन्त्रित कर बिना जल की भस्म को पैर से लेकर सिर तक सारे शरीर पर लगाना ही उद्धूलन कहलाता है॥४१॥ अभिमन्त्रित भस्म का जल के साथ अनुलेपन करना अवगुण्ठन कहलाता

---

१३. भस्मधारण की तीन विधियां हैं—भस्मस्नान, भस्मोद्धूलन और त्रिपुण्ड्र धारण। भस्मस्नान में वाम हस्त पर भस्म लेकर उसे दाहिने हाथ से चुटकी के सहारे मस्तक से लेकर शरीर के विभिन्न अंगों पर डाला जाता है। उद्धूलन में शरीर के विभिन्न अंगों पर पड़े भस्मकणों को वहीं मला जाता है। त्रिपुण्ड्र धारण की विधि तो सर्वत्र प्रसिद्ध है। (१।११।१०-१२) भी देखिये।

पञ्चभिर्ब्रह्मभिर्वाऽपि मूलमन्त्रेण वा पुनः ।
सम्मन्त्र्य निर्जलं भस्म तेन लिम्पेत् सुसंयतः ॥
सर्वाङ्गमापादशिखमुद्धूलनमिदं स्मृतम् ॥४१॥
भस्मना मन्त्रितेनैव सजलेनानुलेपनम् ।
अवगुण्ठनमाख्यातं त्रिपुण्ड्रमथ कथ्यते ॥४२॥

त्रिपुण्ड्रधारणद्वात्रिंशत्स्थानानि

त्रिपुण्ड्रं कारयेद्धीमान् ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ।
मध्याङ्गुलिभिरादाय त्रिसृभिर्मूलमन्त्रितम् ॥४३॥
द्वात्रिंशत्स्थानके वाथ षोडशस्थानकेऽथवा ।
अष्टस्थाने तथा चैवं पञ्चस्थाने च योजयेत् ॥४४॥
उत्तमाङ्गे ललाटे च कर्णयोर्नेत्रयोर्द्वयोः ।
नासावक्त्रगलेष्वेवमंसद्वयम् अनन्तरम् ॥४५॥
कूर्परे मणिबन्धे च हृदये पार्श्वयोर्द्वयोः ।
नाभौ गुह्यद्वये चैव ऊर्वोः स्फिग्बिम्बजानुषु ॥
जङ्घाद्वये पादयोश्च द्वात्रिंशत् स्थानमुत्तमम् ॥४६॥
अष्टमूर्त्यष्टविद्येशदिक्पालवसवोऽधिपाः ।
एतेषां नाममात्रेण त्रिपुण्ड्रं धारयेद् बुधः ॥४७॥

है। इसके बाद त्रिपुण्ड्र का स्वरूप कहा जा रहा है।॥४२॥

त्रिपुण्ड्र की तीन रेखाएं ब्रह्मा, विष्णु और शिवमय हैं। मध्य की तीन अंगुलियों से पंचाक्षर मन्त्र से अभिमन्त्रित भस्म लगानी चाहिये।॥४३॥ ३२ स्थानों पर, १६ स्थानों पर, आठ स्थानों पर अथवा पांच स्थानों पर त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये।॥४४॥ उत्तमांग (सिर) पर, ललाट पर, दोनों कानों और नेत्रों पर, दोनों नासिका, मुख और गले पर तथा बाद में दोनों कन्धों पर, कोहनियों पर, कलाईयों पर, हृदय और दोनों पसलियों पर, नाभि पर, गुदा पर और लिंग पर, दोनों नितम्बों पर, दोनों जांघों पर, दोनों घुटनों पर, पिंडलियों पर और चरणों पर इन ३२ स्थानों पर त्रिपुण्ड्र धारण करना उत्तम पक्ष है।॥४५-४६॥ इन बत्तीस स्थानों के [१४]अष्टमूर्ति शिव, [१५]आठ विद्येश,

---

१४. अष्टमूर्ति शिव के आठ नाम महिम्नस्तोत्र में इस प्रकार हैं — "भवः शर्वो रुद्रः पशुपतिरथोग्रः सह महांस्तथा भीमेशानाविति यदभिधानाष्टकमिदम्" (श्लो॰ २८)। सिद्धान्तशिखामणि (१०.४८-५४) के अष्टमूर्तिनिरसन स्थल में शिव की आठ मूर्तियों (पंचभूत, चन्द्र, सूर्य और यजमान) की चर्चा है। उन्हीं के ये नाम हैं।

१५. प्रथम पटल की पहली टिप्पणी देखिये।

षोडशस्थानानि

विदध्यात् षोडशस्थाने त्रिपुण्ड्रं च समाहित: ।
शीर्षके च ललाटे च कर्णे चांसद्वयेऽपि च ॥४८॥
कूर्परे मणिबन्धे च हृदये नाभिपार्श्वयो: ।
पृष्ठे चैवं प्रतिष्ठायां जपेत् तत्राधिदैवतम् ॥४९॥
शिवं शक्तिं च सादाख्यमीशं रुद्राख्यमेव च ।
नासत्यो दस्रकश्चैवमश्विनौ द्वौ समीरितौ ॥
वामादिनवशक्तीश्च एता: षोडश देवता: ॥५०॥
अथवा मूर्ध्नि वक्त्रे च कर्णयोर्घ्राणके तथा ।
बाहुद्वये च हृदये नाभ्यामूर्वोर्युगे तथा ॥
जानुद्वये च पदयो: पृष्ठभागे च षोडश ॥५१॥
शिव: स्कन्दश्च चन्द्रार्कौ विघ्नेशो विष्णुरेव च ।
श्रीश्चैव हृदये तद्वत् तथा नाभौ प्रजापति: ॥५२॥

---

[१६]आठ दिक्पाल और [१७]आठ वसु अधिपति (देवता) माने जाते हैं। इनके नामों का उच्चारण करते हुए विद्वान् साधक को त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये॥४७॥

इसी तरह से सोलह स्थानों पर भी सावधानी से त्रिपुण्ड्र धारण किया जाता है। वे स्थान हैं — शिर, ललाट, दोनों कान, दोनों कन्धे, दोनों कोहनी, दोनों कलाई, हृदय, नाभि, उभय पार्श्व, पृष्ठ भाग और प्रतिष्ठा (नितम्ब)। इन सोलह स्थानों के देवताओं के नाम इस प्रकार हैं — शिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर, रुद्र, नासत्य और दस्र नामक दोनों अश्विनीकुमार और वामा[१८] आदि नौ शक्तियां। उक्त सोलह स्थानों पर त्रिपुण्ड्र लगाते समय इन सोलह देवताओं का ध्यान करना चाहिये॥४८-५०॥ अथवा सिर, मुख, दोनों कान, नाक, बाहुद्वय, हृदय, नाभि, जंघायुगल, जानुद्वय और पैरों के साथ पृष्ठ भाग — इन १६ स्थानों पर त्रिपुण्ड्र धारण करे॥५१॥ शिव, स्कन्द, चन्द्र, सूर्य, विघ्नेश और विष्णु के अतिरिक्त हृदयस्थान की श्री और नाभि के प्रजापति देवता हैं॥५२॥ नागगण, नागकन्याएं, ऋषिगण और ऋषिकन्याएं ऊरुद्वय और

---

१६. प्रथम पटल की सातवीं टिप्पणी देखिये।
१७. प्रथम पटल की बारहवीं टिप्पणी देखिये।
१८. वामा आदि नौ शक्तियों के नाम इस प्रकार हैं — वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, काली, कलविकरणी, बलविकरणी, बलप्रमथनी, सर्वभूतदमनी और मनोन्मनी। देखिये — सोमशम्भुपद्धति (कर्मकाण्डक्रमावली), पृ० १९-२०.

नागाश्च नागकन्याश्च ऋषयो ऋषिकन्यकाः ।
पादयोस्तु समुद्राश्च तीर्थं पृष्ठेऽपि च स्मृताः ॥५३॥

अष्टस्थानानि

एवं वा षोडशस्थानमष्टस्थानमथोच्यते ।
शिरः स्थानं ललाटं च कर्णद्वयमनन्तरम् ॥५४॥
अंसयुग्मं च हृदयं नाभिरित्यष्टमं भवेत् ।
ब्रह्मा च ऋषयः सप्त देवताश्च प्रकीर्तिताः ॥५५॥
अथवा निटिलं बाहू हृदयं नाभिरेव च ।
भस्मस्थानानि कथ्यन्ते पञ्चब्रह्माणि देवताः ॥५६॥
यथासंभवमाकुर्याद् देशकालाद्यपेक्षया ।
उद्धूलनेऽप्यशक्तश्चेत् त्रिपुण्ड्रादीनि कारयेत् ॥५७॥

त्रिपुण्ड्रधारणविधिः

ऊर्ध्वपुण्ड्रं भवेत् साम मध्यपुण्ड्रं यजूंषि च ।
अधःपुण्ड्रमृचः साक्षात् तस्मात् पुण्ड्रं त्रियायुषम् ॥५८॥

जानुद्वय के, समुद्र चरणों के और तीर्थ पृष्ठ के देवता माने गये हैं।॥५३॥

इस तरह से सोलह स्थानों के दो पक्ष यहां बताये गये हैं। अब आठ स्थानों का वर्णन किया जा रहा है। वे हैं — शिरःस्थान, ललाट, दोनों कान, दोनों कन्धे, हृदय और नाभि । ब्रह्मा और [१९]सात ऋषि इनके देवता कहे गये हैं।॥५४-५५॥ अथवा ललाट, दोनों बाहु, हृदय, नाभि — इन पांच स्थानों पर त्रिपुण्ड्र धारण किया जाता है। पंचब्रह्म ही इनके अधिपति माने जाते हैं।॥५६॥ भस्म धारण की उक्त तीनों विधियों का देश और काल के अनुसार यथाशक्ति अनुष्ठान करे। जो साधक उद्धूलन क्रिया में असक्त है, उसे त्रिपुण्ड्र आदि का अनुष्ठान करना चाहिये।॥५७॥

त्रिपुण्ड्र कीं ऊर्ध्व रेखा सामवेद का, मध्य रेखा यजुर्वेद का और नीचे की रेखा ऋग्वेद का साक्षात् प्रतिनिधित्व करती हैं, अतः [२०]त्र्यायुष मन्त्र से, जाबालोपनिषद् के [२१]अग्निरिति भस्म इत्यादि सभी मन्त्रों से सभी साधकों को सजल भस्म से उद्धूलन

---

१९. पुराणों के अनुसार प्रत्येक मन्वन्तर के सप्तर्षि भिन्न भिन्न होते हैं । वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तर के सात ऋषि ये हैं — वसिष्ठ, कश्यप, अत्रि, जमदग्नि, गौतम, विश्वामित्र एवं भारद्वाज ।

२०. ''त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् । यद् देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम्॥'' (माध्य.३.६२)

२१. ''अग्निरिति भस्म। वायुरिति भस्म। जलमिति भस्म। स्थलमिति भस्म। व्योम इति भस्म। सर्वं वा इदं भस्म'' (भस्मजाबालोपनिषद्, १.३)

अग्निरित्यादिभिर्मन्त्रैर्जाबालोपनिषद्गतैः ।
सर्वैरुद्धूलनं कार्यं भस्मना सजलेन च ॥५९॥
त्रियायुषेण मन्त्रेण बुधैस्तिर्यक्त्रिपुण्ड्रकम् ।
धार्यं सदा द्विजश्रेष्ठैर्धार्मिकैर्वेदपारगैः ॥६०॥
मेधावीत्यादिना वाऽपि ब्रह्मचारी दिने दिने ।
भस्मना सजलेनैव धारयेच्च त्रिपुण्ड्रकम् ॥६१॥
त्रियम्बकेन मन्त्रेण प्रणवेन शिवेन च ।
गृहस्थश्च वनस्थश्च धारयेच्च त्रिपुण्ड्रकम् ॥६२॥
ॐकारेण त्रिरुक्तेन सहंसेन त्रिपुण्ड्रकम् ।
धारयेद् भिक्षुको नित्यमित्येतच्छिवशासनम् ॥६३॥

भस्ममहिमा

भस्म ज्योतिः समाम्नातमवश्यं तस्य धारणात् ।
संसारसागरं तीर्त्वा कैवल्यफलमश्नुते ॥६४॥
भस्मसंधारणादेव सर्वतीर्थफलं भवेत् ।
भस्मसंधारणात् सर्वं भस्मीभवति किल्बिषम् ॥६५॥
भस्मेदं शाम्भवं ज्योतिस्तद्ध्यानाद् ध्यात ईश्वरः ।
भस्मसंदर्शनादेव शिवदर्शनमश्नुते ॥६६॥

करना चाहिये॥५८-५९॥ द्विजश्रेष्ठ, धार्मिक, वेदों में पारंगत विद्वानों को त्र्यायुष मन्त्र से सदा तिर्यक् त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये॥६०॥ ब्रह्मचारी को चाहिये कि वह 'मेधावी'[२२] इत्यादि मन्त्र से प्रतिदिन सजल भस्म से त्रिपुण्ड्र धारण करे॥६१॥ गृहस्थ और वानप्रस्थ को चाहिये कि वह [२३]त्र्यम्बक मन्त्र से, प्रणव मन्त्र से अथवा अव्यक्त मूल मन्त्र से त्रिपुण्ड्र धारण करे॥६२॥ हंस मन्त्र के साथ तीन बार ॐ कार का (ॐ हं सः) उच्चारण करते हुए भिक्षुक नित्य त्रिपुण्ड्र धारण करे, यही शिवशास्त्र का विधान है॥६३॥

शास्त्रों में भस्म का ज्योति के रूप में वर्णन है। उसके धारण से साधक अवश्य ही संसार सागर से उत्तीर्ण होकर कैवल्य फल को प्राप्त करता है॥६४॥ केवल भस्म को धारण से ही सभी तीर्थों की यात्रा का फल प्राप्त हो जाता है। भस्म को धारण करने मात्र से सारे पाप भस्म हो जाते हैं॥६५॥ यह भस्म भगवान् शम्भु की साक्षात्

२२. "मह्यं मेधां वद मह्यं श्रियं वद। मेधावी भूयासमजराजरिष्णु॥" (ऋ.खिल. १०. १५१।६)।
२३. 'त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्॥" (तै. सं. १/८/६/२)।

भूतप्रेतपिशाचाश्च महारोगाश्च दुस्सहाः ।
भस्मदर्शनमात्रेण पलायन्ते न संशयः ॥६७॥
भूतविद्रावणे पापसंहृतौ मुक्तिसाधने ।
न भस्मनोऽन्यत् सदृशमित्येतच्छिवशासनम् ॥६८॥
भस्मनो महिमाऽगण्यस्तं वक्तुं केन शक्यते ।
तथापि कश्चिद् गदितः किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥६९॥

इति श्रीचन्द्रज्ञानागमे उत्तरभागेऽनन्तरुद्रबृहस्पति-
संवादे शिवशासने क्रियापादे भस्मस्वरूप-
निरूपणं नाम षष्ठः पटलः ॥६॥

ज्योति है। इसका ध्यान करने से शिव का ध्यान अपने आप हो जाता है। इसका दर्शन करने से शिव के दर्शन का फल प्राप्त होता है॥६६॥ भूत, प्रेत, पिशाच और दुःसह महारोग—ये सब भस्म को देखते ही भाग खड़े होते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है॥६७॥ भूतों को भगा देने में, पापों का नाश करने में और मुक्ति की प्राप्ति के साधनों में भस्म से बढ कर दूसरा कोई उपाय नहीं है, यही शिव का आदेश है॥६८॥ भस्म की महिमा अपार है। उसको गिना नहीं जा सकता। तो भी मैंने तुम्हें उसकी थोड़ी सी महिमा सुनाई है। अब आगे तुम क्या सुनना चाहते हो॥६९॥

इस प्रकार अनन्तरुद्र और बृहस्पति के संवाद के रूप में प्रस्तुत इस चन्द्रज्ञानागम के उत्तर भाग क्रियापाद का भस्म के स्वरूप का निरूपण करने वाला यह छठा पटल समाप्त हुआ॥६॥



सप्तमः पटलः

बृहस्पतिरुवाच

अपारमहिमाधार करुणाभरणोज्ज्वल ।
धन्योऽस्मि भस्मनोऽचिन्त्यमहिम्नः परिवेदनात् ॥१॥
रुद्राक्ष महिमानं च विबोध्य कृपया विभो ।
शिष्यं मामनुगृह्णीष्व सुरासुरनमस्कृत ॥२॥

अनन्तरुद्र उवाच

रुद्राक्षस्वरूपं महिमा च

गीष्पते ते प्रवक्ष्यामि रुद्राक्षाणां यथोदयम् ।
धारणं महिमानं च शृणुष्वैकाग्रमानसः ॥३॥

रुद्राक्षोत्पत्तिः

त्रिपुराणां वधार्थाय विभुना शम्भुना पुरा ।
उन्मीलितानि चक्षूंषि दिव्यं वर्षसहस्त्रकम् ॥४॥
उभाभ्यां चारुपक्ष्मभ्यां पतिता जलबिन्दवः ।
त एव बिन्दवो जाता महारुद्राक्षवृक्षकाः ॥
स्थावरत्वम् अनुप्रापुर्भक्तानुग्रहकारणात् ॥५॥

बृहस्पति प्रश्न करते हैं—

हे अपार महिमा के आधार, करुणा रूपी आभरण (अलंकार) से सुशोभित अनन्तरुद्र देव! भस्म की अचिन्त्य महिमा को जानकर मैं धन्य हो गया हूँ॥१॥ हे सुरों और असुरों के द्वारा नमस्कृत स्वामी! आप मुझ शिष्य को रुद्राक्ष की महिमा बताकर अनुगृहीत कीजिये॥२॥

अनन्तरुद्र उत्तर देते हैं—

हे बृहस्पति! रुद्राक्ष की उत्पत्ति कैसे हुई, उसको धारण करने की विधि क्या है और उसकी महिमा कैसी है? यह सब मैं तुमको बताता हूँ। तुम सावधान होकर एकाग्र चित्त से उसे सुनो॥३॥

प्राचीन काल की बात है कि [1]त्रिपुर का संहार करने के लिये सर्वव्यापी भगवान् शिव ने एक हजार वर्ष तक बिना पलक छपकाये उन त्रिपुरों के मिलन के क्षण को देखते रहे ॥४॥ ऐसी अवस्था में दोनों आखों से आँसू टपकने लगे। इन अश्रु बिन्दुओं

१. त्रिपुरसंहार की कथा शिवपुराण की द्वितीय रुद्रसंहिता के पंचम युद्ध खण्ड के १-१२ अध्यायों में विस्तार से वर्णित है।

रुद्राक्षमहिमा

श्रोत्रियाय सवत्साया धेनोर्दानेन यत्फलम् ।
तत्फलं लक्षगुणितं दर्शनाल्लभते नरः ॥६॥
पुनस्तु कोटिगुणितं फलं तत्स्पर्शनाद् भवेत् ।
तस्य कोटिशतं पुण्यं लभते धारणान्नरः ॥७॥
लक्षकोटिसहस्राणि लक्षकोटिशतानि च ।
तज्जपाल्लभते पुण्यं रुद्राक्षैर्भक्तिमान्नरः ॥८॥

रुद्राक्षभेदाः

रुद्राक्षाणां तु सद्भक्त्या धारणे स्यान्महाफलम् ।
धात्रीफलप्रमाणं तु श्रेष्ठमेतदुदाहृतम् ॥९॥
बदरीफलमात्रं तु मध्यमं प्रोच्यते बुधैः ।
अधमं चणमात्रं स्यादिति विद्धि बृहस्पते ॥१०॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चेति शिवाज्ञया ।
वृक्षा जाताः पृथिव्यां तु तज्जातीयाः शुभाक्षकाः ॥११॥
श्वेतास्तु ब्राह्मणा ज्ञेयाः क्षत्रिया रक्तवर्णकाः ।
पीता वैश्यास्तु विज्ञेयाः कृष्णाः शूद्रा उदाहृताः ॥१२॥

से ही रुद्राक्ष के वृक्ष उत्पन्न हो गये, भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये इन्होंने स्थावर रूप धारण कर लिया॥५॥

श्रोत्रिय विद्वान् को सवत्सा गौ के दान का जो फल होता है, उससे लाखों गुना बढकर पुण्य रुद्राक्ष के दर्शन मात्र से मनुष्य को मिल जाता है॥६॥ इससे भी बढकर कोटिगुणित फल रुद्राक्ष का स्पर्श करने पर मिलता है और इसका शतकोटि बढ कर पुण्य उनके धारण करने से मनुष्य को प्राप्त होता है॥७॥ भक्तिमान् पुरुष को इससे भी बढ कर लक्षकोटिशत और शतलक्षकोटिसहस्र गुणित पुण्य रुद्राक्ष की माला से जप करने से मिलता है॥८॥

सच्ची भक्ति से जो भक्त रुद्राक्ष को धारण करता है, उसे महान् पुण्य की प्राप्ति होती है। धात्रीफल (आँवला) के आकार वाले रुद्राक्ष श्रेष्ठ माने जाते हैं॥९॥ बदरीफल (बेर) के बराबर प्रमाण (आकार) वाले रुद्राक्ष मध्यम कोटि के माने जाते हैं और चने के बराबर आकार वाले अधम, ऐसा विद्वानों का कहना है। हे बृहस्पति! इस बात को तुम ठीक से जान लो॥१०॥ शिव की आज्ञा के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जाति के रुद्राक्ष के वृक्ष पृथ्वी पर उत्पन्न हुए हैं। इन वृक्षों से उसी जाति के रुद्राक्ष उत्पन्न होते हैं॥११॥ इनमें श्वेत वर्ण के ब्राह्मण, रक्त वर्ण के क्षत्रिय,

ब्राह्मणो बिभृयाच्छ्वेतान् रक्तान् राजा तु धारयेत् ।
पीतान् वैश्यस्तु बिभृयात् कृष्णान् शूद्रस्तु धारयेत् ॥१३॥

वर्ज्या रुद्राक्षा:

ताम्रा: स्निग्धा दृढा: स्थूला: कण्टकै: संयुता: शुभा: ।
क्रिमिदष्टं छिन्नभिन्नं कण्टकैर्हीनमेव च ॥
व्रणयुक्तमवृत्तं च षड् रुद्राक्षान् विवर्जयेत् ॥१४॥

उत्तमादिभेदा:

स्वयमेव कृतद्वारं रुद्राक्षं स्यादिहोत्तमम् ।
यत्तु पौरुषयत्नेन कृतं तन्मध्यमं भवेत् ॥१५॥
समान् स्निग्धान् दृढान् वृत्तान् क्षौमसूत्रेण धारयेत् ।
सर्वगात्रेण साम्येन सामान्यानि विचक्षण: ॥१६॥
निकषे हेमरेखेव यस्य रेखा प्रदृश्यते ।
तदक्षमुत्तमं विद्यात् तद्धार्यं शिवपूजकै: ॥१७॥

रुद्राक्षधारणस्थलानि संख्या च

शिखायामेकरुद्राक्षं त्रिंशत्तु शिरसा वहेत् ।
द्वात्रिंशत्तु गले दद्याद् बाह्वो: षोडश षोडश ॥१८॥

पीत वर्ण के वैश्य और कृष्ण वर्ण के रुद्राक्ष शूद्र कहे गये हैं॥१२॥ ब्राह्मण को श्वेत रुद्राक्ष, राजा को रक्त रुद्राक्ष, वैश्य को पीत रुद्राक्ष और शूद्र को कृष्ण रुद्राक्ष धारण करना चाहिये॥१३॥

ताम्र वर्ण के, चिकने, मजबूत, आकार में बड़े और कंटकों से संयुक्त रुद्राक्ष शुभ माने जाते हैं। इसके विपरीत कीड़ों के द्वारा खाये गये, छिन्न-भिन्न, कंटकों से रहित, व्रण से युक्त और बेडौल आकार के — इन छ: प्रकार के रुद्राक्षों को उपयोग में नहीं लाना चाहिये॥१४॥

अपने आप जिसमें सूत्र पिरोने का द्वार बन गया है, वह रुद्राक्ष श्रेष्ठ माना जाता है। पुरुष के प्रयत्न से जिसमें छिद्र किया जाता है, वह रुद्राक्ष मध्यम माना जाता है॥१५॥ समान आकार के, चिकने, मजबूत और गोलाकार रुद्राक्ष के दानों को रेशम के डोरे में पिरोकर विद्वान् साधक पहने। सामान्य रूप से सब कोई समान रूप से इनको धारण कर सकते हैं॥१६॥ कसौटी के पत्थर पर सुवर्ण की रेखा के समान जिसकी रेखा दिखाई पड़ती है, वह रुद्राक्ष उत्तम माना जाता है। शिव के उपासकों को उसी को धारण करना चाहिये॥१७॥

शिखा में एक रुद्राक्ष धारण करे, सिर पर तीस, गले में बत्तीस और दोनों बाहुओं

द्वादशं मणिबन्धे च स्कन्धे पञ्चशतं वहेत् ।
अष्टोत्तरशतैर्मालां जपयज्ञे प्रकल्पयेत् ॥१९॥
द्विसरं त्रिसरं वाऽपि सराणां पञ्चकं तु वा ।
सराणां सप्तकं वाऽपि बिभृयात् कण्ठदेशतः ॥२०॥
मकुटे कुण्डले चैव कर्णिकाहारकेषु च ।
केयूरे कटके चैव कुक्षिबन्धे विशेषतः ॥
सुप्ते पीते सदा कालं रुद्राक्षान् धारयेन्नरः ॥२१॥
त्रिशतं त्वधमं पञ्चशतं मध्यममुच्यते ।
सहस्रमुत्तमं प्रोक्तमेवं भेदेन धारयेत् ॥२२॥

मन्त्रपुरस्सरं रुद्राक्षधारणम्

शिरसीशानमन्त्रेण कण्ठे तत्पुरुषेण च ।
अघोराख्येन मन्त्रेण करयोर्धारयेत् सुधीः ॥
पञ्चाशदक्षसहितां व्योमव्यापीति चोदरे ॥२३॥

में सोलह-सोलह रुद्राक्ष धारण करने चाहिये॥१८॥ मणिबन्ध (बाजू) में बारह और कन्धे पर पांच सौ रुद्राक्ष धारण करे। जपयज्ञ के लिये १०८ रुद्राक्षों की माला बनावे॥१९॥ दो लड़ी की, तीन लड़ी की अथवा पांच लड़ी की और सात लड़ी की माला कंठदेश में धारण करे॥२०॥ मनुष्य को चाहिये कि वह अपने मुकुट, कुण्डल, कर्णफूल, हार, केयूर और कटक के रूप में, विशेष कर कुक्षिबन्ध (करधनी) के रूप में सोते-जागते, खाते-पीते सभी अवस्थाओं में रुद्राक्षों को धारण करे॥२१॥ तीन सौ रुद्राक्ष धारण करना अधम, पांच सौ धारण करना मध्यम और एक सहस्र रुद्राक्ष धारण करना उत्तम पक्ष है। तदनुसार ही रुद्राक्षों को धारण करे॥२२॥

विद्वान् व्यक्ति को चाहिये कि वह सिर पर ईशान मन्त्र से, कण्ठ में तत्पुरुष मन्त्र से दोनों हाथों में अघोर मन्त्र से रुद्राक्ष धारण करे और व्योमव्यापी मन्त्र से पचास दानों वाली माला उदर पर धारण करे॥२३॥ [2]पंचब्रह्म मन्त्रों से और [3]षडंग मन्त्रों

---

२. सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष और ईशान नामक पाँच मन्त्र (सद्योजातं प्रपद्यामि इत्यादि) शैव शास्त्रों में पंचब्रह्म के नाम से प्रसिद्ध हैं ।

३. "ॐ हृदयाय नमः" इत्यादि छः अंग मन्त्र हैं । प्रपंचसार में इनका इस प्रकार वर्णन मिलता है—"हृदयशिरसोः शिखायां कवचाक्ष्यस्त्रेषु सह चतुर्थीषु । नत्या हुत्या च वषड्-हुँ-वौषट्-फट्पदैः षडङ्गविधिः ॥" (६।६)। सिद्धान्त शैवशास्त्र के ग्रन्थों मे मन्त्रों की संख्या ११ बताई गई है। वहां इन्हीं पांच ब्रह्म-मन्त्रों तथा षडंग-मन्त्रों से यह संख्या पूरी होती है। देखिये—अष्टप्रकरण में स्थित रत्नत्रय (श्लो० ९१-११९)।

पञ्चब्रह्मभिरङ्गैश्च त्रिमाला पञ्च सप्त च ।
अथवा मूलमन्त्रेण सर्वाण्यक्षाणि धारयेत् ॥२४॥

मुखभेदेन रुद्राक्षमहिमा

एकवक्त्रं तु रुद्राक्षं परतत्त्वस्वरूपकम् ।
तद्धारणात् परे तत्त्वे लीयते विजितेन्द्रियः ॥२५॥
द्विवक्त्रं चैव रुद्राक्षमर्धनारीश्वरात्मकम् ।
धारणादर्धनारीशः प्रीयते तस्य नित्यशः ॥२६॥
त्रिवक्त्रमनलः साक्षात् स्त्रीहत्यां दहति क्षणात् ।
त्रिमुखं चैव रुद्राक्षमग्नित्रयमुदाहृतम् ॥
तद्धारणेन हुतभुक् तुष्यति स्फुटकामदः ॥२७॥
चतुर्मुखं तु रुद्राक्षं ब्रह्मरूपमुदाहृतम् ।
पञ्चवक्त्रं तु रुद्राक्षं पञ्चब्रह्मस्वरूपकम् ॥२८॥
पञ्चवक्त्रं स्वयं ब्रह्म ब्रह्महत्यां व्यपोहति ।
तस्य धारणमात्रेण संतुष्यति सदाशिवः ॥२९॥
षड्वक्त्रं तु रुद्राक्षं कार्तिकेयाधिदैवतम् ।
विनायकाधिदैवं च दत्तेऽविघ्नं श्रियं वराम् ॥३०॥

से तीन, पांच अथवा सात माला धारण करे अथवा मूल पंचाक्षरी मन्त्र से सभी रुद्राक्षों को धारण करना चाहिये॥२४॥

एक मुख वाला रुद्राक्ष साक्षात् पर तत्त्व (परब्रह्म या परशिव) ही है। उसको धारण करने से जितेन्द्रिय व्यक्ति परम तत्त्व में लीन हो जाता है॥२५॥ दो मुख वाला रुद्राक्ष साक्षात् अर्धनारीश्वर स्वरूप है। उसको नित्य धारण करने से भगवान् अर्धनारीश्वर प्रसन्न होते हैं॥२६॥ तीन मुख वाला रुद्राक्ष साक्षात् अग्निस्वरूप है। इसके धारण करने से स्त्रीहत्या का पाप तत्क्षण नष्ट हो जाता है। तीन मुख का रुद्राक्ष तीन अग्नियों (दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य और आहवनीय) का स्वरूप माना गया है। इसको धारण करने से अग्नि देवता प्रसन्न होकर धारक की कामना पूरी करते हैं॥२७॥ चतुर्मुख रुद्राक्ष ब्रह्मा का स्वरूप तथा पांच मुख की रुद्राक्ष पंचब्रह्म स्वरूप माना गया है॥२८॥ पांच मुख वाला रुद्राक्ष स्वयं ब्रह्मस्वरूप ही है। इसको धारण करने से ब्रह्महत्या का पाप दूर हो जाता है। भगवान् सदाशिव इसके धारण करने मात्र से सन्तुष्ट हो जाते हैं॥२९॥ छः मुख वाले रुद्राक्ष के देवता कार्तिकेय एवं विनायक हैं। इसको धारण करने से कोई विघ्न पास में नहीं आता और श्रेष्ठ लक्ष्मी प्राप्त होती है॥३०॥ सात मुख वाले रुद्राक्ष की देवता ब्राह्मी, वैष्णवी आदि सात मातृकाएं हैं। सात मातृकाएं

सप्तवक्त्रं तु रुद्राक्षं सप्तमात्रधिदैवतम् ।
तद्धारणेन सुप्रीता जयं ददति मातरः ॥३१॥
अष्टवक्त्रं तु रुद्राक्षं दिगधीशाधिदैवतम् ।
वस्वष्टकप्रियं चैव गङ्गाप्रीतिकरं शुभम् ॥
तद्धारणादिमे प्रीता ददते तस्य वाञ्छितम् ॥३२॥
नववक्त्रं तु रुद्राक्षं नवशक्त्यधिदैवतम् ।
तस्य धारणमात्रेण प्रीयन्ते नवशक्तयः ॥३३॥
दशवक्त्रं तु रुद्राक्षं यमदैवमुदाहृतम् ।
तथाऽस्य प्रीतिजनकं धारणे नात्र संशयः ॥३४॥
एकादशमुखं चाक्षं रुद्रैकादशदैवतम् ।
तदिन्द्रदैवतं प्रोक्तं सदा सौभाग्यवर्धनम् ॥३५॥
रुद्राक्षं द्वादशमुखं महाविष्णुस्वरूपकम् ।
द्वादशादित्यदैवं च देवताप्रीतिवर्धनम् ॥३६॥
त्रयोदशमुखं चाक्षं कामदं शुद्धिदं शुभम् ।
तस्य धारणमात्रेण कामदेवः प्रसीदति ॥३७॥

इसको धारण करने वाले के ऊपर प्रसन्न होकर सर्वत्र विजय प्राप्त कराती हैं॥३१॥ आठ मुख का रुद्राक्ष [४]दिक्‌पाल देवता स्वरूप है। आठ वसुओं को और गंगा को भी यह शुभ रुद्राक्ष प्रिय है। इसको धारण करने से सब देवता प्रसन्न होकर धारक की वांछित कामना पूरी करते हैं॥३२॥ नौ मुख के रुद्राक्ष के अधिपति देवता [५]वामा आदि नौ शक्तियां हैं। इसको धारण करने मात्र से ये नौ शक्तियां प्रसन्न हो उठती हैं॥३३॥ दस मुख के रुद्राक्ष के देवता यम हैं। इसको धारण करने से यमराज प्रसन्न होते हैं, इसमें कोई संशय नहीं है॥३४॥ ग्यारह मुख का रुद्राक्ष [६]एकादश रुद्रों का स्वरूप है। इसके देवता इन्द्र हैं। इसको धारण करने से सदा सौभाग्य की वृद्धि होती है॥३५॥ बारह मुख का रुद्राक्ष महाविष्णु का स्वरूप है। बारह आदित्य [७] इसके देवता हैं। यह इन देवताओं की प्रीति को बढाता है॥३६॥ तेरह मुख का रुद्राक्ष सभी कामनाओं को देने वाला, पवित्रता को देने वाला और शुभकारी है। इसके धारण करने मात्र से कामदेव प्रसन्न हो उठते हैं॥३७॥ चौदह मुख का रुद्राक्ष रुद्र के नेत्रों से उत्पन्न हुआ है। यह सभी प्रकार की व्याधियों को दूर करने वाला और सदा आरोग्य को

४. आठ दिक्‌पालों के नाम प्रथम पटल की ७ वीं टिप्पणी में देखिये।
५. षष्ठ पटल की १८ वीं टिप्पणी देखिये।
६. एकादश रुद्रों की नामावली प्रथम पटल १३वीं टिप्पणी में देखिये।
७. बारह आदित्यों की नामावली प्रथम पटल की ११वीं टिप्पणी में देखिये।

चतुर्दशमुखं चाक्षं रुद्रनेत्रसमुद्भवम् ।
सर्वव्याधिहरं चैव सदारोग्यमवाप्नुयात् ॥३८॥
तन्मुखं रुद्रमित्याहुस्तद्बिन्दुः सर्वदेवताः ।
रुद्राक्षधारणात् सद्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥३९॥

संख्यानिरूपणम्

रुद्राक्षधारणं पुण्यं केन वा सदृशं भवेत् ।
सहस्रं धारयेद् यस्तु रुद्राक्षाणां धृतव्रतः ॥
सुरासुरा नमन्त्येनं यथा रुद्रस्तथैव सः ॥४०॥
अभावे तु सहस्रस्य बाह्वोः षोडश षोडश ।
एकं शिखायां करयोर्द्वादश द्वादश द्वयोः ॥४१॥
द्वात्रिंशत् कण्ठदेशे तु प्रत्येकं कर्णयोश्च षट् ।
उरस्यष्टोत्तरशतं चत्वारिंशच्च मस्तके ॥
धारयेद् यस्तु रुद्राक्षं रुद्रवत् पूज्यते सदा ॥४२॥

मुक्तादिना सह रुद्राक्षधारणम्

मुक्ताप्रवालस्फटिकरौप्यवैडूर्यकाञ्चनैः ।
धारयेद् यस्तु रुद्राक्षान् स रुद्रो नात्र संशयः ॥४३॥
केवलं वाऽपि रुद्राक्षान् रुद्रमुद्रान् बिभर्ति यः ।
तं न स्पृशन्ति पापानि तमांसीव विभावसुम् ॥४४॥

देने वाला है॥३८॥ रुद्राक्ष का मुख रुद्रस्वरूप है और उस पर विद्यमान बिन्दुओं में सारे देवता निवास करते हैं। ऐसे रुद्राक्ष को धारण करने से व्यक्ति तत्काल सभी पापों से मुक्त हो जाता है॥३९॥

रुद्राक्ष को धारण करने से जो पुण्य होता है, उसकी बराबरी कौन कर सकता है? अर्थात् उसकी बराबरी का दूसरा कोई पुण्यकर्म नहीं है। जो व्यक्ति नियमपूर्वक सहस्र रुद्राक्षों को धारण करता है, उसको सुर और असुर सभी नमन करते हैं। वह साक्षात् रुद्र हो जाता है॥४०॥ एक हजार रुद्राक्षों के अभाव में दोनों भुजाओं में सोलह सोलह, एक शिखा में तथा दोनों हाथों में बारह बारह रुद्राक्ष धारण करे॥४१॥ ३२ रुद्राक्ष कण्ठ देश में, छः छः प्रत्येक कान में, १०८ वक्षस्थल पर और ४० मस्तक पर धारण करे। जो व्यक्ति इस तरह से रुद्राक्ष धारण करता है, वह सदा रुद्र के समान पूजा जाता है॥४२॥

मुक्ता, प्रवाल, स्फटिक, रजत, वैडूर्य और सुवर्ण के साथ जो रुद्राक्षों को धारण करता है, वह साक्षात् रुद्र ही है, इसमें कोई संशय नहीं है॥४३॥ साक्षात्

रुद्राक्षमहिमा

रुद्राक्षमालया जप्तो मन्त्रोऽनन्तफलप्रदः ।
अरुद्राक्षजपः पुंसां तावन्मात्रफलप्रदः ॥४५॥
यस्याङ्गे नास्ति रुद्राक्ष एकोऽपि बहुपुण्यदः ।
तस्य जन्म निरर्थं स्यात् त्रिपुण्ड्ररहितं यथा ॥४६॥
मूर्ध्नि विन्यस्य रुद्राक्षं यः स्नाति मतिमान्नरः ।
गङ्गास्नानफलं तस्य जायते नात्र संशयः ॥४७॥
पूजयेद्यस्तु रुद्राक्षं कृत्वा तोयाभिषेचनम् ।
यत्फलं लिङ्गपूजायां तदेवाप्नोति निश्चितम् ॥४८॥
रुद्राक्षमहिमाऽपारः कश्चिदुक्तो मयाऽनघ ।
गोपनीयः प्रयत्नेन किमतः श्रोतुमिच्छसि ॥४९॥

इति श्रीचन्द्रज्ञानागमे उत्तरभागेऽनन्तरुद्रबृहस्पति-
संवादे शिवशासने क्रियापादे रुद्राक्षस्वरूप-
निरूपणं नाम सप्तमः पटलः॥७॥

रुद्रमुद्रास्वरूप केवल इन रुद्राक्षों को मुक्ता, प्रवाल आदि के बिना जो धारण करता है, उसके पास पाप उसी तरह से नहीं फटकते, जैसे कि भगवान् सूर्य के सामने अन्धकार नहीं आ सकता है।॥४४॥

रुद्राक्ष की माला की सहायता से जपा गया मन्त्र अनन्त फल को देने वाला है। पुरुष यदि रुद्राक्ष की माला से जप नहीं करता, तो उसे जप की संख्या के अनुसार ही फल मिलता है।॥४५॥ जिस व्यक्ति के शरीर पर अनन्त पुण्य देने वाला एक भी रुद्राक्ष नहीं है, उसका जन्म उसी तरह से निरर्थक हो जाता है, जैसा कि त्रिपुण्ड्र धारण न करने वाले का होता है।॥४६॥ जो बुद्धिमान् मनुष्य रुद्राक्ष को सिर पर रख कर स्नान करता है, उसको गंगास्नान का फल मिल जाता है, इसमें कोई संदेह नहीं है।॥४७॥ जो व्यक्ति जल से अभिषेक कर रुद्राक्ष का पूजन करता है, उसे निश्चित रूप से लिंगपूजा का फल मिल जाता है।॥४८॥ रुद्राक्ष की महिमा तो अपार है । हे निष्पाप बृहस्पति! उसमें से थोड़ा बहुत मैंने तुमको सुनाया है। इसको प्रयत्नपूर्वक गुप्त रखना चाहिये । अब इसके बाद आगे तुम क्या सुनना चाहते हो।॥४९॥

इस प्रकार अनन्तरुद्र और बृहस्पति के संवाद के रूप में प्रस्तुत
इस चन्द्रज्ञानागम नामक शिवशास्त्र के क्रियापाद का
रुद्राक्ष के स्वरूप का निरूपण करने वाला
यह सातवाँ पटल समाप्त हुआ॥

❋ ❋ ❋

अष्टम: पटल:

बृहस्पतिरुवाच

अनुत्तरज्ञाननिधे परानन्दसुधाम्बुधे ।
श्रीमदीयमुखाम्भोजान्मकरन्दमिव सृतम् ॥१॥
महिमानमिहाकर्ण्य रुद्राक्षाणामनुत्तमम् ।
संतृप्तो विवशश्चास्मि धन्योऽस्मि सुरसन्नुत ॥२॥
श्रीमत्पञ्चाक्षरस्यापि विधानं महिमोन्नतिम् ।
उपदिश्य कृपादृष्ट्या विलोक्यानुगृहाण माम् ॥३॥

अनन्तरुद्र उवाच

अधुना ते प्रवक्ष्यामि पञ्चाक्षरमहामनोः ।
स्वरूपं महिमानं च पुरश्चर्याविधिं क्रमात् ॥४॥

पञ्चाक्षरमन्त्रस्वरूपं महिमा च

आदौ नमः प्रयोक्तव्यं शिवायेति ततः परम् ।
सैषा पञ्चाक्षरी विद्या सर्वश्रुतिशिवागता ॥५॥
शब्दजातस्य सर्वस्य बीजभूता समासतः ।
आदौ शिवमुखोद्गीर्णा सा तस्यैवात्मवाचिका ॥६॥

बृहस्पति प्रश्न करते हैं—

हे परमश्रेष्ठ ज्ञान के निधिस्वरूप, परमानन्द सुधा (अमृत) के सागर अनन्तरुद्र देव! आपके मुखरूपी कमल से निकलने वाली मकरन्द के समान रुद्राक्ष की श्रेष्ठ महिमा को सुनकर मैं तृप्त हो गया हूँ। हे सुरों के द्वारा पूजित अनन्तरुद्र! मैं धन्य हो गया हूँ, विवश हो गया हूँ॥१-२॥ श्रीमत् पंचाक्षर मन्त्र का विधान, उसकी महिमा और उसके जप से प्राप्त होने वाली उन्नति को बता कर आप मुझे अनुगृहीत कीजिये॥३॥

अनन्तरुद्र उत्तर देते हैं—

अब मैं तुम्हें पंचाक्षर महामन्त्र का स्वरूप, उसकी महिमा और पुरश्चरण की विधि बताऊँगा॥४॥

प्रथमत: 'नम:' पद को रखना चाहिये, इसके बाद 'शिवाय' पद को। इसी को पंचाक्षर विद्या कहा जाता है। सभी श्रुतियों मे शीर्ष भाग कें इसका स्थान है॥५॥ संक्षेप में यह पंचाक्षरी विद्या सभी प्रकार के शब्दों की जननी है। सृष्टि के प्रारंभ में शिव के मुख से निकली यह विद्या भगवान् शिव के निज स्वरूप का ही बोध कराती है॥६॥ यह पंचाक्षरी विद्या तपे हुए सोने के समान स्वरूप वाली, पीन और उन्नत पयोधरों

तप्तचामीकरप्रख्या पीनोन्नतपयोधरा ।
चतुर्भुजा त्रिनयना बालेन्दुकृतशेखरा ॥७॥
पद्मोत्पलधरा सौम्या वरदाऽभयपाणिका ।
सर्वलक्षणसंपन्ना सर्वाभरणभूषिता ॥८॥
सिद्धपद्मासनासीना नीलकुञ्चितमूर्धजा ।
इयं प्रणवपूर्वा तु षडक्षरीति कथ्यते ॥९॥

षडक्षरी विद्या

द्विजैरियं तु जप्तव्या नित्यं प्रणवपूर्विका ।
स्त्रीभिः शूद्रैश्च जप्तव्या नमोऽन्ता प्रणवं विना ॥१०॥

ऋष्यादिन्यासः

वामदेव ऋषिश्चास्य पङ्क्तिश्छन्द उदाहृतः ।
देवता स शिवः साक्षात् प्रणवो बीज उच्यते ॥
उमा शक्तिरिति प्रोक्ता न्यासश्चैवं षडक्षरैः ॥११॥

जपविधानम्

ध्यात्वा संपूज्य मनसि बाह्ये वा परमेश्वरम् ।
जपं कुर्यात् प्रयत्नेन ध्यायन् साम्बं त्रियम्बकम् ॥१२॥

वाली, चार भुजा और तीन नयनों वाली है। इसके भाल पर बाल चन्द्रमा विराजमान है।।७।। पद्म और उत्पल (नील कमल) धारण करने वाली, सौम्य स्वरूप वाली, वर और अभय मुद्रा धारण करने वाली, सभी लक्षणों से संपन्न और सभी प्रकार के आभूषणों को धारण करने वाली है।।८।। यह पंचाक्षरी विद्या सिद्धासन अथवा पद्मासन से विराजमान और नीले घुंघराले बालों वाली है। इसके प्रारंभ में प्रणव (ॐ) को जोड़ने पर यह षडक्षरीविद्या कहलाती है।।९।।

द्विजों को प्रणव के साथ इसका नित्य जप करना चाहिये। स्त्री और शूद्रों को प्रणव के बिना नमः शब्द को अन्त में रख कर इस पंचाक्षरी विद्या का जप करना चाहिये।।१०।।

इस मन्त्र के वामदेव ऋषि और छन्द पंक्ति कहा गया है। शिव ही साक्षात् इसके देवता हैं। प्रणव बीज, और उमा शक्ति है। इन्हीं छः अक्षरों से न्यास किया जाता है।।११।।

मन में अथवा बाहर परमेश्वर का ध्यान-पूजन कर साम्ब सदाशिव का ध्यान करने हुए इस मन्त्र का जप करे।।१२।। एक हजार बार, पांच सौ बार अथवा सौ बार मन्त्र का जप करे। जो ऐसा प्रतिदिन करता है, वह साक्षात् शिव ही है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।१३।।

सहस्त्रं वा तदर्धं वा शतं वाऽथ जपेन्मनुम् ।
एवं यः कुरुते नित्यं स शिवो हि न संशयः ॥१३॥

वर्णादिनिरूपणम्

अस्याः पञ्चविधा वर्णाः प्रस्फुरद्रस्मिमण्डलाः ।
पीतः श्वेतस्तथा रक्तो हरितो नील एव च ॥१४॥
पृथक् प्रोज्या यद्येते बिन्दुनादविभूषिताः ।
अर्धचन्द्राकृतिर्बिन्दुर्नादो दीपशिखाकृतिः ॥१५॥
पञ्चब्रह्ममुखान्याहुः स्थानं तेषां सुरोत्तम ।
पूर्वादि चोर्ध्वपर्यन्तं नकारादि यथाक्रमम् ॥१६॥

नामान्तराणि

[1]मूलं विद्या शिवं चैव सूत्रं पञ्चाक्षरस्तथा ।
नामान्यस्य विजानीयादोङ्कारो हृदयं मतम् ॥१७॥

मन्त्राङ्गानि

नकारः शिर उच्येत मकारस्तु शिखोच्यते ।
शिकारः कवचं तद्वद्वाकारो नेत्रमुच्यते ॥१८॥
यकारोऽस्त्रं नमः स्वाहा वषट् हुं वौषडित्यपि ।
फडित्यपि च वर्णानां मन्त्राङ्गत्वं यथा तथा ॥१९॥

इस विद्या के वर्ण रश्मिमण्डल की आभा को बिखेरते हुए पीत, श्वेत, रक्त, हरित और नील कान्ति वाले हैं॥१४॥ इनका अलग अलग उच्चारण यदि बिन्दु और नाद के साथ किया जाता है, तो उस समय बिन्दु का स्वरूप अर्धचन्द्र की तरह और नाद का दीपशिखा की तरह होता है॥१५॥ हे सुरोत्तम! उस स्थिति में पञ्चब्रह्म के पांच मुखों में इनका स्थान माना गया है। पूर्व मुख से लेकर ऊर्ध्व मुख पर्यन्त नकार आदि की यथाक्रम स्थिति मानी गई है॥१६॥

इस पंचाक्षर मन्त्र के मूल, विद्या, शिव, (शैव) सूत्र, पंचाक्षर ये पांच नाम हैं और ॐ कार इसका हृदय है॥१७॥

इसका नकाराक्षर शिर, मकार शिखा, शिकार कवच और इसी तरह वाकार नेत्र कहा गया है॥१८॥ यकार अक्षर अस्त्र कहा जाता है। नमः, स्वाहा, वषट्, हुँ, वौषट्, फट्—ये छः शब्द भी यथायोग्य योजना के अनुसार मन्त्र के अंग माने जाते हैं॥१९॥ वर्ण, देवता, शक्ति, आधार, छन्द, ऋषि, स्थान, ब्रह्म, आयुध, कला, गुण,

---

१. इस श्लोक का पूर्वार्ध सिद्धान्तशिखामणि (८ । २३) में भी उपलब्ध है।

वर्णं दैवं तथा शक्तिराधारं छन्द एव च ।
ऋषिः स्थानं ब्रह्म चाथ आयुधं तु तथैव च ॥२०॥
कला गुणश्च चक्रं च प्रकाशः करणं तथा ।
वायुर्ज्ञानेन्द्रियं चैवं षोडशैते क्रमोदिताः ॥२१॥

नकारस्य षोडशरूपता

नकारं पीतवर्णं स्याद् ब्रह्मा तत्राधिदैवतम् ।
सावित्री शक्तिरित्युक्ता चाधारं पृथिवी तथा ॥२२॥
अनुष्टुप्छन्दसा युक्तं वासिष्ठार्षं तथैव हि ।
स्थानं पश्चिमतो वक्त्रं सद्योजातं तु ब्रह्मकम् ॥२३॥
आयुधं वज्रमेवोक्तं कला निवृत्तिरेव च ।
गुणः कठिन एवोक्तःश्चक्रं तु चतुरश्रकम् ॥२४॥
ज्वलदग्नेः प्रकाशस्तु करणं मन एव च ।
प्राणवायुसमायुक्तं घ्राणं ज्ञानेन्द्रियं भवेत् ॥
इत्येवं षोडशानां तु नकाराक्षरमुच्यते ॥२५॥

मकारस्य षोडशरूपता

मकारं जलरूपं च दैवं विष्णुस्तथैव च ।
लक्ष्मीः शक्तिरिति प्रोक्ता चाधारं जलमेव च ॥२६॥
त्रिष्टुप्छन्दः समायुक्तं विश्वामित्र ऋषिस्तथा ।
स्थानमुत्तरतो वक्त्रं ब्रह्म वै वामदेवकम् ॥२७॥

चक्र, प्रकाश, करण, वायु और ज्ञानेन्द्रिय—इन सोलह विषयों का यहां क्रमशः वर्णन किया जा रहा है कि शिवपंचाक्षरी मन्त्र के मकार आदि के साथ ये किस प्रकार संयोजित होते हैं॥२०-२१॥

नकार पीत वर्ण का है। इसके देवता ब्रह्मा हैं। इसकी शक्ति सावित्री मानी गई है। पृथिवी इसका आधार है॥२२॥ इसका छन्द अनुष्टुप् और ऋषि वसिष्ठ हैं। पश्चिम मुख (वक्त्र) इसका स्थान और ब्रह्म सद्योजात नामक है॥२३॥ इसका आयुध वज्र, इसकी कला का नाम निवृत्ति और गुण कठिन माना गया है। चक्र चतुरस्र (चौकोर) आकार का है॥२४॥ इसका प्रकाश जलती हुई अग्नि के समान है। करण मन और वायु प्राण है। ज्ञानेन्द्रिय घ्राण मानी गई है। इस प्रकार नकार नामक अक्षर के ये सोलह विषय यहां वर्णित हैं॥२५॥

मकार का वर्ण जल के समान (श्वेत) है। इसके देवता विष्णु, शक्ति लक्ष्मी और आधार जल कहा गया है॥२६॥ छन्द त्रिष्टुप्, ऋषि विश्वामित्र, स्थान उत्तर वक्त्र

आयुधं पद्ममेवोक्तं प्रतिष्ठाख्यकलायुतम् ।
गुणस्तु द्रवसंयुक्तश्चक्रमर्धसुधाकरः ॥२८॥
सोमस्यैव प्रकाशश्च करणं बुद्धिरेव च ।
अपानवायुसंयुक्तं जिह्वा ज्ञानेन्द्रियं भवेत् ॥
इत्येवं षोडशानां तु मकाराक्षरमुच्यते ॥२९॥

शिकारस्य षोडशरूपता

शिकारं वह्निरूपं तु रुद्रस्तत्राधिदैवतम् ।
गौरीशक्ति समायुक्तमाधारं चाग्निरेव च ॥३०॥
उष्णिक्छन्द समायुक्तं जमदग्निर्ऋषिस्तथा ।
स्थानं दक्षिणतो वक्त्रमघोरं ब्रह्म चैव हि ॥३१॥
स्वस्तिकायुधमेवोक्तं विद्यानाम कलाऽपि च ।
गुणो दीप्त्यनुसंयुक्तश्चक्रं त्यश्रकमेव च ॥३२॥
तटितां तु प्रकाशश्च करणं त्वहमाकृतिः ।
व्यानवायुसमायुक्तं नेत्रं ज्ञानेन्द्रियं भवेत् ॥
इत्येवं षोडशानां तु शिकाराक्षरमुच्यते ॥३३॥

वाकारस्य षोडशरूपता

वाकारं वायुरूपं स्यादधिदैवतमीश्वरम् ।
अम्बिका स्यान्महाशक्तिर्वायुश्चाधारमेव च ॥३४॥

और ब्रह्म वामदेव नाम के हैं॥२७॥ आयुध पद्म कहा गया है। कला प्रतिष्ठा नाम की है। इसका गुण द्रव स्वभाव का और चक्र चन्द्रार्ध आकार वाला है॥२८॥ इसका प्रकाश चन्द्रमा के प्रकाश के सदृश है। करण बुद्धि और वायु अपान है। ज्ञानेन्द्रिय जिह्वा मानी गई है। इस प्रकार मकार अक्षर के ये सोलह विषय माने गये हैं॥२९॥

शिकार का वर्ण वह्निसदृश रक्त है। इसके देवता रुद्र, शक्ति गौरी और आधार अग्नि है ॥३०॥ इसका छन्द उष्णिक्, ऋषि जमदग्नि, स्थान दक्षिण वक्त्र और ब्रह्म अघोर है॥३१॥ आयुध स्वस्तिक कहा गया है। कला का नाम विद्या और गुण दीप्ति-संवलित है। चक्र त्र्यक्ष (त्रिकोणाकार) माना गया है॥३२॥ इसका प्रकाश बिजली के जैसा है। करण अहंकार, वायु व्यान और ज्ञानेन्द्रिय नेत्र है। इस प्रकार यह शिकार इन सोलह विषयों से संयुक्त है ॥३३॥

वाकार का वर्ण वायुसदृश हरित, देवता ईश्वर, अम्बिका महाशक्ति और वायु आधार है॥३४॥ इसका छन्द बृहती, ऋषि कश्यप, स्थान पूर्व वक्त्र और ब्रह्म तत्पुरुष है॥३५॥ आयुध बिन्दुस्वरूप, कला शान्ति नामक और गुण स्पर्श कहा गया है। चक्र

बृहतीच्छन्दसा युक्तं ऋषिः काश्यप एव च ।
स्थानं पूर्वाननं प्रोक्तं ब्रह्म तत्पूरुषं भवेत् ॥३५॥
आयुधं बिन्दुरूपं तु कला शान्तिस्तथैव च ।
गुणः स्पर्श इति प्रोक्तं षडश्रं चक्रमेव च ॥३६॥
प्रकाश इन्द्रनीलस्य चित्तं तु करणं भवेत् ।
उदानवायुसंयुक्तं चर्म ज्ञानेन्द्रियं भवेत् ॥
इत्येवं षोडशानां तु वाकाराक्षरमुच्यते ॥३७॥

यकारस्य षोडशरूपता

यकारं व्योमरूपं तु दैवं चैव सदाशिवः ।
उन्मनी शक्तिरेवोक्ता आधारं व्योम चोच्यते ॥३८॥
जगतीच्छन्दसा युक्तं भरद्वाज ऋषिस्तथा ।
स्थानमूर्ध्वमुखं विद्याद् ब्रह्म चेशानमेव च ॥३९॥
आयुधं चैव शूलं स्याच्छान्त्यतीता कलाऽपि च ।
गुणस्तु शून्य एव स्यात् प्रकाशश्चन्द्रिकामणेः ॥४०॥
करणं प्रकृतिः प्रोक्तं समानो वायुरेव च ।
श्रोत्रं ज्ञानेन्द्रियं प्रोक्तमित्येते षोडश क्रमात् ॥
यकाराक्षरमित्युक्तं न भूतो न भविष्यति ॥४१॥

षडश्च आकार वाला है।।३६।। इसका प्रकाश इन्द्रनील मणि के समान, करण चित्त नामक, वायु उदान और ज्ञानेन्द्रिय स्पर्श नाम की है। इस तरह से वाकार के ये सोलह विषय यहाँ परिगणित हैं।।३७।।

याकार का वर्ण व्योमसदृश नीला, देवता सदा शिव, शक्ति उन्मनी और आधार व्योम (आकाश) है।।३८।। छन्द जगती, ऋषि भरद्वाज, स्थान ऊर्ध्वमुख (वक्त्र) और ब्रह्म ईशान नामक माना गया है।।३९।। इसका आयुध त्रिशूल, कला शान्त्यतीता और गुण शून्य माना गया है। इसका प्रकाश चन्द्रमणि के समान है।।४०।। इसका कारण प्रकृति कही गई है। समान नामक वायु और ज्ञानेन्द्रिय श्रोत्र है। इस प्रकार क्रमशः यकाराक्षर से संबद्ध सोलह विषयों का विवरण यहां दिया गया है। इस तरह का वर्णन न कमी पहले हुआ है और न आगे ही होगा।।४१।।

एकमात्र प्रधान ही काम्यसिद्धियों के विविध प्रयोगों का सम्पादन कराने के लिये प्रत्यक्ष पंचाक्षर मनु का स्वरूप धारण कर लेता है।।४२।। इसीका १२० प्रकार का प्रस्तार शास्त्रों में वर्णित है। इस तरह से पंचाक्षर मन्त्र की यह उत्पत्ति गुरु के मुख

पञ्चाक्षरोत्पत्ति:

एकमेव प्रधानं तु पञ्चाक्षरमिति स्मृतम् ।
काम्यसिद्धिप्रयोगेण प्रत्यक्षं पञ्चधा भवेत् ॥४२॥
ततः प्रस्तारकं प्रोक्तं विंशत्येकशतं भवेत् ।
एवं पञ्चाक्षरोत्पत्तिर्गुरोर्वक्त्रेण लभ्यते ॥४३॥
मन्त्रं पञ्चविधं प्रोक्तं कर्म चाष्टविधाम् ।
परे पञ्चात्तरोत्पत्तिः पुनस्तत्रैव लीयते ॥४४॥
सप्तकोटिमहामन्त्रा रूपवक्त्रैरनेकधा ।
पञ्चाक्षरे प्रलीयन्ते पुनस्तस्माद् विनिर्गताः ॥४५॥
आज्ञाहीनं क्रियाहीनं श्रद्धाहीनं बृहस्पते ।
अजप्तं दक्षिणाहीनं सदा जप्तं च निष्फलम् ॥४६॥
आज्ञासिद्धं क्रियासिद्धं श्रद्धासिद्धमिदं तथा ।
दक्षिणासिद्धमपि च मन्त्रमेतन्महाफलम् ॥४७॥

पुरश्चरणक्रम:

दीक्षापूर्वं गुरोर्लब्ध्वा मन्त्रमाज्ञां समाहितः ।
संकल्प्य च जपेन्नित्यं पुरश्चरणपूर्वकम् ॥४८॥
यावज्जीवं जपेन्नित्यमष्टोत्तरसहस्रकम् ।
अनश्नंस्तपरो भूत्वा स याति परमां गतिम् ॥४९॥

से ही प्राप्त की जा सकती है।॥४३॥ मन्त्र पांच प्रकार के होते हैं। कर्म आठ प्रकार का होता है। पंचाक्षर मन्त्र की उत्पत्ति परतत्त्व (पंचब्रह्म) से होती है और पुनः वह वहीं विलीन हो जाता है।॥४४॥ नाना रूप और आकार वाले सात करोड़ महामन्त्र उस पंचाक्षर मन्त्र से ही निकलते हैं और उसी में लीन हो जाते हैं।॥४५॥ हे बृहस्पति! आज्ञा से हीन, क्रिया से हीन, श्रद्धा से हीन और दक्षिणा से हीन मन्त्र सफल नहीं होते। इसी तरह से कभी न जपा गया और बिना विधि के जपा गया मन्त्र भी निष्फल होता है।॥४६॥ आज्ञासिद्ध, क्रियासिद्ध, श्रद्धासिद्ध और दक्षिणासिद्ध यह पंचाक्षर मन्त्र महान् फल को देता है।॥४७॥

समाहित चित्त वाले व्यक्ति को गुरु से दीक्षा ग्रहण कर मन्त्र तथा उसके उपयोग की आज्ञा भी लेनी चाहिये। ततः पुरश्चरण पूर्वक मन्त्र का संकल्प के अनुसार नित्य जप करना चाहिये।॥४८॥ जो व्यक्ति बिना भोजन किये सावधानी के साथ जीवन पर्यन्त १००८ बार नित्य पंचाक्षर मन्त्र का जप करता है, वह परम गति को प्राप्त करता

जपेदक्षरलक्षं वै चतुर्गुणितमादरात् ।
युक्ताशी संयमी यः स पौश्चरणिकः स्मृतः ॥५०॥
यः पुरश्चरणं कृत्वा नित्यजापी भवेत् पुनः ।
तस्य नास्ति समो लोके स सिद्धः सिद्धिदो भवेत् ॥५१॥

मन्त्रजपविधिः

स्नानं कृत्वा शुचौ देशे बद्ध्वा रुचिरमासनम् ।
शङ्करं हृदि संचिन्त्य स्वगुरुं तद्गुरूंस्तथा ॥५२॥
प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि मौनी चैकाग्रमानसः ।
विशोध्य पञ्चतत्त्वानि दहनप्लावनादिभिः ॥५३॥
मन्त्रन्यासादिकं कृत्वा सकलीकृतविग्रहः ।
देवं देवीयुतं ध्यायेत् प्राणापानौ नियम्य च ॥५४॥

है।॥४९॥ मन्त्र के [२]प्रत्येक अक्षर को चार गुना करके उतने लाख बार आदर पूर्वक आहार-विहार में संयम बरतता हुआ जो जप करता है, उसे पौरश्चरणिक कहा जाता है।॥५०॥ इस प्रकार पुरश्चरण करके जो व्यक्ति उस मन्त्र का नित्य जप करता है, उसके समान इस लोक में कोई नहीं है। ऐसा व्यक्ति स्वयं सिद्ध होकर दूसरों को भी सिद्धि देने में समर्थ हो जाता है।॥५१॥

स्नान करने के उपरान्त पवित्र स्थान पर सुखासन, पद्मासन आदि में से कोई एक अपनी सुविधा का आसन लगाकर भगवान् शंकर का हृदय में ध्यान कर, अपने गुरु का और पूरी गुरुपरम्परा का ध्यान करे।॥५२॥ पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख हो मौन व्रत धारण कर एकाग्र चित्त से [३]दहन, प्लावन आदि की प्रक्रिया से पांच तत्त्वों का शोधन करे।॥५३॥ मन्त्रन्यास आदि की सहायता से अपने शरीर को शिव की कलाओं से सम्पन्न कर, प्राण और अपान, अर्थात् श्वासप्रश्वास की प्रक्रिया पर नियन्त्रण स्थापित कर अपनी देवी (शक्ति) से संयुक्त देव (भगवान् शिव) का ध्यान करे।॥५४॥ विद्या, स्थान, स्वर, रूप, ऋषि, छन्द, देवता, बीज, शक्ति तथा वाच्य ईश्वर

२. पंचाक्षर मन्त्र के पांच अक्षरों को चार से गुणा करने पर यह संख्या २० होती है। इस मन्त्र का पुरश्चरण करने के लिये २० लाख बार इसका जप अपेक्षित है। पुरश्चरण की पूरी प्रक्रिया पर ग्रन्थ के उपोद्घात में प्रकाश डाला जायगा।

३. ''शिवो भूत्वा शिवं यजेत्'' यह शास्त्रवचन अनेक स्थलों पर उद्धृत है। शिवभाव की प्राप्ति के लिये भूतशुद्धि और प्राणप्रतिष्ठा की विधि शास्त्रों में निर्दिष्ट है। प्राणायाम के द्वारा शोषण, दाह और आप्यायन की पद्धति से यह प्रक्रिया सम्पन्न होती है। इससे पांचभौतिक स्थूल शरीर में स्थित पापपुरुष के भस्मीभाव के बाद नूतन विद्याशरीर मे प्रादुर्भाव की भावना की जाती है। इस पूरी प्रक्रिया का पालन यहां करना पड़ता है।

विद्यां स्थानं स्वरं रूपं ऋषिं छन्दोऽधिदैवतम् ।
बीजं शक्तिं तथा वाच्यं स्मृत्वा पञ्चाक्षरं जपेत् ॥५५॥

त्रिविधो जप:

उत्तमो मानसः प्रोक्त उपांशुर्मध्यमस्तथा ।
अधमो वाचिकः प्रोक्त इत्येतच्छिवशासनम् ॥५६॥
यदुच्चनीचस्वरितैः शब्दैः स्पष्टपदाक्षरैः ।
मन्त्रमुच्चारयेद्वाचा वाचिकोऽयं जपः स्मृतः ॥५७॥
जिह्वामात्रपरिस्पन्दादीषदुच्चारितोऽपि वा ।
अपरैरश्रुतः स्वेन श्रुतश्चोपांशुरुच्यते ॥५८॥
धिया यदक्षरश्रेण्या वर्णाद्वर्णं पदात्पदम् ।
शब्दार्थचिन्तनं भूयः कथ्यते मानसो जपः ॥५९॥
वाचिकस्त्वेक एव स्यादुपांशुः शतमुच्यते ।
सहस्रं मानसं प्रोक्तं सगर्भस्तच्छताधिकः ॥६०॥

का स्मरण कर पंचाक्षर मन्त्र का जप करे॥५५॥

मानस जप उत्तम कहा गया है। उपांशु जप मध्यम तथा वाचिक जप अधम कहा गया है। यही शिव का शासन है॥५६॥ [४]उच्च, नीच और स्वरित स्वरों में जिस मन्त्र के शब्दों का, पदों और अक्षरों का वाणी से स्पष्ट उच्चारण किया जाता है, वह वाचिक जप कहलाता है॥५७॥ जिसमें केवल जिह्वा हिलती है अथवा मन्त्राक्षरों का धीरे से उच्चारण होता है, किन्तु उसे कोई दूसरा सुन नहीं सकता, केवल जपकर्ता अपने ही सुन पाता है, वह जप उपांशु कहलाता है॥५८॥ अक्षरों का क्रम केवल बुद्धि में ही एक वर्ण से दूसरे वर्ण तक और एक पद से दूसरे पद तक चलता है और प्रधानत: शब्दार्थ की चिन्ता में ध्यान केन्द्रित रहता है, वह जप [५]मानस कहलाता है॥५९॥ वाचिक जप की अपेक्षा उपांशु जप का शतगुण फल होता है और मानस जप का सहस्रगुण फल कहा गया है। सगर्भ जप का फल इससे भी सौ गुना अधिक माना गया है॥६०॥

---

४. "उच्चैरुदात्तः, नीचैरनुदात्तः, समाहारः स्वरितः" (१। २। २९-३१) पाणिनि की अष्टाध्यायी के ये तीन सूत्र यहां स्मरणार्ह हैं।

५. आगम-तन्त्रशास्त्र के ग्रन्थों में ही नहीं, मनुस्मृति (२। ८५) में भी इस त्रिविध जप का गुणगान किया गया है। सिद्धान्तशिखामणि (८। २७-३२) भी देखिये।

सगर्भोऽगर्भश्च जपः

प्राणायाम समायुक्तः सगर्भो जप उच्यते ।
प्राणायामेन रहितो ह्यगर्भो जप उच्यते ॥६१॥
चत्वारिंशत्समावृत्तिं प्राणायामं तु संस्मरेत् ।
मन्त्रं मन्त्रार्थविधिमानशक्तः शक्तितो जपेत् ॥६२॥
पञ्चकं त्रिकमेकं वा प्राणायामं समाचरेत् ।
अगर्भं वा सगर्भं वा सगर्भस्तु प्रशस्यते ॥६३॥
सगर्भादपि साहस्रं सध्यानो जप उच्यते ।
एषु पञ्चविधेष्वेव कर्तव्यः शक्तितो जपः ॥६४॥

अङ्गुल्यादिषु जपफलभेदः

अङ्गुल्या जपसंख्यानादेकमेकमुदाहृतम् ।
रेखयाऽष्टगुणं विद्यात् पुत्रजीवैर्दशाधिकम् ॥६५॥
शतं स्याच्छङ्खमणिभिः प्रवालैस्तु सहस्रकम् ।
स्फटिकैर्दशसाहस्रं मौक्तिकैर्लक्षमुच्यते ॥६६॥
पद्माक्षैर्दशलक्षं तु सौवर्णैः कोटिरुच्यते ।
कुशग्रन्थ्या च रुद्राक्षैरनन्तफलमुच्यते ॥६७॥

प्राणायाम के साथ जो जप किया जाता है, उसे सगर्भ कहते हैं। बिना प्राणायाम के किया गया जप अगर्भ कहलाता है॥६१॥ सगर्भ जप की मन्त्रार्थ की विधि के जानकार समर्थ व्यक्ति को एक प्राणायाम के साथ मन्त्र की ४० आवृत्ति करनी चाहिये। जो ऐसा करने में असमर्थ है, वह अपनी सामर्थ्य के अनुसार मन्त्रार्थ का स्मरण करते हुए जप करे॥६२॥ जपकर्ता को पांच, तीन अथवा एक सगर्भ अथवा अगर्भ प्राणायाम अवश्य करना चाहिये। इनमें सगर्भ प्राणायाम प्रशंसनीय माना गया है॥६३॥ सगर्भ जप की अपेक्षा भी सध्यान जप हजार गुना श्रेष्ठ माना गया है। इन पांच (वाचिक, उपांशु, मानस, सगर्भ और सध्यान) प्रकार के जपों में से अपनी शक्ति के अनुसार जप करना चाहिये॥६४॥

अंगुली से जप करने पर उसका जप की संख्या के अनुसार ही फल मिलता है। अंगुली की रेखा पर जप करने पर आठ गुना और पुत्रजीव की माला से दस गुना फल मिलता है॥६५॥ शंख की मणि की माला से सौ गुना, प्रवाल की माला से हजार गुना, स्फटिक की माला से १० हजार गुना और मुक्ता की माला से लाख गुना फल मिलता है॥६६॥ पद्माक्ष (कमलगट्टे) की माला से १० लाख गुना और सुवर्ण की माला से करोड़ गुना फल मिलता है। कुशा की ग्रन्थि और रुद्राक्ष की माला से जप करने पर अनन्त फल प्राप्त होता है॥६७॥

जपमाला

त्रिंशदक्षैः कृता माला धनदा जपकर्मणि ।
सप्तविंशतिसंख्याकैरक्षैः पुष्टिप्रदा भवेत् ॥६८॥
पञ्चविंशतिसंख्याकैः कृता मुक्तिं प्रयच्छति ।
अक्षैस्तु पञ्चदशभिरभिचारफलप्रदा ॥६९॥
अङ्गुष्ठं मोक्षदं विद्यात्तर्जनी शत्रुनाशिनी ।
मध्यमा धनदा शातिं करोत्येव ह्यनामिका ॥
कनिष्ठाऽऽकर्षणे प्रोक्ता जपकर्मणि गीष्पते ॥७०॥
अङ्गुष्ठेन जपेज्जप्यमन्यैरङ्गुलिभिः सह ।
अङ्गुष्ठेन विना जप्यं कृतं तदफलं यतः ॥७१॥

स्थानादिभेदेन फलभेदः

गृहे जपं समं विद्याद् गोष्ठे शतगुणं भवेत् ।
पुण्यारण्ये तथाऽऽरामे सहस्रगुणमुच्यते ॥७२॥
अयुतं पर्वते रम्ये नद्यां लक्षमुदाहृतम् ।
कोटिं देवालये विद्यादनन्तं शिवसन्निधौ ॥७३॥
यदिष्टलिङ्गं संपश्यन् वामहस्तस्थितं परम् ।
जपते तत्फलं वक्तुं न मया शक्यते गुरो ॥७४॥

जप करने के लिये तीस रुद्राक्ष के दानों से बनाई गई माला धन देने वाली है। २७ रुद्राक्ष के दानों की माला पुष्टि देने वाली है॥६८॥ पचीस रुद्राक्ष के दानों से बनाई गई माला मुक्ति को देने वाली है। पन्द्रह रुद्राक्ष के दानों की माला मारण-मोहन आदि अभिचार कर्म की सिद्धि को देने वाली होती है॥६९॥ हे बृहस्पति! जपकर्ता को मोक्ष की प्राप्ति के लिये अंगुष्ठ का, शत्रु को नाश के लिये तर्जनी का, धन की प्राप्ति के लिये मध्यमा का, शान्ति की प्राप्ति के लिये अनामिका का और आकर्षण के लिये कनिष्ठा का उपयोग प्रधान रूप से करना चाहिये॥७०॥ माला से जप करते समय उसमें अन्य अंगुलियों के साथ अँगूठे का उपयोग अवश्य करे। बिना अँगुठे के किया गया जप निष्फल हो जाता है॥७१॥

घर में जप करने का सामान्य फल मिलता है। गोष्ठ (गायों का बाड़ा) में जप करने से सौगुना और पवित्र वन अथवा उद्यान में जप करने से हजार गुना फल मिलता है॥७२॥ रमणीय पर्वत पर किये गये जप का फल १० हजार गुना, नदी मे तट पर लाख गुना, देवालय में करोड़ गुना और शिव की संनिधि कें किये गये जप का अनन्त गुण फल मिलता है॥७३॥ हे बृहस्पति! अपने वाम हस्त में स्थित श्रेष्ठ इष्टलिंग को

सूर्यस्याग्नेर्गुरोरिन्दोर्दीपस्य च जलस्य च ।
विप्राणां च गवां चैव सन्निधौ शस्यते जपः ॥७५॥
तत्पूर्वाभिमुखं वश्यं दक्षिणं चाभिचारिकम् ।
पश्चिमं धनदं विद्यादुत्तरं शान्तिदं भवेत् ॥७६॥

जपकाले वर्ज्यम्

उष्णीषी कञ्चुकी नग्नो मुक्तकेशो गलावृतः ।
अपवित्रकरोऽशुद्धो विलपन्न जपेत् क्वचित् ॥७७॥
क्रोधं मदं क्षुधां तन्द्रां निष्ठीवनविजृम्भणे ।
दर्शनं च श्वनीचानां वर्जयेज्जपकर्मणि ॥७८॥
आचामेत् सम्भवे तेषां स्मरेत् साम्बं त्रियम्बकम् ।
ज्योतींषि च प्रपश्येद्वा कुर्याद्वा प्राणसंयमम् ॥७९॥
अशानश्च शयानश्च गच्छन्नुत्थित एव वा ।
रथ्यायामशिवे स्थाने न जपेत्तिमिरान्तरे ॥८०॥
प्रसार्य न जपेत् पादौ कुक्कुटासन एव वा ।
यानशय्याधिरूढो वा चिन्ताव्याकुलितोऽपि वा ॥
सदाचारो चपन् जुह्वन् ध्यायन् भद्रं समश्नुते ॥८१॥

देखते हुए जो जप किया जाता है, उसके फल का वर्णन करने में मैं असमर्थ हूँ।।७४।। सूर्य, अग्नि, गुरु, चन्द्र, दीपक, जल, विप्र और गौ की संनिधि में जप करना प्रशंसनीय माना गया है।।७५।। पूर्वाभिमुख जप वशीकरण कारक और दक्षिणाभिमुख आभिचारिक सिद्धि को देने वाला है। पश्चिमाभिमुख होकर जप करने से धन की और उत्तराभिमुख से शान्ति की प्राप्ति होती है।।७६।।

जिसने पगड़ी अथवा कुर्ता आदि सिला वस्त्र धारण कर रखा है, नग्न है, खुले केश वाला है, गले में कपड़ा लपेटे हुए है, जिसका हाथ अथवा शरीर अपवित्र है, विलाप कर रहा है, ऐसा व्यक्ति कभी जप न करे।।७७।। जप करते समय क्रोध न करे, नशा न करे। क्षुधा अथवा तन्द्रा से ग्रस्त व्यक्ति जप न करे। जप करते समय थूँकना अथवा जंभाई लेना वर्जित है। इसी प्रकार से श्वान नीच आदि का दर्शन भी वर्जित है।।७८।। इनकी संभावना होने पर आचमन कर साम्ब शिव का स्मरण करे अथवा सूर्य, चन्द्र, तारका आदि ज्योतियों का दर्शन करे अथवा प्राणायाम द्वारा अपने को पवित्र करे।।७९।। भोजन करता हुआ, सोया हुआ, चलता हुआ अथवा खडा हुआ, गली में अपवित्र स्थान पर और अन्धकार से पूरित स्थान पर जप न करे।।८०।। पैर फैला कर अथवा उकड़ू बैठकर जप न करे। किसी सवारी पर अथवा शय्या पर बैठकर

रहस्यमन्यद्वक्ष्यामि गोपनीयमिदं शृणु ।
न वाच्यं यस्य कस्यापि नास्तिकस्याथवा पशोः ॥८२॥

पञ्चाक्षरमन्त्रमहिमा

सदाचारविहीनस्य पतितस्यान्त्यजस्य वा ।
पञ्चाक्षरात् परं नास्ति परित्राणं कलौ युगे ॥८३॥
गच्छतस्तिष्ठतो वापि स्वेच्छया कर्म कुर्वतः ।
अशुचेर्वा शुचेर्वापि मन्त्रोऽयं न च निष्फलः ॥८४॥
अनाचारवतां पुंसामविशुद्धषडध्वनाम् ।
अनादिष्टोऽपि गुरुणा मन्त्रोऽयं न च निष्फलः ॥८५॥
अन्त्यजस्यापि मूढस्य मूर्खस्य पतितस्य च ।
निर्मर्यादस्य नीचस्य मन्त्रोऽयं न च निष्फलः ॥८६॥
सर्वावस्थांगतस्यापि मयि भक्तिमतः सदा ।
सिद्ध्यत्येष न सन्देहो नापरस्य तु कस्यचित् ॥८७॥
न कदाचन कस्यापि रिपुरेष महामनुः ।
सिद्धो वाऽथ सुसिद्धो वा साध्यो वाऽथ भविष्यति ॥८८॥

जप न करे। चिन्ता से व्याकुल व्यक्ति भी जप न करे। सदाचारसम्पन्न व्यक्ति ही जप करके, होम करके और शिव का ध्यान करके कल्याण को प्राप्त करता है॥८१॥ अब मैं एक रहस्य की बात तुम्हें बता रहा हूँ, उसे तुम सुनो! इसको गुप्त रखना चाहिये, जिस किसी को नहीं बता देना चाहिये। विशेष कर नास्तिक अथवा पशु (अज्ञानी) को इसे कभी नहीं बताना चाहिये॥८२॥

जो व्यक्ति सदाचार से विहीन है, पतित है अथवा अन्त्यज है, उसके लिये इस कलियुग में पंचाक्षर मन्त्र से बढ कर कोई त्राण देने वाला नहीं है॥८३॥ चलते हुए, खड़े हुए अथवा अपनी इच्छा के अनुसार कर्म करते हुए, पवित्र अथवा अपवित्र अवस्था में भी इस पंचाक्षर मन्त्र का जप निष्फल नहीं होता॥८४॥ जो व्यक्ति आचारवान् नहीं है, जिनके षडध्वों की शुद्धि दीक्षा व्यापार द्वारा नहीं हुई है, जिनको गुरु द्वारा इसका उपदेश नहीं हुआ है, ऐसे व्यक्ति के लिये भी यह मन्त्र निष्फल नहीं होता, अर्थात् ऐसे व्यक्तियों के द्वारा जपे जाने पर भी यह अवश्य फलदायी होना है॥८५॥ भले ही व्यक्ति अन्त्यज हो, जड़ बुद्धि का हो, मूर्ख हो, पतित हो, मर्यादा का पालन न करता हो, नीच हो, तो भी यह मन्त्र उसके लिये निष्फल नहीं होता॥८६॥ जिस किसी भी अवस्था को प्राप्त हुआ व्यक्ति यदि मेरा भक्त है, तो उसको यह मन्त्र अवश्य सिद्धि प्रदान करता है, इसके सिवाय किसी दूसरे को नहीं॥८७॥ यह महामन्त्र

सिद्धेन गुरुणाऽऽदिष्टः सुसिद्ध इति कथ्यते ।
असिद्धेनापि वा दत्तः सिद्धः साध्यस्तु केवलम् ॥८९॥
असाधितः साधितो वा सिद्ध्यत्येष न संशयः ।
श्रद्धातिशययुक्तस्य शिवे मन्त्रे तथा गुरौ ॥९०॥

पञ्चाक्षरीविद्यामाश्रयेत्

तस्मान्मन्त्रान्तरांस्त्यक्त्वा सापायानधिकारतः ।
आश्रयेत् परमां विद्यां हृद्यां पञ्चाक्षरीं बुधः ॥९१॥
मन्त्रान्तरेषु सिद्धेषु मन्त्र एष न सिद्ध्यति ।
अस्मिन् सिद्धे महामन्त्रे तेऽपि सिद्धा भवन्ति हि ॥९२॥
अपारो महिमा शैवपञ्चाक्षरमहामनोः ।
न वक्तुं विधिना शक्यः संक्षिप्योक्तो मयानघ ॥९३॥

आवरणाष्टकप्रकरणोपसंहारः

इदं हि शैवदीक्षाया महदावरणाष्टकम् ।
प्रथितं सर्वविद्यासु प्रत्येकमपि मुक्तिदम् ॥९४॥

कभी भी किसी का भी रिपु नहीं बन सकता। सिद्ध, सुसिद्ध अथवा साध्य ही यह हो सकेगा॥८८॥ सिद्ध गुरु के द्वारा उपदिष्ट मन्त्र सुसिद्ध कहलाता है। असिद्ध गुरु के द्वारा उपदिष्ट मन्त्र सिद्ध और अपने से आराधित मन्त्र साध्य कहलाता है॥८९॥ यह मन्त्र असाधित हो या साधित, जिसकी शिव, मन्त्र और गुरु के प्रति अपार श्रद्धा है, उसको अवश्य ही सिद्ध हो जाता है, इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है॥९०॥

इस लिये अन्य मन्त्रों को छोड़ कर, जो कि अधिकार के भेद के कारण प्रत्यवाय का जनक भी हो सकते हैं, इस मनो हारिणी श्रेष्ठ पंचाक्षरी विद्या का आश्रय विद्वान् व्यक्ति को लेना चाहिये॥९१॥ दूसरे मन्त्रों के सिद्ध हो जाने पर भी यह पंचाक्षर मन्त्र सिद्ध नहीं हो पाता, पिन्तु इस महामन्त्र के सिद्ध हो जाने पर अन्य मन्त्र अपने आप सिद्ध हो जाते हैं॥९२॥ इस शैव पंचाक्षर मन्त्र की महिमा अपार है। ब्रह्मा भी इसकी महिमा का वर्णन नहीं कर सकते। हे निष्पाप देवगुरु! मैने इसकी महिमा तुमको संक्षेप में बताई है॥९३॥

शैव दीक्षा के ये ही आठ महान् आवरण हैं। सभी शास्त्रों में ये प्रसिद्ध हैं। इनमें से प्रत्येक आवरण मुक्ति प्रदान करने में समर्थ हैं॥९४॥ हे समस्त देवताओं कुल

गदितं त्वयि संप्रीत्या भुवनानुजिधृक्षया ।
वृन्दारककुलाचार्य किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥९५॥

इति श्रीचन्द्रज्ञानागमे उत्तरभागेऽनन्तरुद्रबृहस्पति–
संवादे शिवशासने क्रियापादे पञ्चाक्षरस्वरूप–
निरूपणं नामाष्टमः पटलः॥

के आचार्य बृहस्पति! तुम्हारे ऊपर प्रीति होने के कारण तथा संसार के प्राणियों पर अनुग्रह करने की इच्छा से यह अष्टावरण का स्वरूप मैंने तुमको बताया है। अब आगे तुम क्या सुनना चाहते हो॥९५॥

इस प्रकार अनन्तरुद्र और बृहस्पति के संवाद के रूप में प्रस्तुत इस
चन्द्रज्ञानागम के उत्तर भाग के क्रिया पाद का पंचाक्षर
मन्त्र के स्वरूप का निरूपण करने वाला
यह आठवाँ पटल समाप्त हुआ ।



नवमः पटलः

बृहस्पतिरुवाच

सर्वागमार्थसारज्ञ सर्वभूतदयापर ।
जगदुद्धरणोन्निद्रानन्तरुद्र नमोऽस्तु ते ॥१॥
अष्टावरणमाहात्म्यमनन्तश्रुतिचोदितम् ।
श्रीमन्मुखादिहाकर्ण्य परां तृप्तिमवाप्नुवम् ॥२॥
आचाराणां च पञ्चानां स्वरूपं विनिबोध्य माम् ।
अनुगृह्णीष्व कृपया सुरासुरनमस्कृत ॥३॥

अनन्तरुद्र उवाच

पञ्चाचारनिरूपणम्

लिङ्गाचारः सदाचारः शिवाचारस्तथैव च ।
भृत्याचारो गणाचारः पञ्चाचाराः प्रकीर्तिताः ॥४॥
गुरुणा दत्तलिङ्गाद्वै नास्ति दैवं महीतले ।
इति भावानुसन्धानं लिङ्गाचारः स उच्यते ॥५॥
धर्माजितेन द्रव्येण यत् सन्तर्पणमन्वहम् ।
गुरुलिङ्गजङ्गमानां सदाचार इति स्मृतः ॥६॥
शिव एव परं ब्रह्म पञ्चकृत्यपरायणम् ।
न ततोऽन्या गतिरिति शिवाचारो हि कीर्तितः ॥७॥

बृहस्पति प्रश्न करते हैं—

हे सभी आगमों के अर्थ के सार को जानने वाले, सभी प्राणियों पर दया करने वाले, जगत् के उद्धार के लिये निद्रा को भी त्याग देने वाले अनन्तरुद्र! मैं आपको प्रणाम करता हूँ॥१॥ अनेक श्रुतियों में वर्णित अष्टावरण के माहात्म्य को आपके मुख से सुनकर हैं परम तृप्त हो गया हूँ॥२॥ सुरों और असुरों के द्वारा नमस्कृत हे अनन्तरुद्र! अब आप पांच आचारों के स्वरूप को बताकर कृपया मुझे अनुगृहीत कीजिये॥३॥

अनन्तरुद्र उत्तर देते हैं—

लिंगाचार, सदाचार, शिवाचार, गणाचार और भृत्याचार—ये ही पांच प्रकार के आचार कहे गये हैं॥४॥ गुरु के द्वारा प्रदत्त इष्टलिंग से बढकर इस पृथ्वी पर दूसरा कोई देवता नहीं हैं, इस प्रकार के भाव का अनुसन्धान करना ही ***लिंगाचार*** कहलाता है॥५॥ धर्म का पालन करते हुए अर्जित किये गये धन से प्रतिदिन गुरु, लिंग और जंगम को भोजन, वस्त्र आदि से सन्तुष्ट करना ***सदाचार*** कहलाता है॥६॥ सृष्टि, स्थिति, संहार, निग्रह और अनुग्रह नामक पाँच कृत्यों में संलग्न शिव ही पर ब्रह्म हैं। इनके

शिवस्य शिवभक्तस्य शिवधर्मादिकस्य च ।
न श्रृणोति च यन्निन्दां च गणाचार उच्यते ॥८॥
शिवभक्तजनाः सर्वे वरिष्ठाः पृथिवीतले ।
तेषां भृत्योऽहमिति यद् भृत्याचार इति स्मृतः ॥९॥
इहोक्तानां च पञ्चानामाचाराणां सुरोत्तम ।
प्रकारान्तरमस्त्यत्र वक्ष्ये तदपि च श्रृणु ॥१०॥

१. लिङ्गाचारः

लिङ्गाचारं प्रवक्ष्यामि प्रथमं मङ्गलालयम् ।
क्रियावेधामन्वभिख्यदीक्षान्तर्गतमूर्तयः ॥
एकविंशतिदीक्षाश्च लिङ्गाचार इति स्मृतः ॥११॥

सप्तविधा दीक्षा

आज्ञोपमा च कलशैरभिषेकस्ततः परम् ।
स्वस्तिकारोहणं भूतिपट्टमायत्तमेव च ॥
स्वायत्तमिति सप्तैताः क्रियादीक्षान्तरा मताः ॥१२॥
समयश्चाप्यसंसारस्तत्त्वं ज्ञानमनुग्रहः ।
अध्यात्मशुद्धविद्ये च सप्त वेधान्तराः स्मृताः ॥१३॥

अतिरिक्त अन्य कोई शरण्य नहीं है, इस भावना को ही ***शिवाचार*** कहा गया है।।७।। शिव की, शिवभक्त की और शिवधर्म की निन्दा को न सुनना ही ***गणाचार*** कहलाता है।।८।। इस पृथ्वी तल पर शिवभक्त मनुष्य ही सर्व श्रेष्ठ हैं, मैं उनका भृत्य हूँ। ऐसे संकल्प को ही ***भृत्याचार*** कहा गया है।।९।। हे सुरोत्तम बृहस्पति! यहां बताये गये इन पांच आचारों का एक दूसरा भी स्वरूप है। उसे मैं बता रहा हूँ। उसे भी तुम सावधानी से सुनो।।१०।।

मैं सबसे पहले मंगलदायक लिंगाचार का वर्णन कर रहा हूँ। [१]क्रिया, वेधा और मनु(मन्त्र) नामक दीक्षा के अन्तर्गत आने वाले सात सात उपविभागों के साथ २१ प्रकार की दीक्षाएं लिङ्गाचार के अन्तर्गत आती हैं।।११।।

आज्ञा, उपमा, कलशाभिषेक, स्वस्तिकारोहण, भूतिपट्ट, आयत्त और स्वायत्त- ये सात भेद क्रिया रीक्षा के माने गये हैं।।१२।। समय, असंसार, तत्त्व, ज्ञान, अनुग्रह, अध्यात्म और शुद्धविद्या- ये सात भेद वेधा दीक्षा के हैं।।१३।। दृढ संकल्प, अहिंसा,

---

१. क्रिया, वेधा और मन्त्र नामक त्रिविध दीक्षाओं का विवरण सिद्धान्तशिखामणि (६.१२-१५) में भी देखिये ।

दृढव्रतमहिंसा च तस्मै पञ्चेन्द्रियार्पणम् ।
एकाग्रचित्तसंपत्तिः परतत्त्वे सदा रतिः ॥१४॥
लिङ्गे निजमनोलीनं सद्योमुक्तिश्च शाश्वती ।
एवं सप्तविधा दीक्षा मनुदीक्षान्तराः स्मृताः ॥१५॥

२. सदाचारः

सदाचारं प्रवक्ष्यामि सावधानमनाः शृणु ।
[२]आचार एव सर्वेषामलङ्काराय कल्पते ॥
आचारहीनः पुरुषो लोके भवति निन्दितः ॥१६॥
ज्ञानेनाचारयुक्तेन प्रसीदति महेश्वरः ।
तस्मादाचारवान् ज्ञानी भवेदादेहपातनम् ॥१७॥
शिवस्य भक्तिराधार आचारः सर्वदेहिनाम् ।
आचारः परमो धर्म आचारः परमं धनम् ॥१८॥
ज्ञानमाचारहीनं चेन्न तद्भवति सिद्धये ।
शृणु तस्मिन् सदाचारे शीलमष्टविध भवेत् ॥१९॥

सदाचारेऽष्टविधं शीलम्

अङ्कुरं प्रथमं ज्ञेयमुत्पन्नं च द्वितीयकम् ।
द्विदलं च तृतीयं स्यात् प्रवृद्धं च चतुर्थकम् ॥२०॥

भगवन्निमित्र पंचेन्द्रियार्पण, चित्त एकाग्रता की सम्पत्ति, पर तत्त्व में सदा अनुराग, लिंग में अपने मन का लय और नित्य सद्योमुक्ति—ये सात भेद मनु दीक्षा के हैं॥१४-१५॥

अब मैं सदाचार को कहता हूँ, उसे तुम सावधानी से सुनो। इस लोक में आचार ही सबका अलंकरण माना गया है। आचारहीन पुरुष की लोक में निन्दा होती है॥१६॥ आचार से सम्पन्न ज्ञान से ही भगवान् शंकर प्रसन्न होते हैं। अतः ज्ञानी व्यक्ति को मृत्युपर्यन्त सदाचार से संपन्न रहना चाहिये॥१७॥ शिव की प्राप्ति में जैसे भक्ति प्रधान आधार है, उसी तरह से सभी जीवधारियों के जीवन का आचार ही प्रधान आधार है। आचार ही परम धर्म है और आचार ही श्रेष्ठ धन है॥१८॥ ज्ञान यदि आचार से हीन है, तो वह ज्ञान कभी सिद्धिप्रद नहीं हो सकता। हे बृहस्पति! तुम सुनो कि इस सदाचार में आठ प्रकार के शील का आचरण करना पड़ता है॥१९॥

इनमें अंकुर पहला, उत्पन्न दूसरा, द्विदल तीसरा, प्रवृद्ध चौथा, सप्रकाण्ड पांचवां, सशाख छठा, सपुष्प सातवां और सफल आठवां शील है॥२०-२१॥ यह

---

२. यहां के दो श्लोक सिद्धान्तशिखामणि (१६। १३-१४) में भी मिलते हैं ।

सप्रकाण्डं पञ्चमं स्यात् सशाखं षष्ठमुच्यते ।
सपुष्पं सप्तमं ज्ञेयं सफलं चाष्टमं भवेत् ॥२१॥
सदाचारोऽष्टशीलाढ्यः सेवितः कल्पपादपः ।
सद्भक्तानां सुमनसां ददातीष्टफलं महत् ॥२२॥

अङ्कुरादिशीललक्षणम्

अङ्कुराख्यं प्रवक्ष्यामि बीजभूतं समासतः ।
गुरुकारुण्यकलितषडध्वन्यासशोभिता ॥
तनुः स्वीया प्राकृतेति भावोऽङ्कुर इतीर्यते ॥२३॥
दीक्षितैरेव दाराद्यैः सहवासो य आत्मनः ।
शीलमुत्पन्नमित्युक्तं ग्राह्यमेतद्विचक्षणैः ॥२४॥
लाञ्छनानां हि शैवानां भस्मादीनामनारतम् ।
धारणं त्वप्रमादेन द्विदलं शीलमुच्यते ॥२५॥
यन्नित्यं शिवधर्माणां माहात्म्यस्य विभावनम् ।
प्रवृद्धं शीलमित्युक्तं भक्तेर्वृद्धिकरं श्रुतम् ॥२६॥
इष्टलिङ्गमनभ्यर्च्य स्थीयते यदभोजनम् ।
सप्रकाण्डमिदं शीलं विज्ञेयं भक्तिसाधनम् ॥२७॥

सदाचार आठ शीलों से संयुक्त है। इस सदाचार का जो पालन करते हैं, ऐसे प्रसन्न मन वाले सद्भक्तों के लिये यह कल्पवृक्ष के समान मनोवांछित महान् फल को देता है॥२२॥

पहले मैं अंकुर नामक शील का स्वरूप बताता हूँ। संक्षेप में यह सभी शीलों का मूल कारण है। गुरु की करुणा से जो [3]षडध्वन्यास की विधि से सुशोभित है, अर्थात् दिव्य भाव को प्राप्त हो गई है, ऐसी मेरी यह काया (शरीर) ही समस्त आराधना ही मूल प्रकृति है, इस भाव की उदय होना ही अंकुर नामक शील कहलाता है॥२३॥ दीक्षित स्त्रीपुत्र आदि के साथ ही अपना निवास रखना उत्पन्न शील कहलाता है। विद्वान् व्यक्तियों को इसका आचरण अवश्य करना चाहिये॥२४॥ भस्म इत्यादि शैव लांछनों को निरन्तर बिना प्रमाद के धारण करना द्विदल शील कहलाता है॥२५॥ शिवधर्म की महिमा का निरन्तर चिन्तन ही प्रवृद्ध शील कहलाता है। यह भक्ति की वृद्धि करने वाला है, ऐसा सुना जाता है॥२६॥ इष्टलिंग का पूजन किये बिना भोजन

---

३. षडध्वन्यास का प्रकार वीरशैवलिङ्गीब्राह्मण-दशकर्मपद्धति के वीरशैव-दीक्षाविधिप्रकरण (पृ० ८१-८३) में विस्तार से दिया गया है। षडध्वशोधन की प्रक्रिया को बताते हुए यहां क्रमशः भुवनाध्व, पदाध्व, वर्णाध्व, कलाध्व, तत्त्वाध्व और मन्त्राध्व न्यास वर्णित हैं ।

इष्टलिङ्गानर्पितस्य द्रव्यस्याग्रहणं हि यत् ।
शीलं सशाखमित्युक्तमवर्ज्यं भक्तितत्परैः ॥२८॥
शिवार्पितप्रसादस्य यत् परित्यागवर्जनम् ।
सपुष्पं शीलमित्युक्तं विज्ञेयं चैतदुत्तमम् ॥२९॥
गुरुजङ्गमलिङ्गानां यदेकत्वेन भावनम् ।
सफलं शीलमित्युक्तं सद्यः सिद्धिकरं परम् ॥३०॥
यः सदाचारमष्टाङ्गं भक्तिनिष्ठो निषेवते ।
स सद्यः सिद्धिमाप्नोति परां शम्भोरनुग्रहात् ॥३१॥

३. शिवाचारः

शिवाचारमतो वक्ष्ये शृणुष्वावहितो मुने ।
द्रव्यक्षेत्रगृहादीनां षोडशानां विशोधनम् ॥
शिवशास्त्रोक्तमार्गेण शिवाचार इति स्मृतः ॥३२॥

षोडश शुद्धयः

भक्तहस्तगतं वापि भस्मना वा विशोधितम् ।
फलमूलादिकं ग्राह्यं द्रव्यशुद्धिरियं मता ॥३३॥
नन्दिमुद्राङ्कितशिलादार्वादिपरिशोभितम् ।
क्षेत्रं भक्तिपरैग्राह्यं क्षेत्रशुद्धिः प्रकीर्तित ॥३४॥

न करने का संकल्प ही सप्रकाण्ड शील कहलाता है। इसको भी शिवभक्ति का साधन माना गया है॥२७॥ इष्टलिंग को अर्पित किये बिना किसी भी द्रव्य को ग्रहण न करना ही सशाख शील कहलाता है। भक्ति में लगे व्यक्ति को इस शील का पालन अवश्य करना चाहिये॥२८॥ शिव को अर्पित किये गये प्रसाद का कभी परित्याग न करना सपुष्प शील कहलाता है। शीलों में यह श्रेष्ठ माना गया है॥२९॥ गुरु, लिंग और जंगम में एकत्व की भावना सफल शील कहलाता है। यह तत्काल सिद्धि देने वाले श्रेष्ठ शील है॥३०॥ जो भक्तिनिष्ठ व्यक्ति इस आठ अंग वाले सदाचार का पालन करता है, वह भगवान् शिव के अनुग्रह से तत्काल श्रेष्ठ सिद्धि को प्राप्त करता है॥३१॥

अब मैं शिवाचार को कहूँगा हे बृहस्पति! तुम सावधान होकर सुनो। द्रव्य, क्षेत्र, गृह आदि १६ पदार्थों को शिवशास्त्र विहित पद्धति से परिशुद्ध करना ही शिवाचार कहलाता है॥३२॥

भक्त मनुष्य के हाथ से अथवा भस्म द्वारा विशोधित फल, मूल आदि का ही ग्रहण करना चाहिये। इसी को द्रव्य शुद्धि कहा जाता है॥३३॥ नन्दी की मुद्रा से अंकित शिला, काष्ठ आदि से शोभित क्षेत्र ही शास्त्रों में क्षेत्र शुद्धि के नाम से वर्णित है।

भक्तैस्तु निर्मितं वापि शिवलिङ्गाङ्कितं तु वा ।
वेश्म भक्तैः परिग्राह्यं गृहशुद्धिः समीरिता ॥३५॥
भक्तेन निर्मितं वापि शिवलिङ्गाङ्कितं तु वा ।
भाण्डजातं परिग्राह्यं भाण्डशुद्धिः प्रकीर्तिता ॥३६॥
भक्तलोकसमानीतं भस्मना संस्कृतं तु वा ।
तृणादिकं परिग्राह्यं तृणशुद्धिरितीरिता ॥३७॥
भक्तियुक्तसमानीतं विभूत्या संस्कृतं तु वा ।
काष्ठं व्रतस्थैः संग्राह्यं काष्ठशुद्धिः समीरिता ॥३८॥
भक्तारामे समुत्पन्नैर्भस्मना संस्कृतैस्तु वा ।
भक्तैस्तु साधितेनाऽपि विभूत्या संस्कृतेन वा ॥३९॥
नागवल्लीदलैः पूगैश्चूर्णेन च समन्वितम् ।
ग्राह्यं भक्तैर्हि ताम्बूलं वीटिकाशुद्धिरीरिता ॥४०॥
शिवदीक्षान्वितैः पक्वमभक्तानवलोकितम् ।
भोज्यं भक्तैः परिग्राह्यं पाकशुद्धिरियं मता ॥४१॥
घृतं दधि पयस्तक्रं माहिषं चाविकं त्यजेत् ।
गव्यं तु सर्वदा ग्राह्यं रसशुद्धिरियं मता ॥४२॥

शिवभक्तों के चाहिये कि वे इस ऐसे ही क्षेत्रों का ग्रहण करे॥३४॥ भक्त मनुष्यों के द्वारा निर्मित अथवा शिवलिंग से अंकित घर ही शिव भक्तों लिये ग्राह्य है। इसे ही गृहशुद्धि कहा जाता है॥३५॥ शिवभक्त के द्वारा निर्मित अथवा शिवलिंग से अंकित भाण्ड का ग्रहण ही भाण्डशुद्धि कहलाती है॥३६॥ भक्तजनों के द्वारा लाये गये अथवा भस्म द्वारा संस्कृत तृण आदि का ग्रहण ही तृणशुद्धि कहलाती है॥३७॥ भक्तियुक्त मनुष्यों के द्वारा समानीत अथवा विभूति से संस्कृत काष्ठ का ही ग्रहण व्रती जनों को करना चाहिये। इसे काष्ठशुद्धि कहा जाता है॥३८॥ भक्त मनुष्यों के बगीचे में लगे हुए अथवा भस्म द्वारा शोधित अथवा भक्तों के द्वारा साधित विभूति से संस्कृत नागवल्ली के दलों (पान) से, सुपारी से और चूर्ण (चूने) से समन्वित ताम्बूल ही भक्तों के द्वारा ग्राह्य होता है। यही वीटिकाशुद्धि कहलाती है॥३९-४०॥ शिवदीक्षा से संपन्न व्यक्ति के द्वारा पकाया गया और अभक्त व्यक्तियों के द्वारा न देखा गया भोजन ही भक्तों के द्वारा ग्राह्य होता है। इसे ही पाकशुद्धि कहते हैं॥४१॥ घी, दही, दूध, मट्ठा यदि भैंस अथवा बकरी का है, तो उसका परित्याग करना और यदि गौ का है, तो उसे ग्रहण करना ही रसशुद्धि कहलाती है॥४२॥ पुनर्जन्म के कारणभूत काम्य

पुनर्भवनिदानोक्तकाम्यकर्मविसर्जनात् ।
जन्मराहित्यसम्पत्तिर्भवशुद्धिर्निगद्यते ॥४३॥
सर्वभूतदयालुत्वं पाञ्चभौतिकसंस्कृतिः ।
भूतदूषणराहित्यं भूतशुद्धिः समीरिता ॥४४॥
सर्वकामान् समुज्झित्य शिवभावानुभावनम् ।
चेतसा यत् सर्वकालं भावशुद्धिः समीरिता ॥४५॥
पद्भ्यां पिपीलिकादीनां न यथा हिंसनं भवेत् ।
गमनं हि परिग्राह्यं मार्गशुद्धिरियं मता ॥४६॥
शास्त्रसंचोदिते काले निःशब्दे च मनोरमे ।
शिवलिङ्गाराधनं यत् कालशुद्धिरिहोदिता ॥४७॥
अनृतं परुषं कुत्सं बीभत्सं दाम्भिकं च यत् ।
विसर्जनं तद्वचसो वाक्शुद्धिरिति कथ्यते ॥४८॥
आसने शयने याने गोष्ठ्यां सर्वत्र सर्वदा ।
सद्भक्तजनसाङ्गत्यं जनशुद्धिः समीरिता ॥४९॥
विद्वन्नयं शिवचारः सर्वशास्त्रेषु गोपितः ।
एतदाचरणान्मर्त्यः शिवसायुज्यमश्नुते ॥५०॥

कर्मों का परित्याग करने से जो जन्म-परम्परा का विच्छेद हो जाता है, इसे ही भवशुद्धि कहा गया है।॥४३॥ सभी प्राणियों के प्रति दयाभाव रखना, पाँच भौतिक पदार्थों का संस्कार करना, पंचभूतों के दोषों का वर्जन करना ही भूतशुद्धि कहलाती है।॥४४॥ सभी प्रकार की कामनाओं का परित्याग करके मन से केवल शिवभाव की सदा भावना करना ही भावशुद्धि कही गई है।॥४५॥ मार्ग में पैरों से चींटी जैसे क्षुद्र प्राणियों की भी हिंसा न हो, इस तरह सावधानी से चलना ही मार्गशुद्धि मानी गई है। शिवभक्त को इसका पालन करना चाहिये।॥४६॥ निःशब्द, मनोहारी, शास्त्रनिर्दिष्ट काल (ब्राह्म मुहूर्त) में शिवलिंग की आराधना करना ही कालशुद्धि कहलाती है।॥४७॥ असत्य, कठोर, कुत्सित, बीभत्स और दंभ से भरे वचन का परित्याग ही वाक्-शुद्धि कहलाती है।॥४८॥ आसन, शयन, यान(सवारी), गोष्ठी आदि में सर्वत्र सदा सद्भक्तों की संगति ही जनशुद्धि कही गई है।॥४९॥ हे विद्वान् बृहस्पति! शिवांचार का यह स्वरूप शास्त्रों में गुप्त रखा गया है। इस आचार का पालन करने से मनुष्य शिवसायुज्य को प्राप्त करता है।॥५०॥

४. गणाचार:

गणाचारमतो वक्ष्ये भोगमोक्षैकसाधनम् ।
अनुष्ठितो भक्तगणैर्गणाचार इतीरितः ॥५१॥

चतुष्षष्टिशीलानि

सर्वोत्तमे गणाचारे सद्यःसिद्धिकरे परे ।
शीलानि तु चतुःषष्टिर्वर्तन्ते तानि संशृणु ॥५२॥

तत्र सप्तकायिकशीलानि

भक्तिनिष्ठेन यद्वाचा यथार्थस्यैव भाषणम् ।
तत्सत्यं सर्वशास्त्रेषु प्रथमं शीलमुच्यते ॥५३॥
न वाच्यमप्रियं सत्यं नासत्यं च प्रियं वदेत् ।
ब्रूयात् प्रियं च यत्सत्यं द्वितीयं शीलमुच्यते ॥५४॥
वेदागमपुराणानां धर्मज्ञानैकबोधिनाम् ।
पठनं प्रत्यहं यत्तत्तृतीयं शीलमीरितम् ॥५५॥
शिवस्य शिवभक्तानां गुरोरपि विशेषतः ।
प्रशंसनं यदश्रान्तं चतुर्थं शीलमुच्यते ॥५६॥
अन्येषां चैव देवानां मानुषाणां च जातुचित् ।
प्रशंसावर्जनं यत्तत् पञ्चमं शीलमुच्यते ॥५७॥
कदाचित् कुत्रचिद्वा यदात्मस्तुतिविसर्जनम् ।
तत् षष्ठं शीलमित्युक्तं सर्वशास्त्रैकसम्मतम् ॥५८॥

अब में गणाचार का वर्णन करूँगा। यह भोग और मोक्ष का एकमात्र साधन है। भक्तगणों के द्वारा अनुष्ठित होने से इसको गणाचार कहते हैं।॥५१॥

तत्काल सिद्धि प्रदान करने वाले इस सर्वोत्तम गणाचार में ६४ शील होते हैं। उनको तुम सुनो।॥५२॥

भक्तिनिष्ठ व्यक्ति के द्वारा वाणी से यथार्थ भाषण करना ही सत्य कहलाता है। सभी शास्त्रों में इसे प्रथम शील कहा गया है।॥५३॥ अप्रिय सत्य नहीं बोलना चाहिये और किसी को खुश करने के लिये असत्य भी नहीं बोलना चाहिये। अत: जो प्रिय सत्य बोला जाता है, इसे ही द्वितीय शील कहते हैं।॥५४॥ धर्म और ज्ञान का बोध कराने वाले वेद, आगम और पुराणों का प्रतिदिन अभ्यास करना ही तृतीय शील है।॥५५॥ शिव की, शिवभक्तों की और विशेषकर गुरु की बिना थके निरन्तर प्रशंसा करना चतुर्थ शील है।॥५६॥ शिवभिन्न देवताओं की और मनुष्यों की कभी भी भूल कर भी प्रशंसा न करना पंचम शील है।॥५७॥ कहीं भी, कभी भी, स्वयं अपने आप

देवतानां मनुष्याणां निर्गुणानां च जातुचित् ।
गर्हाविसर्चनं यत्तत् सप्तमं शीलमुच्यते ॥५९॥
तदेतद्वाचिकं शीलमुक्तं सप्तविधं मया ।
अथ पाणिगतं यत्तु शीलं वक्ष्यामि तच्छृणु ॥६०॥

पञ्चविधं पाणिगतं शीलम्

गुरुजङ्गमलिङ्गानां क्रियते या नमस्कृतिः ।
शीलमष्टममित्युक्तमखिलागमबोधितम् ॥६१॥
पूजापरिकराणां यत्संपादनमहर्निशम् ।
शीलं नवममित्युक्तं शिवप्रीत्येककारणम् ॥६२॥
रुद्राक्षमालया नित्यं मूलमन्त्रजपोऽन्वहम् ।
दशमं शीलमित्युक्तमखिलाघविशोधनम् ॥६३॥
गुरोर्माहेश्वराणां च भवानीवल्लभस्य च ।
आराधनं प्रत्यहं तच्छीलमेकादशं स्मृतम् ॥६४॥
गुरवे जङ्गमेभ्यश्च शिवधर्माय भक्तितः ।
यथाशक्ति कृतं दानं द्वादशं शीलमुच्यते ॥६५॥
एवं पञ्चविधं शीलं पाणिसम्बद्धमीरितम् ।
अथ पादगतं वक्ष्ये शीलं पापौघनाशनम् ॥६६॥

अपनी प्रशंसा न करना षष्ठ शील कहलाता है। यह सभी शास्त्रों में मान्य है ॥५८॥ सभी देवताओं की, मनुष्यों की, यहां तक कि निर्गुण व्यक्तियों की भी निन्दा न करना सप्तम शील है।॥५९॥ ऊपर जिन सात प्रकार के शीलों का वर्णन मैंने तुमसे किया है, वे सब वाचिक शील कहलाते हैं। अब मैं तुम्हें पाणिगत शीलों को बताऊँगा, उसे सावधानी से सुनो॥६०॥

गुरु, जंगम और लिंग को जो श्रद्धा पूर्वक प्रणाम किया जाता है, वही आठवाँ शील है। समस्त आगमों में यह प्रतिपादित है॥६१॥ रात-दिन पूजा के साधनों को जुटाते रहना ही नवम शील है, जो कि शिव की प्रीति का एकमात्र कारण है॥६२॥ प्रतिदिन नियमानुसार रुद्राक्ष की माला से मूल (पंचाक्षर) मन्त्र का जप करना ही दशम शील है। इससे समस्त पापों का क्षालन हो जाता है॥६३॥ गुरु का, माहेश्वरों का और भवानी के वल्लभ भगवान् शिव का प्रतिदिन समाराधन ही ग्यारहवां शील है॥६४॥ गुरु के लिये, जंगमों के लिये और शिव धर्म की रक्षा के लिये, शक्ति के अनुसार भक्तिपूर्वक दिया गया दान बारहवाँ शील है॥६५॥ इस तरह से यह पाँच प्रकार का शील पाणि (हाथ) से संबद्ध है। अब मैं पापसमूह के नाशक पादगत शील को बताता हूँ॥६६॥

चतुर्विधं पादगतं शीलम्

गुरोर्माहेश्वरस्याभिगमनं क्रियते हि यत् ।
तत् त्रयोदशमित्युक्तं शम्भुना सर्ववेदिना ॥६७॥
गुरोर्माहेश्वरस्यापि क्रियते यत् प्रदक्षिणम् ।
भक्तिभावयुतेनैव गदितं तच्चतुर्दशम् ॥६८॥
पूजापरिकराणां हि सम्पादनचिकीर्षया ।
भक्तेन गम्यते नित्यं तत् पञ्चदशकं मतम् ॥६९॥
गुरोरपीष्टलिङ्गस्य पूजार्थं स्थिरमासनम् ।
तत् षोडशकमित्युक्तं देवदेवेन शूलिना ॥७०॥
एवं पादगतं शीलं चतुर्विधमितीरितम् ।
त्वक्सम्बद्धमतो वक्ष्ये तच्छृणुष्वावधानतः ॥७१॥

त्वक्संबद्धं शीलम्

नित्यं यदिष्टलिङ्गस्य स्पर्शनं त्ववियोगतः ।
तत् सप्तदशकं प्रोक्तं वपुःसार्थकतास्पदम् ॥७२॥
इष्टलिङ्गस्पर्शजन्यरोमाञ्चसमलङ्कृतिः ।
अष्टादशं शीलमिति कथितं भवनाशकम् ॥७३॥
त्वक्सम्बद्धमिदं शीलं द्विविधं परिकीर्तितम् ।
चक्षुर्गतं प्रवक्ष्यामि श‍ृणु तत्सावधानतः ॥७४॥

गुरु के और माहेश्वरों के पास जो भक्तिभाव पूर्वक जाया जाता है, सर्वज्ञ शंभु ने इस अभिगमन को १३वाँ शील कहा है।।६७।। गुरु की और माहेश्वरों की जो प्रदक्षिणा की जाती है, भक्तिभावपूर्वक की गई यह प्रदक्षिणा ही १४वाँ शील है।।६८।। पूजा के उपकरणों को इकट्ठा करने के लिये भक्तगण का नदी, उपवन आदि स्थानों में जाना ही १५वाँ शील है।।६९।। गुरु की और इष्टलिंग की पूजा के लिये स्थिर आसन से जो बैठा जाता है, उसे ही देवों के देव त्रिशूलधारी शिव के द्वारा १६वाँ शील कहा गया है।।७०।। इस तरह से यह पादगत शील चार प्रकार का बताया गया है। अब मैं स्पर्श संबन्धी शीलों का वर्णन कर रहा हूँ। तुम उसे सावधानी से सुनो।।७१।।

इष्टलिंग को अपने शरीर से अलग किये बिना नित्य उसका जो स्पर्श ,शरीर से होता रहता है, यही १७ वाँ शील है। इससे मनुष्य का यह शरीर सार्थक हो जाता है।।७२।। इष्टलिंग के स्पर्श से शरीर में जो रोमांच होता है, वही १८वाँ शील है। वह इस संसार का नाश करने वाला है।।७३।। त्वचा से सम्बद्ध इन दो प्रकार के शीलों का कीर्तन करने के बाद अब मैं चक्षुगत शीलों को कहता हूँ। उसे तुम सावधानी से सुनो।।७४।।

चक्षुर्गतं शीलम्

अश्रान्तं सानुरागं यदिष्टलिङ्गनिरीक्षणम् ।
एकोनविंशकं शीलमुक्तं भवभयाहपम् ॥७५॥
इष्टलिङ्गेक्षणोद्भूतानन्दबाष्पसमुद्गमः ।
विंशं शीलं विनिर्दिष्टं स्पष्टं चन्द्रार्धमौलिना ॥७६॥
एवं ते द्विविधं शीलं चक्षुःसम्बद्धमीरितम् ।
अथ जिह्वागतं वक्ष्ये शृणु श्रद्धासमन्वितः ॥७७॥

जिह्वागतं शीलम्

निवेदितप्रसादीयरसास्वादो यदन्वहम् ।
एकविंशकमित्युक्तमथ घ्राणगतं शृणु ॥७८॥

घ्राणगतं शीलम्

निर्माल्यगन्धपुष्पादिसौरभाघ्राणनं परम् ।
द्वाविंशकं समाख्यातमतः श्रोत्रगतं शृणु ॥७९॥

श्रोत्रगतं शीलम्

गुरोः शिवस्य भक्तानां स्तोत्राकर्णनमन्वहम् ।
तत् त्रयोविंशकं प्रोक्तं मोक्षसम्प्राप्तिकारणम् ॥८०॥
गुरोः शिवस्य भक्तानां निन्दानाकर्णनं हि यत् ।
तच्चतुर्विंशकं प्रोक्तं कायिकं तु ततः शृणु ॥८१॥

बिना थके अनुरागपूर्वक इष्टलिंग का अवलोकन ही १९वाँ शील है। यह संसार के भय को भगा देने वाला है।।७५।। इष्टलिंग को देखते देखते जो आनन्दाश्रु गिरने लगते हैं, उसे चन्द्रार्धधारी शिव २०वाँ शील बताते हैं।।७६।। इस तरह से चक्षु से सम्बद्ध दो प्रकार के शील तुमको बताये गये। अब जिह्वागत शीलों को कहूँगा। तुम उसे श्रद्धापूर्वक सुनो।।७७।।

भगवान् शिव को निवेदित प्रसाद का प्रतिदिन स्वीकार करना ही २१वाँ शील है। अब घ्राणगत शील को सुनो।।७८।।

निर्माल्य गन्ध, पुष्प आदि की सौरभ की आघ्राण ही २२वाँ शील है। अब श्रोत्रगत शील को सुनो।।७९।।

गुरु, शिव और भक्तों के स्तोत्रों को प्रतिदिन सुनना ही २३वाँ शील है। इससे मोक्ष की प्राप्ति होती है।।८०।। गुरु, शिव और भक्तों की निन्दा को न सुनना ही २४वाँ शील कहा गया है। अब तुम कायिक शील को सुनो।।८१।।

कायिकं शीलम्

गुरोरपीष्टलिङ्गस्य चरस्यैव प्रसादतः ।
कायशोधनमेतद्धि शीलं स्यात् पञ्चविंशकम् ॥८२॥
निषिद्धविषयेभ्यश्च यदिन्द्रियविनिग्रहः ।
षड्विंशं शीलमित्युक्तं भवदोषनिवारणम् ॥८३॥
अस्पृश्यवस्तुसंस्पर्शे स्नानं नीरेण भस्मना ।
शौचं हि सप्तविंशं स्याच्छीलं दोषनिवारणम् ॥८४॥
आसने शयने गोष्ठ्यां भविसम्बन्धवर्जनम् ।
अष्टाविंशमिदं शीलं निर्दिष्टं शौचसाधनम् ॥८५॥
भूतिरुद्राक्षलिङ्गानां शरीरे धारणं सदा ।
एकोनत्रिंशकं शीलं मोक्षमार्गैकसाधनम् ॥८६॥
कायिकं पञ्चधा प्रोक्तं मुक्तिप्राप्त्येकसाधनम् ।
अथ मानसिकं वक्ष्ये शीलमेकमनाः शृणु ॥८७॥

मानसिकं शीलम्

निषिद्धभोगविषये यत् संकल्पविवर्जनम् ।
ब्रह्मचर्यं हि तच्छीलं त्रिंशमीश्वरचोदितम् ॥८८॥

गुरु, इष्टलिंग और जंगम के प्रसाद से अपने शरीर का शोधन करना ही २५वाँ शील है॥८२॥ निषिद्ध विषयों से अपनी इन्द्रियों को निगृहीत करना ही २६वाँ शील है। यह सांसारिक दोषों का नाश करता है॥८३॥ अस्पृश्य वस्तु का स्पर्श हो जाने पर जल से अथवा भस्म से स्नान कर शुद्ध हो जाता ही शौच नाम का २७वाँ शील है। यह समस्त दोषों को दूर करने वाला है॥८४॥ आसन पर, शय्या पर अथवा विद्वद्गोष्ठी आदि के अवसरों पर [४]भवी, अर्थात् संसार में लिप्त जीवों के साथ संपर्क न रखना ही २८वाँ शील है। इससे साधक का मन निर्मल होता है॥८५॥ भस्म, रुद्राक्ष और लिंग को सदा शरीर पर धारण करना २९वाँ शील है। यह मोक्ष मार्ग का एक मात्र साधन है॥८६॥ इस प्रकार पाँच प्रकार के कायिक शीलों को यहां बताया गया है, जो कि मुक्ति की प्राप्ति के एकमात्र कारण हैं। अब मानसिक शीलों को कहूँगा, तुम सावधानी से सुनो॥८७॥

निषिद्ध भोगों के प्रति अपने संकल्प का भी परित्याग कर देना ब्रह्मचर्यनाम

४. वीरशैव मत में इष्टलिङ्ग को धारण न करने वाले सांसारिक जीव के लिये 'भवी' शब्द प्रयुक्त है, क्योंकि बिना इष्टलिङ्ग धारण किये कोई भी इस सांसारिक आवागमन से मुक्त नहीं हो सकता ।

द्रू कामं भक्तिरसौ कुर्यादविषयेषु न जातुचित् ।
एकत्रिंशमिदं शीलं निष्कामत्वं प्रकीर्तितम् ॥८९॥
वहेत् क्रोधमधर्मे तु न वैरिषु कदाचन ।
द्वात्रिंशकमिदं शीलमक्रोधं मुक्तिसाधनम् ॥९०॥
न धनादौ वहेल्लोभं शिवस्याराधने वहेत् ।
अलोभाख्यमिदं शीलं त्रयस्त्रिंशं समीरितम् ॥९१॥
मोहं भक्तजने कुर्यान्न कान्तायां सुतेषु वा ।
अमोहाख्यमिदं शीलं चतुस्त्रिंशं प्रकीर्तितम् ॥९२॥
मात्सर्यं करणेष्वेव न जनेषु वहेत् क्वचित् ।
अमात्सर्यमिदं शीलं पञ्चत्रिंशं समीरितम् ॥९३॥
मदं मायाजये कुर्यान्न धर्मे नाऽपि संपदि ।
अमदाख्यमिदं शीलं षट्त्रिंशमिति कीर्तितम् ॥९४॥
गुणागुणविमर्शस्य त्यागो यस्तु गुरौ चरे ।
सप्तत्रिंशं समाख्यातं शीलं पुण्यफलप्रदम् ॥९५॥
प्राणिनो यस्य कस्यापि न बाधाकरणं हि यत् ।
अहिंसाख्यमिदं शीलमष्टत्रिंशं समीरितम् ॥९६॥

का ३०वाँ शील है। ऐसा भगवान् के द्वारा उपदिष्ट है॥८८॥ शिवभक्ति की ही कामना रखनी चाहिये, विषयों की कामना कभी भी नहीं करनी चाहिये। इस प्रकार का भाव ही ३१वाँ शील कहा गया है॥८९॥ अधर्म के प्रति ही क्रोध करना, शत्रु के प्रति कभी क्रोध न करना ही अक्रोध नामक ३२वाँ शील कहा गया है। यह मुक्ति का साधन है॥९०॥ धन आदि के प्रति लोभ न रख कर शिव की आराधना में जो लोभ है, वही अलोभ नाम का ३३वाँ शील है॥९१॥ भक्तों के प्रति जिसको मोह रहता है, पत्नी-पुत्र आदि के प्रति नहीं, यही अमोह नाम का ३४वाँ शील कहलाता है॥९२॥ अपनी इन्द्रियों के प्रति ही जिसको [५]मात्सर्य रहता है, किसी व्यक्ति के प्रति नहीं, यही ३५वाँ अमात्सर्य नामक शील है॥९३॥ माया पर विजय पाने का ही जिसको मद (नशा) रहता है, धर्म के पालन से अथवा सम्पत्ति के अर्जन से नहीं, यही अमद नामका ३६वाँ शील है॥९४॥ गुरु और जंगम के प्रति गुण या अवगुण के विचार को जो त्याग देता है, यही ३७वाँ शील है। इससे पुण्य फल की प्राप्ति होती है॥९५॥ जिस किसी भी

---

५. मात्सर्य द्वेष वर्ग की एक मानसिक स्थिति है। महाकवि भारवि ने इस दशा का वर्णन इस प्रकार किया है- ''मात्सर्यरागोपहतात्मनां हि स्खलन्ति साधुष्वपि मानसानि'' (किरा० ३.५३)। इसका अभिप्राय यह है कि राग और द्वेष से भरा हुआ मनुष्य सज्जनों के साथ भी न्याय कहीं कर पाता।

प्राणिदुःखस्य वीक्षायामक्षमत्वं दयाभिधम् ।
शीलं प्रसिद्धमेकोनचत्वारिंशं प्रकीर्तितम् ॥९७॥
क्रियायां वचने वापि यत्परस्मात् स्वतोऽपि वा ।
ह्रीर्या शीलमिदं प्रोक्तं चत्वारिंशं त्रिशूलिना ॥९८॥
रिपौ निजसुते वापि यद्वैषम्यविवर्जनम् ।
आर्जवाख्यं शीलमेकचत्वारिंशमुदाहृतम् ॥९९॥
आगमे निगमे चैव विश्वासो यद्गुरुदिते ।
श्रद्धाख्यं शीलमेतद् द्विचत्वारिंशं समीरितम् ॥१००॥
आपद्यपि दुरन्तायां धर्मस्य यदवर्जनम् ।
धृत्याख्यं शीलमेतत् त्रिचत्वारिंशं प्रकीर्तितम् ॥१०१॥
अदूषणं वैरिजनेष्वपकारपरेष्वपि ।
शीलं क्षमाभिधं चतुश्चत्वारिंशं समीरितम् ॥१०२॥
भोगप्रयुक्तवाञ्छाया राहित्यं यद्धि मानसे ।
भोगासक्तिच्युतिः पञ्चचत्वारिंशं समीरितम् ॥१०३॥
क्रियायां वचने वापि प्रमादरहितस्थितिः ।
धीर्या शीलं तदिह षट्चत्वारिंशं विनिश्चितम् ॥१०४॥

प्राणी को बाधा न पहुंचाना ही अहिंसा नामक ३८वाँ शील है॥९६॥ किसी भी प्राणि के दुःख को देखने से जो कातरता आ जाती है, ऐसी मानसिक स्थिति ही दया नाम का ३८वाँ शील कहा गया है॥९७॥ दूसरों को गलतफहमी न हो, बुरा न लग जाय, इस अभिप्राय से किसी अच्छे काम को करने मैं अथवा कहने में भी दूसरों से अथवा स्वयं अपने आपमें भी जो संकोच की भावना आ जाती है, इसी भाव को भगवान् शिव ने ४०वाँ शील कहा है॥९८॥ शत्रु हो अथवा अपना पुत्र, इन दोनों के प्रति भेदभाव का परित्याग ही आर्जव नामका ४१वां शील है॥९९॥ गुरु के द्वारा उपदिष्ट आगम और निगम के प्रति विश्वास की भावना ही श्रद्धा नामक ४२वाँ शील कहा गया है॥१००॥ कभी समाप्त न होने वाली आपत्तियों से घिर जाने पर भी धर्म का परित्याग न करना धृति नामक ४३वाँ शील है॥१०१॥ अपकार करने में लगे हुए शत्रुजनों के प्रति भी कभी दोष दृष्टि न रखना क्षमा नाम का ४४वाँ शील कहा गया है॥१०२॥ मन में भोगों के प्रति किसी प्रकार की इच्छा का उत्पन्न न होना ही भोगासक्तिच्युति नामका ४५वाँ शील है॥१०३॥ किसी प्रकार के कार्य को करने में और अपने कहे गये वचन का पालन करने में जो कभी प्रमाद न करने वाली बुद्धि है, वही ४६वाँ शील निश्चित किया गया है॥१०४॥ शिव के सिवाय अन्य किसी भी वस्तु को अपने

शिवान्यवस्तुविषयसंकल्पपरिवर्जनम् ।
शीलं दमाभिधं सप्तचत्वारिंशं प्रकीर्तितम् ॥१०५॥
अन्यूनधर्मानुष्ठानं परद्रव्यापरिग्रहः ।
अस्तेयाख्यं शीलमष्टचत्वारिंशमुदाहृतम् ॥१०६॥
अलब्धवस्तुविषयव्यसनाभावसुस्थितिः ।
संतुष्टिः शीलमेकोन पञ्चाशत्कं विनिश्चिनु ॥१०७॥
पारमेश्वरयोर्नित्यं स्मरणं नामरूपयोः ।
जीवन्मुक्तिप्रदं शीलं पञ्चाशत्कं समीरितम् ॥१०८॥
शम्भुनामगुणादीनां चिन्तनं यदनारतम् ।
शीलं पाशहरं त्वेकपञ्चाशत्कं प्रकीर्तितम् ॥१०९॥
भाव्यमानं सदा शम्भोः पादसंवाहनादिकम् ।
पादसेवनमेतद् द्विपञ्चाशत्कमुदाहृतम् ॥११०॥
अर्चनं मानसं यत् स्याच्छम्भोरावाहनादिना ।
शीलं त्विदं गीष्पते त्रिपञ्चाशत्कमुदाहृतम् ॥१११॥
शम्भुपादाब्जयोर्नित्यं प्रणामो मानसो हि यत् ।
शीलमेतत्किल चतुःपञ्चाशं संप्रकीर्तितम् ॥११२॥

संकल्प में न लाना ही दम नाम का ४७वाँ शील है॥१०५॥ धार्मिक कृत्यों के अनुष्ठान में किसी प्रकार की [६]कमी न रखना और दूसरों के द्रव्य का परिग्रह न करना अस्तेय नाम का ४८वाँ शील है॥१०६॥ किसी वस्तु के उपलब्ध न होने पर बिना परेशानी के रह सकने की स्थिति ही सन्तुष्टि कहलाती है। हे बृहस्पति! इसी को तुम ४९वाँ शील समझो॥१०७॥ परमेश्वर के नाम और रूप का नित्य स्मरण करना ही ५०वाँ शील कहा गया है। यह जीवन्मुक्ति को देने वाला है॥१०८॥ भगवान् शिव के नाम, गुण आदि का निरन्तर चिन्तन करते रहना ही ५१वाँ शील है, जो कि शिवभक्त को संसार के पाशों से मुक्ति दिलाता है॥१०९॥ भगवान् शिव के पादसंवाहन (पैर दबाना) आदि की सदा भावना करने रहना ही पादसेवन नामक ५२वाँ शील कहलाता है॥११०॥ भगवान् शिव का आवाहन आदि उपचारों से जो मानसिक पूजन किया जाता है, हे

---

६. इसके लिये शास्त्रों में वित्तशाठ्य शब्द प्रयुक्त है। ऐसा देखा जाता है कि व्यक्ति तड़क-भड़क में तो अनाप-शनाप पैसा खर्च करता है, किन्तु धार्मिक अनुष्ठानों के समय द्रव्य और काल को भी बचाना चाहता है। आजकल यह प्रवृत्ति तेजी से बढ रही है। अनेक व्यक्ति कम खर्च और कम समय में धार्मिक अनुष्ठानों को पूरा करा लेना चाहते हैं। इसी प्रवृत्ति पर यहां अंकुश लगाया गया है।

कैङ्कर्यकरणं शम्भोर्मनसा सर्वदा हि यत् ।
दास्यं शीलमिदं पञ्चपञ्चाशमिति भाषितम् ॥११३॥
शम्भोः कल्याणरूपस्य सखिताभावनं हि यत् ।
सख्याख्यं शीलमेतत् षट्पञ्चाशमिति निश्चितम् ॥११४॥
बन्धमोचनभारस्य कृत्स्नस्येशे समर्पणम् ।
आत्मार्पणमिदं सप्तपञ्चाशं सम्प्रचोदितम् ॥११५॥
यज्जपो मूलमन्त्रस्य मनसा क्रियते सदा ।
शीलमेतत् सेव्यमष्टपञ्चाशमवधारितम् ॥११६॥
शम्भोर्यद् दिव्यरूपानुसन्धानं क्रियते हृदि ।
ध्यानाख्यं शीलमेकोनषष्टिकं परिकीर्तितम् ॥११७॥
ध्रियते तैलधारावदविच्छिन्नं तदेव यत् ।
धारणाख्यं शीलमिदं षष्टिकं समुदाहृतम् ॥११८॥
निवातदीपवद् ध्याने चेतसो यदवस्थितिः ।
समाध्याख्यं शीलमेकषष्टिकं सम्प्रचोदिकम् ॥११९॥

बृहस्पति! वही ५३वाँ शील कहलाता है॥१११॥ भगवान् शिव के चरणकमलों में प्रतिदिन जो मानसिक प्रणाम किया जाता है, वही ५४वाँ शील प्रकीर्तित है॥११२॥ भगवान् शिव की मानसिक रूप से की गई सेवा ही दास्य नामक ५५वाँ शील कहा गया है॥११३॥ सबका कल्याण करने वाले भगवान् शिव के साथ सख्यभाव (मैत्रीभाव) रखना ही सख्य नामक ५६वाँ शील निश्चित किया गया है॥११४॥ बन्धन अथवा मोचन, अर्थात् बन्ध और मोक्ष का समस्त भार भगवान् के ऊपर छोड़ देना ही आत्मार्पण नामक ५७वाँ शील कहा गया है। भाव यह है कि भक्त स्वयं निरपेक्ष रहकर भगवान् मुझे अभी बन्धन में डालना चाहते हैं या मुक्त करना चाहते हैं, इसका सारा भार जब उन्हीं पर डाल देता है, तो इसे ही आत्मार्पण कहते हैं॥११५॥ मूल (पंचाक्षर) मन्त्र का जो सदा मानसिक जप किया जाता है, इसे ही भक्तों के लिये सेवनीय ५८वाँ शील निर्धारित किया गया है॥११६॥ भगवान् शिव के दिव्य रूपों का हृदय में जो सदा अनुसन्धान किया जाता है, यही ध्यान नाम का ५९वाँ शील कहा गया है॥११७॥ तैल की धारा के समान अविच्छिन्न रूप से चित्त में जो भगवान् का स्वरूप निरन्तर प्रवाहित होता रहता है, यही धारणा नाम का ६०वाँ शील है॥११८॥ पवन रहित स्थान में जैसे दीपक की लौ निरन्तर एक रस उठती रहती है, उसी तरह से ध्यान करते करते चित्त की जो अखण्ड स्थिति हो जाती है, उसे ही समाधि नामक ६१वाँ शील कहा गया है॥११९॥ "वही मैं हूँ" इस भावना के साथ विश्व के स्वामी भगवान् शिव का ध्यान करते हुए, जो कुछ भी मैं कर रहा हूँ,

सोऽहंभावेन विश्वेशं ध्यायन् कृत्यानि सर्वतः ।
तदिन्द्रियमुखेनैव क्रियमाणानि भावयन् ॥
यदाचरति तच्छीलं द्विषष्टिकमुदाहृतम् ॥१२०॥
अपरिच्छिन्नरूपानुसन्धानं यन्महेशितुः ।
शीलमुक्तं सुराचार्य त्रिषष्टिकमुदाहृतम् ॥१२१॥
अनन्तरूपं देवस्य भावयन्निजरुपतः ।
शिवानन्दवशाद्विश्वमात्मानं विस्मरन्नपि ॥
यस्तिष्ठत्यचलः शीलं चतुष्षष्टिकमीरितम् ॥१२२॥
यश्चतुष्पष्टिशीलाढ्यः शिव एव न चापरः ।
एतदभ्यासयोगेन शिवसायुज्यमश्नुते ॥
गणाचार इति प्रोक्तो भृत्याचारमतः शृणु ॥१२३॥

भृत्याचारः

भृत्यत्वं वीरभृत्यत्वं भृत्याचारो द्विधा मतः ।
गुरुलिङ्गजङ्गमानां कैङ्कर्याचरणं हि यत् ॥
भृत्यत्वमिति निर्दिष्टं देवदेवन शम्भुना ॥१२४॥

वह सब भगवान् के द्वारा ही संपादित हो रहा है, ऐसी भावना करता हुआ भक्त जो कुछ आचरण करता है, उन सबका ६२वाँ शील में समावेश माना गया है।।१२०।। हे सुराचार्य बृहस्पति! भगवान् महेश्वर के अपरिच्छिन्न सर्वत्र व्याप्त रूप का अनुसन्धान ही ६३वाँ शील शास्त्रों में वर्णित है।।१२१।। देवदेव भगवान् रुद्र के अनन्त रूपों की जो अपने स्वरूप से अभिन्न रूप में भावना करता है, उससे उत्पन्न हुए शिवानन्द से जो सारे विश्व को और स्वयं अपने को भी भूल बैठता है और शान्त अचल भाव में स्थिर हो जाता है, यही ६४वाँ शील कहा गया है।।१२२।। इन ऊपर वर्णित ६४ प्रकार के शीलों से जो सम्पन्न है, वह स्वयं शिव ही हो जाता है, उससे भिन्न नहीं रह जाता। इनका आचरण करने से भक्त शिवसायुज्य को प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार हे बृहस्पति! मैंने तुमको गणाचार का स्वरूप बताया है। अब आगे तुम भृत्याचार के स्वरूप को सुनो।।१२३।।

भृत्याचार दो प्रकार का माना गया है। एक तो भृत्यता और दूसरा वीरभृत्यता। इनमें से गुरु, लिंग और जंगम की सेवा करना ही देवों के देव भगवान् शिव के द्वारा भृत्यता कही गई है।।१२४।। अपने देशिक (गुरु) के लिये शरीर, भगवान् शिव के लिये मन और जंगम के लिये अपना धन समर्पित करके भी जो महान् उत्साह से भरा हुआ हैं और मुक्ति की कामना से ही मात्र शरीर धारण किये हुए है, शिव के

देशिकाय तनुं चित्तं शम्भवे च धनं तथा ।
जङ्गमाय समर्प्यैवं महोत्साहसमन्वितः ॥१२५॥
मुक्तिमेव परां काङ्क्षमाणो यदवतिष्ठते ।
तन्मतं वीरभृत्यत्वं शिवानुग्रहसाधनम् ॥१२६॥
इत्येवं कथितस्तुभ्यं पञ्चाचारविनिर्णयः ।
निगमागमसारोऽयं मुक्तिप्राप्त्येकसाधनः ॥१२७॥
नाशिष्यायोपदेष्टव्यो नाभक्ताय कदाचन ।
नापुत्राय च वक्तव्यो न श्रद्धारहिताय च ॥
गोपनीयः प्रयत्नेन किमतः श्रोतुमिच्छसि ॥१२८॥

इति श्रीचन्द्रज्ञानागमे उत्तरभागेऽनन्तरुद्रबृहस्पतिसंवादे शिवशासने क्रियापादे पञ्चाचारस्वरूपनिरुपणं नाम नवमः पटलः ॥

अनुग्रह की प्रधान साधनभूत यह स्थिति ही वीरभृत्यता मानी गई है॥१२४-१२६॥ हे बृहस्पति! इस तरह से तुमको यह पंचाचार का विनिर्णीत स्वरूप बताया गया है। गिम और आगम का यह सारभूत तत्त्व है और मुक्ति की प्राप्ति का एम मात्र साधन है॥१२७॥ जो शिष्य नहीं है, जो शिव का भक्त नहीं है, जो पुत्रभाव को प्राप्त नहीं हुआ है और श्रद्धा का जिसमें अभाव है, उसे इसका उपदेश कभी नहीं करना चाहिये। उनके सामने इस विषय को प्रयत्न पूर्वक गुप्त रखना चाहिये। हे बृहस्पति! अब इसके आगे तुम क्या सुनना चाहते हो॥१२८॥

इस प्रकार अनन्तरुद्र और बृहस्पति के संवाद के रूप में प्रस्तुत इस चन्द्रज्ञानागम के उत्तर भाग के क्रिया पाद का पंचविध आचारों के स्वरूप को बताने वाला यह नवां पटल समाप्त हुआ ।



दशमः पटलः

बृहस्पतिरुवाच

सर्वभद्रगुणोपेत काद्रवेयपरिष्कृत ।
जनदुद्धरणोन्निद्रान्तरुद्र नमोऽस्तु ते ॥१॥
आगमेषु निगद्यन्ते शैवभेदास्त्वनेकधा ।
चत्वारः क्वचिदुच्यन्ते तथा सप्तेति हि क्वचित् ॥२॥
दशेति च क्वचित् प्रोक्ताः कथ्यन्ते क्वचिन्यथा ।
संगृह्य तानिह ब्रूहि परिष्कारमसंशयम् ॥३॥

अन्तरुद्र उवाच

अष्टविधाः शैवाः

अधुना ते प्रवक्ष्यामि शैवभेदमनुत्तमम् ।
अनादिशैवं प्रथममादिशैवं द्वितीयकम् ॥
पूर्वशैवं तृतीयं स्यान्मिश्रशैवं चतुर्थकम् ॥४॥
शुद्धशैवं पञ्चमं स्यात् षष्ठं वै मार्गशैवकम् ।
सामान्यं सप्तमं ज्ञेयं वीरशैवमथाष्टमम् ॥५॥

१. अनादिशैवलक्षणम्

अथ तल्लक्षणं वक्ष्ये यथावदनुपूर्वतः ।
अनादिशैवः शम्भुः स्यादाथ तस्य गणा अपि ॥

बृहस्पति प्रश्न करते हैं—

सभी कल्याणकारी गुणों से युक्त, सर्पों से भूषित, जगत् के उद्धार के लिये सदा सजग हे अनन्तरुद्र! आपको मैं नमस्कार करता हूँ॥१॥ आगमों में शैवों के अनेक भेद कहे जाते हैं। कहीं चार तथा कहीं इनके सात भेद किये जाते हैं॥२॥ कहीं कहीं इनके दस भेद भी कहे गये हैं और कहीं अधिक भी। उन सबको संगृहीत कर आप मुझे उनका सार भाग इस तरह से समझाइये कि मुझे किसी प्रकार का संशय न रह जाय॥३॥

अनन्तरुद्र उत्तर देते हैं—

अभी मैं तुमको श्रेष्ठ शैवों के भेदों का वर्णन करूँगा। इनमें पहला अनादिशैव, दूसरा आदिशैव, तीसरा पूर्वशैव, चौथा मिश्रशैव, पांचवा शुद्धशैव, छठा मार्गशैव, सातवां सामान्यशैव और आठवां भेद वीरशैव है॥४-५॥

अब मैं अनुपूर्वी से इनका लक्षण बताऊँगा। इनमें अनादिशैव स्वयं भगवान् शिव

२. आदिशैवलक्षणम्

आदिशैवास्तु विज्ञेयाः कौशिकाद्या महर्षयः ॥६॥
कौशिकः कश्यपश्चैव भरद्वाजात्रिगौतमाः ।
आदावेते महेशस्य पञ्चवक्त्रेषु दीक्षिताः ॥७॥
गुरोर्मुखाद्दीक्षिता हि तद्गोत्राश्चान्यगोत्रिणः ।
आगमान्तोक्तविधिना शाम्भवव्रतसेविनः ॥८॥
वेधामनुक्रियाभिख्यदीक्षात्रय विधानतः ।
लिङ्गत्रयपरिस्फूर्जदङ्गत्रितय शोभिनः ॥
आदिशैवा इति भुवि निगद्यन्ते बृहस्पते ॥९॥
महेशस्य प्रतिष्ठायामुत्सवे स्नपनादिषु ।
आचार्यत्वे ह्यधिकृता आदिशैवा जगन्नुताः ॥१०॥

३. पूर्वशैवलक्षणम्

पूर्वशैवा हि विज्ञेयाः कानीनास्तु शिवद्विजाः ।
अनूढासु हि कन्यासु प्रभूताः पञ्चगोत्रिणः ॥११॥
दीक्षाणामिह शैवीनां पूर्वभागोदितात्मनाम् ।
ग्रहणाग्रहणाभ्यां च द्विविधास्ते शिवद्विचः ॥१२॥
पूर्वकाण्डोक्तदीक्षाभिः संस्कृतास्ते ह्यलिङ्गिनः ।
स्वार्थे परार्थे यजनेऽधिकृतास्ते भवन्ति हि ॥१३॥

और उनके गण हैं। कौशिक आदि महर्षि आदिशैव कहलाते हैं॥६॥ कौशिक, कश्यप, भरद्वाज, अत्रि, और गौतम-ये पाँच महर्षि सर्वप्रथम शिव के पांच वक्त्रों से दीक्षित हुए थे।॥७॥ इन पाँचों गोत्रों वाले अथवा इनसे भिन्न गोत्र वाले जो व्यक्ति आगमों के उत्तर भाग में प्रतिपादित विधि से गुरुमुख से दीक्षित हैं, शांभव व्रत का पालन करते हैं; वेधा, मनु और क्रिया नामक त्रिविध दीक्षा के विधान से जिनके त्रिविध लिंग (इष्ट, प्राण और भाव लिंग) और त्रिविध अंग (स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर) सुशोभित हैं, हे बृहस्पते! ये सब पृथ्वी पर आदि-शैव के नाम से परिचित हैं॥८-९॥ भगवान् शिव की प्रतिष्ठा, उत्सव, स्तपन आदि शुभ अवसरों पर जो आचार्यत्व ग्रहण करते हैं, वे आदिशैव सारे जगत् के नमन करने योग्य हैं॥१०॥

अविवाहित कन्याओं से उत्पन्न पांच गोत्र वाले शिवद्विज पूर्वशैव कहलाते हैं॥११॥ आगमों के पूर्वभाग कें उपदिष्ट शैवी दीक्षाओं के ग्रहण करने और न करने के भेद से दो प्रकार के होते हैं॥१२॥ पूर्वकाण्ड में उक्त दीक्षाओं के द्वारा संस्कृत, ये अलिंगी शैव स्वार्थ अथवा परार्थ यजल में अधिकृत होते हैं॥१३॥ हे सुरार्चित

अर्चकत्वे हि देवस्य कैङ्कर्यकरणेऽपि च ।
शिवागारपरिष्कारेऽधिकृतास्ते सुरार्चित ॥१४॥
नाचार्यत्वे ह्यधिकृतिः प्रतिष्ठादिषु कर्मसु ।
दीक्षितानामपि ह्येषां कानीनत्वादसंशयम् ॥१५॥

(देवलकलक्षणम्)

अथ येऽदीक्षिता एव परार्थयजने रताः ।
ते हि देवलकाः प्रोक्ताः सर्वकर्मविगर्हिताः ॥१६॥
शिवागारादन्यदेशे तेषां स्पर्शोऽपि दोषदः ।
शिवार्चकत्वादेतेषां शैवत्वं तु परिस्फुटम् ॥१७॥
शिवदीक्षाविदूरत्वात् शिवद्रव्यस्य भक्षणात् ।
शिवकैङ्कर्यविषयश्रद्धालोपादिदोषतः ॥
तन्मला इत्युदीर्यन्ते सर्वशास्त्रेषु गीष्पते ॥१८॥

४. मिश्रशैवलक्षणम्

मिश्रशैवमथो वक्ष्ये सुराचार्य समाशृणु ।
आदित्यमम्बिकां विष्णुं गणनाथं महेश्वरम् ॥१९॥
एकपीठे संनिवेश्य मिश्रीकृत्यार्चयन्ति ये ।
मिश्रशैवा इति हि ते प्रोच्यन्ते मिश्रपूजनात् ॥२०॥

बृहस्पति! ये भगवान् शिव की पूजा और सेवा में तथा शिवमन्दिर को साफ-सुथरा रखने में अधिकृत हैं॥१४॥ कानीन होने के कारण दीक्षा प्राप्त कर लेने के उपरान्त भी ये प्रतिष्ठा आदि कार्यों के सम्पन्न कराने में आचार्य पदवी पर अधिकृत नहीं माने जाते ॥१५॥

इनके अतिरिक्त जो बिना दीक्षा प्राप्त किये ही परार्थ-पूजन आदि कार्यों में व्याप्त हो जाते हैं। उनको देवलक कहा जाता है। ये सभी शुभ कर्मों कें विगहित माने जाते हैं॥१६॥ शिवालय के अतिरिक्त अन्य स्थानों में इनका स्पर्श भी दोषजनक माना गया है। शिव के अर्चक होने के कारण ही इनमें शिवत्व परिस्फुट होता है, अर्थात् इनका शैवों में अन्तर्भाव होता है॥१७॥ इनकी शिवदीक्षा नहीं होती, शिव द्रव्य का ये भक्षण करते हैं, शिव की सेवा के प्रति इनमें श्रद्धा का अभाव रहता है, इन सब दोषों के कारण हे बृहस्पति ये मलिन पूर्वशैव कहलाते हैं॥१८॥

हे सुराचार्य! अब मैं मिश्रशैव का लक्षण बताऊँगा, तुम सुनो। सूर्य, शक्ति, विष्णु, गणेश और महेश्वर को एक ही आसन पर विराजमान कर, मिला कर जो इनकी पूजा करते हैं, वे मिश्रशैव कहलाते हैं, क्योंकि ये सब दोनों को मिलाकर उनकी

नैतेषां शिवदीक्षा स्यान्न शिवाधिक्यंभावना ।
भस्मरुद्राक्षधरणाच्छैवत्वं मिश्रपूजनात् ॥
मिश्रत्वं विद्यन्ते यस्मान्मिश्रशैवाः प्रकीर्तिताः ॥२१॥
अन्तश्शाक्तं बहिश्शैवं सभामध्ये तु वैष्णवम् ।
मिश्रितं दृश्यन्ते यस्मान्मिश्रशैवाः प्रकीर्तिताः ॥२२॥

५. शुद्धशैवलक्षणम्

शुद्धशैवमतो वक्ष्ये प्रसिद्धं सुमनोर्चित ।
भस्मरुद्राक्षधरणात्मक पौराणदीक्षया ॥
दीक्षिताः शिवलिङ्गैकपूजातत्परचेतसः ॥२३॥
शिवपारम्यविश्वासाः शिवभावानुभाविनः ।
शुद्धशैवा इति भुवि निगद्यन्ते बृहस्पते ॥२४॥

६. मार्गशैवलक्षणम्

मार्गशैवं प्रवक्ष्यामि मुक्तिसन्निधिमार्गकम् ।
वेदागमान्तगदितदीक्षात्रयपरिग्रहः ॥
षट्स्थलज्ञानसम्पत्तिः षट्कालशिवपूजनम् ॥२५॥

आराधना करते हैं॥१९-२०॥ इनकी न तो शैवी दीक्षा होती है और न इनमें शिव के प्रति श्रेष्ठता की भावना ही होती है। भस्म, रुद्राक्ष का धारण करने से ये शैव है और सबकी मिला कर पूजा करने से ये मिश्र हैं। इसीलिये ये मिश्रशैव कहलाते हैं॥२१॥ भीतर से ये शाक्त हैं, बाहर से शैव दिखाई पड़ते हैं और सभा के बीच में वैष्णव बन जाते हैं। दस प्रकार मिश्रित रूप वाले होने से ये मिश्र शैव कहलाते हैं॥२२॥

हे देवार्चित बृहस्पति! अब मैं प्रसिद्ध शुद्धशैव के लक्षण बताऊँगा। भस्म और रुद्राक्ष के धारण की [१]पौराणिक दीक्षा से जो सम्पन्न हैं, एकमात्र शिवलिंग की पूजा में जो मन से लगे रहते हैं, शिव की श्रेष्ठता में जो विश्वास रखते हैं, जो सदा शिवभाव की भावना कहते रहते हैं, हे बृहस्पति! इस पृथ्वी पर वे शुद्धशैव कहलाते हैं॥२३-२४॥

अब मैं मार्गशैव के लक्षण बताऊँगा, जो कि मुक्ति के पास ले जाने का मार्ग है वेदान्त (उपनिषद्) और आगमान्त (आगमों के उत्तर भाग) में उपदिष्ट त्रिविध

---

१. शिवपुराण जैसे शैव पुराणों में भस्म और रुद्राक्ष के धारण की विधि विस्तार से वर्णित है। उसी विधि को यहां पौराणिक दीक्षा कहा गया है।

एकविंशतिसाहस्त्रयुतषच्छत संख्यया ।
षडक्षरीजपो नित्यं लिङ्गैक्यविभावनम् ॥
धर्मोऽयं मार्गशैवात्मीश्वरेण प्रकीर्तितः ॥२६॥
आदिशैवेन तौल्येऽपि दीक्षादीनां परिग्रहे ।
विशिष्टानां हि धर्माणां शीघ्रमुक्तिप्रदायिनाम् ॥
निरन्तरानुष्ठानं यद्मार्गशैवे विशिष्यते ॥२७॥

७. सामान्यशैवलक्षणम्

सामान्यशैवं वक्ष्यामि तच्छृणुष्वावधानतः ।
शाक्ताद्याः सर्वे एवैते मतपञ्चकवर्तिनः ॥२८॥
अध्वशोधनसंस्काराद्गायत्रीग्रहणादपि ।
सामान्यशैवा इति हि निगद्यन्ते धरातले ॥२९॥

दीक्षा (वेधा, मनु और क्रिया) से जो सम्पन्न है, [2]षट्स्थल का जिसको ज्ञान है, [3]षट्काल में जो शिव का पूजन करता है, २१६०० बार जो प्रतिदिन षडक्षरी मन्त्र का जप करते हुए लिंग और अंग के ऐक्य की भावना करता है, ईश्वर द्वारा प्रतिपादित धर्माचार मार्ग का पालन करता है, वही मार्गशैव है॥२५-२६॥ आदिशैव से यह बहुत कुछ मिलता हुआ है, तो भी दीक्षा आदि के ग्रहण में और शीघ्र मुक्ति दिलाने वाले विशिष्ट धर्मों के निरन्तर अनुष्ठान में मार्गशैव की अपनी विशेषता है॥२७॥

अब मैं सामान्य शैव का वर्णन करूँगा, उसको तुम सावधानी से सुनो। ऊपर बताये गये शाक्त और सभी पांचों मतों को मानने वाले [4]अध्वशोधन की प्रक्रिया से संस्कृत होते हैं, गायत्री मन्त्र का ग्रहण करते हैं, अतः ये सब यहां सामान्य शैव कहलाते हैं॥२८-२९॥

---

२. भक्तस्थल, माहेश्वरस्थल, प्रसादिस्थल, प्राणलिङ्गस्थल, शरणस्थल, और ऐक्यस्थल नामक षड्विध स्थलों का सिद्धान्तशिखामणि जैसे वीरशैव धर्म-दर्शन के ग्रन्थों में विस्तार से वर्णन मिलता है ।

३. प्रातःकाल, संगव, मध्याह्न, अपराह्न और सायाह्न—इस प्रकार दिन को पांच भागों में बांटा गया है। सूर्योदय से पांच नाड़ी तक का काल संगव कहा जाता है। इसको संगव इस लिये कहा गया है कि इस काल में गायों को दुहने के बाद चरने के लिये ले जाया जाता है। प्रस्तुत आगम में दिन को छः भागों में विभक्त किया गया है,—अरुणोदय, सूर्योदय, संगव, मध्याह्न, सायाह्न और अर्धरात्रि (११.६४)।

४. षडध्वशोधन की प्रक्रिया पर प्रथम पटल की २२वीं टिप्पणी देखिये ।

८. वीरशैवलक्षणम्

वीरशैवं प्रवक्ष्यामि विदितं श्रुतितन्त्रयोः ।
श्रौतं स्वतन्त्रमिति च द्विविधं परिकीर्तितम् ॥३०॥
वर्णाश्रमीयधर्माढ्यं श्रौतमित्यभिधीयते ।
तदीयधर्मरहितं स्वतन्त्रमिति कथ्यते ॥३१॥
आगमोत्तरकाण्डोक्तदीक्षाणां यः परिग्रहः ।
समान आदिशैवेन विशेषमिह संशृणु ॥३२॥
इष्टलिङ्गवियोगे वा व्रतानां वा परिच्युतौ ।
तृणवत् प्राणसंत्याग इति वीरव्रतं मतम् ॥३३॥
भक्त्युत्साहविशेषोऽपि वीरत्वमिति कथ्यते ।
वीरव्रतसमायोगाद्वीरशैवं प्रकीर्तितम् ॥३४॥

वीरशैवभेदा:

पुनः त्रिविधमेतद्धि सामान्यादिप्रभेदतः ।
सामान्यश्च विशेषश्च निराभारीति च त्रिधा ॥३५॥

सामान्यवीरशैवलक्षणम्

अथ लक्षणमेतेषां क्रमाद् वक्ष्यामि संशृणु ।
इष्टादिलिङ्गत्रितयस्यैकीभावेन चार्चनम् ॥
गुरौ माहेश्वरे स्वेष्टलिङ्गे च समभावना ॥३६॥

अब मैं वेद और तन्त्र में प्रसिद्ध वीरशैव का लक्षण बताऊँगा। श्रौत वीरशैव और स्वतन्त्र वीरशैव के भेद से ये दो प्रकार के होते हैं॥३०॥ वर्णाश्रम धर्म का पालन करने वाले श्रौत वीरशैव तथा वर्णाश्रम धर्मों का पालन करने वाले स्वतन्त्र वीरशैव कहलाते हैं॥३१॥ आगमों के उत्तर काण्ड में प्रतिपादित दीक्षा की विधि इनकी तथा आदिशैवों की एक सरीखी है। इसके अतिरिक्त जो इनकी विशेषता है, उसे तुम सुनो॥३२॥ इष्टलिंग का वियोग होने पर अथवा व्रत के पालन मे त्रुटि होने पर जो तृण के समान अपने प्राणों के त्याग करने का संकल्प है, वही वीर व्रत कहलाता है॥३३॥ भक्ति के एक विशेष प्रकार के उत्साह को भी वीरव्रत कहते हैं। इस द्विविध वीरव्रत का पालन करने वाला ही वीरशैव कहलाता है॥३४॥

सामान्य आदि के भेद से यह पुन: तीन प्रकार का हो जाता है। उनके नाम हैं- सामान्य वीरशैव, विशेष वीरशैव और निराभारी वीरशैव॥३५॥

अब मैं इनके लक्षण क्रमश: बताऊँगा, तुम सुनो। इष्ट, प्राण और भाव नामक त्रिविध लिंगों की एक ही रूप में पूजा करना, गुरु, माहेश्वर और अपने इष्टलिंग पर

त्रिकालं लिङ्गपूजा च सम्भवद्भिः पदार्थकैः ।
सामान्यवीरशैवस्य धर्मोऽयं परिकीर्तितः ॥

विशेषवीरशैवलक्षणम्

विशेषधर्मानुष्ठानाद् विशेषश्च स एव हि ॥३७॥
एकं माहेश्वरं वापि द्वौ वा त्रीन् प्रतिवासरम् ।
भोजयित्वा हि तच्छेषं भुञ्जीयादप्रमादतः ॥
षट्कालं लिङ्गपूजा च नियतैस्तु पदार्थकैः ॥३८॥
द्रोणपुष्पं बिल्वपत्रं करवीरमथापि वा ।
मल्लिकोत्पलपुन्नागजात्यादिकुसुमानि वा ॥३९॥
एष्वेकं त्रीणि द्वौ वापि ह्यर्पयेन्नियमान्वितः ।
एवं चरिष्ये नियमानहमाप्राणसंचरात् ॥४०॥
नान्यथा बिभृयां प्राणानिति यो नियमः स्मृतः ।
इत्यादिनियमैर्युक्तो विशेष इति कथ्यते ॥४१॥

निराभारीवीरशैवलक्षणम्

तुरीयाश्रमसेवी तु निराभारीति चोच्यते ।
स्वतन्त्रे त्यक्तदारादिर्निराभारीति कथ्यते ॥४२॥

समभावना रखना॥३६॥ तीनों सन्ध्याओं में उपलब्ध पदार्थों से लिंग की पूजा करना- यह सब सामान्य वीरशैव के धर्म हैं। कुछ विशेष धर्मों के अनुष्ठान से वही विशेष वीरशैव कहलाता है॥३७॥

प्रतिदिन एक, दो अथवा तीन माहेश्वरों को भोजन कराने के उपरान्त बचे हुए अन्न का स्वयं भोजन करना, बिना आलस्य के नियत पदार्थों से दिन में [५]छः बार लिंग की पूजा करना। द्रोणपुष्प, बिल्वपत्र, करवीर (कनेर), मल्लिका, उत्पल, पुन्नाग, जाति (चमेली) आदि विविध पुष्पों में से किसी एक, दो अथवा तीन पुष्पों को नियमपूर्वक अर्पित करना, मैं इन नियमों का पालन शरीर में प्राण रहने तक करूँगा, अन्य का प्राणों को धारण नहीं करूँगा, अर्थात् प्राणत्याग कर दूँगा, इस तरह के नियमों का पालन करना विशेष वीरशैव है॥३८-४१॥

चतुर्थ आश्रम में स्थित वीरशैव निराभारी वीरशैव कहलाता है, इनमें स्त्री, पुत्र आदि का त्याग करने वाला स्वतन्त्र निराभारी वीरशैव कहलाता है॥४२॥

---

५. ऊपर प्रदर्शित छः कालों में यह पूजा की जाती है।

स्वतन्त्रो निराभारी

मुण्डी वा जटिलो वापि दण्डकाषायसंयुतः ।
स्वतन्त्रे वीरशैवे तु निराभारी चरेन्महीम् ॥४३॥

वैदिको निराभारी

शिखायज्ञोपवीताढ्यो दण्डकाषायचेलवान् ।
वैदिके वीरशैवे तु निराभारीति स स्मृतः ॥
स्वेष्टलिङ्गावियोगस्तु समान उभयोः स्मृतः ॥४४॥

निराभारसामान्यलक्षणम्

निस्पृहो निजलिङ्गैक्यो भिक्षाशी भयवर्जितः ।
मौनी भूतदयायुक्तो निराभार इति स्मृतः ॥४५॥
कन्थाकमण्डलुधरो भूतिरुद्राक्षसंयुतः ।
दण्डकौपीनधारी च निराभारीति गीयते ॥४६॥
निराभाराश्रमस्थस्य सम्भवे तस्य सन्निधौ ।
ग्राह्योऽयमाश्रमस्तस्य मुखाद्धि प्रणवोऽपि च ॥४७॥
असम्भवे तादृशस्य शिवागारेऽथवा पुनः ।
बिल्वमूले परिग्राह्यो भवतीश्वरशासनात् ॥४८॥

स्वतन्त्र वीरशैव सम्प्रदाय का निराभारी मस्तक मुँडवा कर अथवा जटा धारण कर दण्ड और काषाय वस्त्र धारण कर सारी पृथ्वी पर विचरण कहता रहता है।॥४३॥

वैदिक वीरशैव सम्प्रदाय का निराभारी वीरशैव शिखा और यज्ञोपवीत धारण किये हुए, दण्ड और काषाय वस्त्र धारण कर स्वच्छन्द विचरण कहता है। अपने इष्टलिंग का अवियोग दोनों में समान है। इसका अभिप्राय यह है कि वैदिक और स्वतन्त्र इन दोनों पराम्पराओं के निराभारी वीरशैव अपने शरीर से इष्टलिंग को कभी अलग नहीं करते।४४॥

जो निस्पृह है, जिसमें अपने इष्टलिंग से एकता स्थापित कर ली है, भिक्षाटन करता है, भय से मुक्त है, मौनी है और सभी प्राणियों पर दयाभाव रखता है, वही निराभारी कहलाता है।॥४५॥ कन्था और कमण्डलु को धारण करने वाला, भस्म और रुद्राक्ष धारी, दण्ड और कौपीन धारण करने वाला निराभारी कहलाता है।॥४६॥ इस निराभार आश्रम में जो स्थित है, संभव होने पर उसी से इस आश्रम की दीक्षा लेनी चाहिये और उसी के मुख से प्रणव का भी ग्रहण करना चाहिये।॥४७॥ ऐसे निराभारी के न मिलने पर शिवमन्दिर में अथवा बिल्व वृक्ष के नीचे ईश्वर के शासन के अनुसार

प्रणवे जप्यमानेऽपि सूक्ष्मपञ्चाक्षरात्मनि ।
स्थूलपञ्चाक्षरः शैवो न वर्ज्यो यतिभिः सदा ॥४९॥

दर्शनाचारादिप्रयुक्ता इमे शैवभेदाः

आदेः पूर्वस्य शुद्धस्य तथैवं मार्गवीरयोः ।
सविशेषः शिवाद्वैतः श्रुतीनां सम्मतो मतः ॥५०॥
मिश्रस्य शुद्धाद्वैताख्यो मतस्तु परिकल्पितः ।
सामान्यस्य विशिष्टोऽयं शक्त्याद्यद्वैत एव हि ॥५१॥
आदेर्मार्गस्य वीरस्य प्रेतकर्म न विद्यते ।
दहनं चैव सापिण्ड्यं नैतेषां सम्मते ततः ॥५२॥
पूर्वादीनां तु प्रेतत्वं तत्प्रयुक्तं हि कर्म च ।
विशिष्यते यतस्तेषां न दीक्षा शाम्भवी परा ॥५३॥
आचारभेदमूलास्ते शैवभेदाः समीरिताः ।
प्रधानमेकमेव स्यात् सर्वविद्यासमन्वितम् ॥
निर्गतोपपदं शैवं विदितं मुनिपुङ्गव ॥५४॥
यदागमान्तविश्रान्तशैवदीक्षाभिशोभितम् ।
अङ्गत्रितयसम्बद्धलिङ्गत्रयविराजितम् ॥५५॥

इसका परिग्रह करना चाहिये।॥४८॥ [६]सूक्ष्म पंचाक्षरात्मक प्रणव का जप करते समय भी स्थूल शिव पंचाक्षर मन्त्र का यति कभी भी परित्याग न करे।॥४९॥

आदिशैव, पूर्वशैव, शुद्धशैव, मार्गशैव और वीरशैवों के लिये श्रुति के अनुसार [७]सविशेष शिवाद्वैत मान्य है ।॥५०॥ मिश्रशैव के लिये शुद्धाद्वैत मत परिकल्पित है। सामान्य वीरशैव के लिये शक्तिविशिष्टाद्वैत मान्य है।॥५१॥ आदिशैव, मार्गशैव, और वीरशैव का प्रेतकर्म नहीं किया जाता। इनका दहन और सापिण्ड्य दोनों वर्जित है।॥५२॥ पूर्वशैव आदि का तो प्रेतत्व है और इनके तत्प्रयुक्त सारे कर्म किये जाते हैं। यह विशेषतः इस लिये है कि इनकी श्रेष्ठ शांभवी दीक्षा सम्पन्न नहीं होती।॥५३॥ हे बृहस्पति! तुम्हें यहां मैंने शैवों के भेदों का वर्णन किया है। ये सब भेद आचार भेद के कारण होते हैं। हे मुनिपुंगव! प्रधान स्वरूप तो एक ही है, जो कि सर्वविधा से सुशोभित, किसी भी उपपद से रहित केवल शैव नाम से जाना जाता है।॥५४॥ जो कि आगम के उत्तर भाग में पठित शैव दीक्षा से सुशोभित है, अंगत्रय (स्थूल, सूक्ष्म

---

६. सूक्ष्म और स्थूल पंचाक्षरात्मक प्रणव का स्वरूप यहीं आगे (११.४३-४५) बताया गया है ।
७. सविशेष शिवाद्वैत का अभिप्राय वीरशैव मत में मान्य एक सिद्धान्त से है ।

वर्णाश्रमीयधर्माढ्यं षट्स्थलज्ञानसंयुतम् ।
विशिष्टमष्टावरणैः पञ्चाचाराभिमण्डितम् ॥५६॥
सद्यः पाशक्षयकरं कर्म ज्ञानसमुच्चयम् ।
महेश्वरप्रतिष्ठादिकृत्याचार्यत्वशोभितम् ॥५७॥
अथापीदं तत्र तत्र बहुधैवाभिधीयते ।
तत्तद्गुणसमायोगात्तत्तन्नामाङ्कितं भवेत् ॥५८॥
अनादिसर्गसंचारादनादीदं निगद्यते ।
मतानामिह सर्वेषामाद्यत्वादपि गीष्पते ॥
आदिशैवमिति ख्यातं क्वचिद्वेदविदुत्तम ॥५९॥
मुक्तिमार्गप्रधानत्वाद् मार्गशैवमिति श्रुतम् ।
देवतान्तरसम्बन्धवर्जनाच्छुद्धमित्यपि ॥६०॥
स्मार्तकर्माभिसम्बन्धान्मिश्रमित्यपि च क्वचित् ।
वीरव्रतसमायोगाद्वीरशैवमिति स्मृतम् ॥६१॥

और कारण शरीर) से संबद्ध लिंगत्रय (इष्ट, प्राण और भावलिंग) के साथ विराजमान है।।५५।। जो कि वर्ण और आश्रम के धर्म से अलंकृत है, षट्स्थल के ज्ञान से सुशोभित है, अष्टावरण से विशिष्ट है और पाँच आचारों से मण्डित है ।।५६।। जो कि तत्काल सर्वविध पापों का क्षय करने वाला कर्म और ज्ञान के समुच्चय से प्राप्त होने वाले स्वरूप को जानने वाला सम्पादन के और महेश्वर की प्रतिष्ठा आदि सभी कृत्यों के सम्पादन के निमित्त आचार्य पदवी से सुशोभित हो सकने की योग्यता वाला है ।।५७।। इन सामान्य लक्षणों के होते हुए भी उन उन शास्त्रों में इन शैवों का अनेक रूपों में वर्णन मिलता है। आगे के श्लोकों में बताये गये उन उन गुणों के समावेश के कारण ये शैव अनादि, आदि जैसे विभिन्न नामों से कहे जाते हैं।।५८।। अनादि काल से चली आ रही सृष्टि के साथ यह भी चला आ रहा है, इस लिये यह अनादि है। हे बृहस्पति! यहां विद्यमान सभी मतों के आदि में यह विद्यमान था, अत: हे वेदवेत्ताओं में उत्तम! कहीं कहीं यह आदिशैव के नाम से भी प्रसिद्ध है।।५९।। मुक्ति को देने वाले मार्गों में प्रधान होने से यह मार्गशैव कहलाता है। अन्य देवताओं से संबन्ध को यहां वर्जित माना गया है, अत: इसे शुद्धशैव कहते हैं।।६०।। स्मार्त कर्मों से संबन्ध होने के कारण इसे कहीं मिश्र नाम दिया गया है। वीरव्रत से इसका गहरा संबन्ध होने से यह वीरशैव नाम से भी स्मृत है।।६१।। हे गीष्पते बृहस्पते! इस प्रकार से मैंने तुमको शैव के विविध

इति ते गोष्पते सम्यक् शैवभेदः समीरितः ।
प्रधानमपि शैवं च किमन्यच्छ्रोतुमिच्छिसि ॥६२॥

इति श्रीचन्द्रज्ञानागमे उत्तरभागेऽनन्तरुद्रबृहस्पतिसंवादे
शिवशासने क्रियापादे शैवभेदो नाम दशमः पटलः ॥

प्रकारों का वर्णन किया है और साथ ही प्रधान शैव का लक्षण भी बताया है। अब आगे तम क्या सुनना चाहते हो॥६२॥

इस प्रकार अनन्तरुद्र और बृहस्पति के संवाद के रूप में
प्रस्तुत इस चन्द्रज्ञानागम के उत्तर भाग के क्रिया पाद
का शैवों के भेदों का लक्षण बताने वाला यह
दसवाँ पटल समाप्त हुआ ॥



एकादशः पटलः

बृहस्पतिरुवाच

कङ्कालधर सर्वज्ञ कालकाल कृपानिधे ।
अनन्तरुद्र भगवन् नतोऽस्म्यनुगृहाण माम् ॥१॥
शाम्भवव्रतनिष्ठानां शैवानां प्रयतात्मनाम् ।
आह्निकं श्रोतुमिच्छामि विधानं ब्रूह्यशेषतः ॥२॥

अनन्तरुद्र उवाच

शाम्भवव्रतनिष्ठानामाह्निकम्

ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय नेत्रयोरिष्टलिङ्गकम् ।
स्पर्शयन्नीश्वरं साम्बं ध्यात्वा कार्यं विचार्य च ॥

शौचाचारनिरूपणम्

बहिर्विदिशमाग्नेयीं गच्छेदारादतन्द्रितः ॥३॥
शिवसूत्रं यज्ञसूत्रं मूर्ध्नि विन्यस्य वाससा ।
प्रावृत्य च शिरोऽन्यत्र जलपात्रं निधाय च ॥
विसृज्य चैव विण्मूत्रे शौचं कुर्याद्विधानतः ॥४॥

बृहस्पति प्रश्न करते हैं—

हे कंकालधारी, सर्वज्ञ, काल के भी काल, कृपानिधि भगवान् अनन्तरुद्र! मैं आपके प्रति नतमस्तक हूँ। मेरे ऊपर आप अनुग्रह कीजिये॥१॥ शांभव व्रत का पालन करने वाले, अपने मन को निगृहीत रखने वाले शैवों की प्रतिदिन की दिनचर्या को मैं सुनना चाहता हूँ। इसका पूरा विधान आप मुझे बतावें॥२॥

अनन्तरुद्र उत्तर देते हैं—

ब्राह्म मुहूर्त में उठ कर अपने दोनों नेत्रों में इष्टलिंग का स्पर्श करा कर उमा सहित शिव का ध्यान करे। फिर दिन भर के कर्तव्य कर्मों का निर्धारण कर निरालस्य भाव से घर के बाहर [1]आग्नेयी दिशा में शौच आदि के लिये जाय॥३॥ शिवसूत्र, यज्ञसूत्र सिर पर रख कर उसे वस्त्र के ढक कर एक स्थान पर जलपात्र को रख कर मल और मूत्र का विसर्जन कर शास्त्र के विधान के अनुसार शौच विधि को सम्पन्न करे॥४॥ इसके उपरान्त क्षीर (दूध) वाले वृक्षों की अथवा काँटे वाले वृक्षों की शाखा

---

१. मल-मूत्र विसर्जन के लिये आग्नेयी दिशा में जाने का विधान स्मृति, धर्मशास्त्र, आगम-तन्त्रशास्त्र एवं वास्तुशास्त्र के ग्रन्थों में देखना चाहिये।

ततो दन्तान् धावयेच्च क्षीरिकण्टकिशाखया ।
अलाभे दन्तकाष्ठानां सदाचारसमन्वितः ॥५॥
अपां द्वादशगण्डूषैः कुर्यादास्यविशोधनम् ।
आचम्य चाथ नद्यादौ वारुणस्नानमाचरेत् ॥६॥

वारुणस्नानादिकम्

सोपवीतः शिखां बद्ध्वा प्रविश्य च जलान्तरम् ।
शिवतीर्थं विधायाथ तन्मध्ये स्नानमाचरेत् ॥७॥
शिवब्रह्माङ्गविद्याङ्गैः स्नानं कृत्वा विधानतः ।
पञ्चब्रह्मशिवाङ्गैश्च त्रिः पठेदघमर्षणम् ॥८॥
देवादींस्तर्पयित्वाऽथ शिवतीर्थं तु संहरेत् ।
अथार्द्रवसने त्यक्त्वा बिभृयाद् धौतवाससी ॥९॥

भस्मस्नानादिकम्

मज्जयित्वेष्टलिङ्गं च गृहीत्वा भसितं ततः ।
भस्मस्नानं ततः कुर्यात् सर्वदोषनिवृत्तये ॥१०॥

से [२]दतुअन करे। इसके अभाव में सदाचार से समन्वित व्यक्ति जल के बारह कुल्ले कर अपने मुख की शुद्धि करे। आचमन कर नदी आदि में जलस्नान करे॥६॥

यज्ञोपवीती साधक अपनी शिखा को बाँध कर जल में प्रवेश करे और वहां शिवतीर्थ की भावना कर उसमें स्नान करे॥७॥ शिव, ब्रह्मा और विद्या के अंग-मन्त्रों से विधिपूर्वक स्नान करने के उपरान्त पंचब्रह्म शिव मन्त्रों से तीन बार [३]अघमर्षण करे॥८॥ इसके बाद देवगण, ऋषिगण, पितृगण आदि का तर्पण कर शिवतीर्थ के रूप में भावित उस जलाशय से बाहर निकल कर गीले वस्त्रों का परित्याग कर दे और श्वेत वस्त्र धारण करे, पहने और ओढे॥९॥

इसके उपरान्त पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख हो आसन पर बैठे, तब इष्टलिंग का जलाभिषेक करे। इसके बाद भस्म लेकर सभी दोषों की निवृत्ति के लिये

२. दन्तकाष्ठ के लिये क्षीरी और कण्टकी वृक्षों का और उसके परिमाण आदि का विधान भी उक्त स्थलों पर देखा जा सकता है।

३. ''सर्वैनसामपध्वंसि जप्यं त्रिष्वघमर्षणम्'' (२.७.४७) अमरकोश के इस वचन के अनुसार सभी पापों के शोधन के लिये तीनों सन्ध्याओं में ''आपो हिष्ठा'', ''ऋतं च सत्यं च'' आदि वैदिक अघमर्षण मन्त्रों का जप करते हुए जो प्रार्थना की जाती है, उसे अघमर्षण कहा जाता है। यहां तत्पुरुष आदि पांच ब्रह्ममन्त्रों से यह प्रार्थना की जाती है। धर्मशास्त्र के ग्रन्थों में सभी पापों के शोधक प्रायश्चित्त के रूप में भी इसका वर्णन मिलता है (धर्म. पृ. १०८१ देखिये)।

सर्वाङ्गोद्धूलनं कुर्याच्छुष्केण सितभस्मना ।
सजलेन च तेनाथ सर्वाङ्गमवगुण्ठयेत् ॥११॥
मूलतो मन्त्रितेनाथ सजलेनैव भस्मना ।
बिभृयाच्च त्रिपुण्ड्राणि द्वात्रिंशत्स्थानकेषु हि ॥१२॥

त्रिपुण्ड्रधारणम्

उत्तमाङ्गे ललाटे च कर्णयोर्नेत्रयोर्द्वयोः ।
नासावक्त्रगलेष्वेवमंसद्वितयके तथा ॥१३॥
कूर्परे मणिबन्धे च हृदये पार्श्वयोर्द्वयोः ।
नाभौ गुह्यद्वये चैव ऊर्वोः स्फिग्बिम्बजानुषु ॥१४॥
जङ्घाद्वये च पदयोर्द्वात्रिंशत् स्थानमुत्तमम् ।
धृत्वा चैवं त्रिपुण्ड्राणि रुद्राक्षान् बिभृयात्ततः ॥१५॥

सन्ध्योपासनम्

सन्ध्याद्वयमुपासीत सावित्रीमूलमन्त्रगम् ।
अर्चां निर्वर्तयेत् पश्चादरुणोदयकालिकीम् ॥१६॥
जपित्वाऽथ च सावित्रीं प्रसिद्धां मन्त्रमातरम् ।
उपतिष्ठेन्महादेवं भानुमण्डलमध्यगम् ॥
षडक्षरीं जपेच्चापि समाहितमना यथा ॥१७॥

स्वयं भस्मस्नान करे॥१०॥ सूखी श्वेत भस्म से अपने सारे शरीर का उद्धूलन करे, अर्थात् सिर से पैर तक भस्म से स्नान करे। इसके उपरान्त सजल भस्म का सारे शरीर पर लेप करे॥११॥ मूल (पंचाक्षर) मन्त्र से अभिमन्त्रित सजल भस्म से ही अपने शरीर के ३२ स्थानों पर त्रिपुण्ड्र धारण करे॥१२॥

उत्तमांग (सिर), ललाट, दोनों कान, दोनों नेत्र, दोनों नासिकाएं, मुख, कण्ठ, दोनों कन्धे, दोनों कोहनियां, दोनों कलाइयां, हृदय, दोनों पसलियां, नाभि, लिंग, गुदा, दोनों जंघाएं, दोनों नितम्ब, दोनों घुटने, दोनों पिण्डलियां, दोनों चरण—ये सब मिलकर बत्तीस उत्तम स्थान माने गये हैं। इनमें त्रिपुण्ड्र धारण कर इसके बाद रुद्राक्ष धारण करे॥१३-१५॥

तब सावित्री (गायत्री) मन्त्रगत और मूल (पंचाक्षर) मन्त्र गत दोनों [४]सन्ध्याओं की उपासना करे। इसके उपरान्त अरुणोदय वेला में सम्पन्न होने वाली पूजा करे॥१६॥

---

४. यहां सावित्री पद से वैदिकी और मूल पंचाक्षर मन्त्र से तान्त्रिकी सन्ध्या गृहीत होती है। अभिप्राय यह है कि आह्निककर्ता वैदिक और तान्त्रिक उभयविध पद्धति से सन्ध्या करे। आगे मध्याह्न सन्ध्या का भी यही क्रम समझना चाहिये।

ध्यायेद् देवं च देवीं च प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः ।
स्वगुरुं च पुनर्देवं ततो नामाष्टकं जपेत् ॥१८॥

शिवनामाष्टकम्

शिवो महेश्वरश्चैव रुद्रः शम्भुरुमापतिः ।
संसारवैद्यः सर्वज्ञः परमात्मेति चाष्टकम् ॥१९॥
पश्चात् करौ च प्रक्षाल्य कृत्वा चन्दनचर्चितौ ।
करन्यासं प्रकुर्वीत करशुद्धिपुरस्सरम् ॥२०॥

करन्यासादिकम्

स्थित्युत्पत्तिलयाभिख्यः करन्यासस्त्रिधा मतः ।
गृहस्थानां स्थितिन्यास उत्पत्तिर्ब्रह्मचारिणाम् ॥
यतीनां च वनस्थानां संहृतिन्यास इष्यते ॥२१॥
विभर्तृकायाश्च तथा संहारन्यास उच्यते ।
उत्पत्तिरुक्तः कन्यायाः सुवासिन्याः स्थितिर्भवेत् ॥२२॥

इसके उपरान्त सभी मन्त्रों की जननी प्रसिद्ध गायत्री मन्त्र का जप कर सूर्यमण्डल मध्यवर्ती महादेव का [५]उपस्थान करे और षडक्षरी मन्त्र का सावधान मन से जप करे॥१७॥ पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख होकर भगवान् शंकर और देवी पार्वती का ध्यान करे। तब अपने गुरु और इष्टदेव का ध्यान कर शिव के प्रसिद्ध आठ नामों का जप करे॥१८॥

ये आठ नाम हैं — शिव, महेश्वर, रुद्र, शम्भु, उमापति, संसारवैद्य, सर्वज्ञ और परमात्मा॥१९॥ इसके बाद अपने दोनों हाथों को धोकर उन पर चन्दन लगाकर करशुद्धि [६]कर करन्यास सम्पन्न करे॥२०॥

यह करन्यास [७]उत्पत्ति स्थिति और लय के भेद से तीन प्रकार का होता है। ब्रह्मचारियों के लिये उत्पत्तिन्यास, गृहस्थों के लिये स्थितिन्यास और यतियों एवं वानप्रस्थों के लिये संहृतिन्यास का विधान है॥२१॥ जिसका पति जीवित नहीं है, ऐसी स्त्री के लिये संहृतिन्यास का ही विधान है। उत्पत्तिन्यास कन्या के लिये एवं स्थितिन्यास सुवासिनी के लिये विहित है॥२२॥ [८]अंगुष्ठ से लेकर कनिष्ठा पर्यन्त

---

५. सूर्य या अग्नि के संमुख खड़े होकर मन्त्रपाठ करना उपस्थान कहलाता है।

६. इष्टदेव की पूजा आरंभ करने से पहले आसनशुद्धि, आत्मशुद्धि, करशुद्धि आदि आवश्यक माने गये हैं ।

७. करन्यास के उत्पत्ति, स्थिति और लय नामक त्रिविध प्रकारों का स्वरूप यहां परिशिष्ट में दिया जा रहा है ।

८. परिशिष्ट में इन न्यासों का स्वरूप देखिये ।

अङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तं स्थितिन्यास इति स्मृतः ।
दक्षिणाङ्गुष्ठमारभ्य वामाङ्गुष्ठान्तमेव च ॥
उत्पत्तिन्यास आख्यातो विपरीतस्तु संहृतिः ॥२३॥
वर्णाननुक्रमान्न्यस्येन्नकारादीन् सबिन्दुकान् ।
अङ्गुलीषु शिवं न्यस्य तलयोरपि पृष्ठयोः ॥
अस्त्रन्यासं ततः कुर्याद् दशदिक्ष्वस्त्रमन्त्रतः ॥२४॥

निवृत्त्यादिकलाध्यानम्

पञ्चभूतात्मिकाः पञ्च निवृत्त्यादिकलाः पुनः ।
तत्तच्चिह्नयुताः सम्यक् पञ्चभूताधिपैः सह ॥२५॥
हृत्कण्ठतालुभ्रूमध्यब्रह्मरन्ध्रेषु भावयेत् ।
विद्यां पञ्चाक्षरीं तासां शोधनार्थाय संजपेत् ॥२६॥

विद्यामयो देहः सम्पादनीयः

प्राणवायुं निरुद्ध्याथ गुणसंख्यानुसारतः ।
भूतग्रन्थिं ततश्छिन्द्यादस्त्रेणैवास्त्रमुद्रया ॥२७॥
नाड्या सुषुम्नयाऽऽत्मानं प्रेरितं प्राणवायुना ।
निर्गतं ब्रह्मरन्ध्रेण योजयेच्छिवतेजसा ॥
वायुना च विशोष्यैव देहं कालाग्निना दहेत् ॥२८॥

स्थितिन्यास माना गया है। दक्षिण अंगुष्ठ से लेकर वाम अंगुष्ठ पर्यन्त उत्पत्तिन्यास और इसके विपरीत, अर्थात् वाम अंगुष्ठ से लेकर दक्षिण अंगुष्ठ पर्यन्त संहतिन्यास कहलाता है॥२३॥ न मः शि वा य इन पांच वर्णों का बिन्दु के साथ उच्चारण करते हुए यथाक्रम अंगुष्ठ से लेकर कनिष्ठा पर्यन्त पांच अगुलियों में न्यास करना चाहिये। करतल में और करपृष्ठ में शिव का न्यास करे । इसके उपरान्त दसों दिशाओं में अस्त्र मन्त्र से अस्त्र न्यास करे॥२४॥

इसके उपरान्त पंचभूतात्मक निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति और शान्त्यतीता नामक पाँच कलाओं का उन उन चिह्नों के साथ और पांच भूतों के अधिपतियों के साथ सम्यक् न्यास करे॥२५॥ हृदय, कण्ठ, तालु, भ्रूमध्य और ब्रह्मरन्ध्र—इन पांच स्थानों में इनके शोधन के लिये पंचाक्षरी विद्या का न्यास करे॥२६॥

इसके बाद प्राणायाम द्वारा प्राणवायु का निरोध कर गुणों की संख्या के अनुसार अस्त्र मन्त्र का जप करते हुए और अस्त्र मुद्रा का प्रदर्शन करते हुए भूतों की ग्रन्थियों का छेदन करे॥२७॥ प्राणवायु के द्वारा प्रेरित अपनी आत्मा को सुषुम्ना नाडी की सहायता से ब्रह्मरन्ध्र से निकाल कर शिव के तेज से संयोजित करे। वहां अपने पापमय

अमृतप्लावनं कृत्वा भस्मीभूतस्य तस्य वै ।
ततो विद्यामयं देहं सम्भूतमिति भावयेत् ॥२९॥
ततो विद्यामये तस्मिन् देहे दीपशिखाकृतिम् ।
शिवान्निर्गतमात्मानं ब्रह्मरन्ध्रेण योजयेत् ॥३०॥
अन्तर्देहं प्रविष्टं तं ध्यात्वा हृदयपङ्कजे ।
पुनश्चामृतवर्षेण सिञ्चेद् विद्यामयं वपुः ॥३१॥
पुनः कुर्यात् करन्यासं करशुद्धिपुरस्सरम् ।
देहन्यासं ततः कुर्यादङ्गन्यासं यथाविधि ॥३२॥
वर्णन्यासं ततः कुर्याद्धस्तपादादिसन्धिषु ।
षडङ्गानि ततो न्यस्य दिग्बन्धं च तदाचरेत् ॥३३॥

देह को वायु से सुखाकर कालाग्नि से उसके भस्मीभूत हो जाने की भावना करे॥२८॥ इसके उपरान्त कालाग्नि से भस्मीभूत उस भौतिक शरीर को अमृत से आप्यायित करे। तब ऐसी भावना करे कि अब मुझे यह नया विद्यामय शरीर प्राप्त हुआ है॥२९॥ तब उस विद्यामय शरीर में दीपक की शिखा के समान उज्ज्वल अपनी आत्मा को शिव के तेज से आप्यायित कर पुनः ब्रह्मरन्ध्र मार्ग से अपने शरीर से संयोजित कर दे॥३०॥ अपने देह में प्रविष्ट उस विद्यामय शिवतेज का अपने हृदय में ध्यान करे। इसके उपरान्त पुनः उस विद्यामय शरीर को अमृत की वर्षा से आप्यायित करे॥३१॥ इसके उपरान्त करशुद्धि मन्त्र से हाथों को शुद्ध कर [९]करन्यास, देहन्यास और विधिपूर्वक अंगन्यास भी करे॥३२॥ [१०]वर्णन्यास करने के उपरान्त हस्त, पाद आदि की सन्धियों में [११]शिव

९. करन्यास के साथ देहन्यास और अंगन्यास की विधि को उक्त परिशिष्ट की सहायता से जाना जा सकता है।

१०. वर्णन्यास, अर्थात् मातृकाक्षरन्यास का क्रम वीरशैवाचारप्रदीपिका में इस प्रकार बताया गया है—"अकाराकारौ मूर्ध्नि ललाटे। इकारेकारौ दक्षिणवामनेत्रयोः। उकारोकारौ दक्षिणवामश्रोत्रयोः। ऋकार-ॠकारौ दक्षिणवामकपोलयोः। ऌकार-ॡकारौ दक्षिणवामनासापुटयोः। एकारैकारौ ऊर्ध्वाधरोष्ठयोः। ओकारौकारौ ऊर्ध्वाधोदन्तपङ्क्त्योः। अं अः तालुनोः। कादिपञ्चाक्षराणि दक्षिणहस्तपञ्चाङ्गुलिषु। चादिपञ्चाक्षराणि वामकराङ्गुलिषु। टादिपञ्चाक्षराणि दक्षिणपादाङ्गुलिषु। तादिपञ्चाक्षराणि वामपदाङ्गुलिषु। पकार उदरे। फकारबकारौ दक्षिणवामपार्श्वयोः। भकारः स्कन्धे। मकारो हृदि। यकारसकारान्तान्यक्षराणि त्वगादिसप्तधातुषु। हकार आत्मनि। क्षकारः पूजकानां जन्मादिरिपुविषयकक्रोधे। अनेन प्रकारेण लिङ्गमध्ये इमानि मातृकाक्षराणि स्मरेत्" (पृ० ५६-५७)।

११. षडङ्गन्यास का क्रम वीरशैवाचारप्रदीपिका में इस प्रकार प्रदर्शित है—"ॐ ह्रां हृदयाय। ॐ नं ह्रीं शिरसे स्वाहा। ॐ मं हूं शिखायै वषट्। ॐ शिं ह्रैं कवचाय हुम्। ॐ वां ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ यं ह्रः अस्त्राय फट्" (पृ० ५४-५५)।

एवं समासरूपेण कृत्वा देहात्मशोधनम् ।
शिवभावमुपागम्य शैवपञ्चाक्षरं जपेत् ॥३४॥

न्यासान्तराणि

अथ यस्यास्त्यवसरो नास्ति वा मतिविभ्रमः ।
स विस्तीर्णेन कल्पेन न्यासकर्म समाचरेत् ॥३५॥
तत्राद्यो मातृकान्यासो ब्रह्मन्यासस्ततः परम् ।
तृतीयः प्रणवन्यासो हंसन्यासस्तदुत्तरः ॥
पञ्चमः कथ्यते सद्भिर्न्यासः पञ्चाक्षरात्मकः ॥३६॥
एतेष्वेकमनेकं वा कुर्यात् पूजादिकर्मसु ।
यथा पूर्वोक्तमार्गेण शिवत्वं येन जायते ॥३७॥
नाशिवः शिवमभ्यस्येन्नाशिवः शिवमर्चयेत् ।
नाशिवस्तु शिवं ध्यायेन्नाशिवः शिवमाप्नुयात् ॥३८॥

शैवीं तनुं कृत्वा षडक्षरीं जपेत्

ततः शैवीं तनुं कृत्वा जपेत् साङ्गं षडक्षरीम् ।
ॐकारवदना देवी वायकारभुजद्वयी ॥

के षडंगों का न्यास करके तब आराधक दसों दिशाओं का बन्धन करे॥३३॥ इस तरह से संक्षेप में अपनी देह और आत्मा का शोधन कर शिवभाव को प्राप्त हुआ साधक शैव पंचाक्षर मन्त्र का जप करे॥३४॥

अब यदि किसी के पास विशेष अवसर उपलब्ध है अथवा जिसकी मति विभ्रम में नहीं पड़ी है, अर्थात् बुद्धि निर्मल है, ऐसा व्यक्ति विस्तीर्ण विधान के अनुसार न्यासों का अनुष्ठान करे॥३५॥ इनमें पहला [१२]मातृकान्यास, इसके बाद ब्रह्मन्यास, तीसरा प्रणवन्यास, इसके बाद हंसन्यास और तब पांचवां [१३]पंचाक्षर न्यास सज्जनों के द्वारा उक्त है॥३६॥ पूजा करते समय इनमें से किसी एक का या अनेकों का अनुष्ठान पूर्वोपदिष्ट मार्ग से किया जा सकता है। इनके अनुष्ठान से साधक शिवभाव को प्राप्त कर लेता है॥३७॥ शिवभाव को प्राप्त किये बिना न तो कोई शिवमन्त्र का अभ्यास कर सकता है, न शिव की पूजा कर सकता है, न शिव का ध्यान कर सकता है और न शिव को प्राप्त ही कर सकता है॥३८॥

इसलिये अपने शरीर को शिवमय बना कर सांग षडक्षरी मन्त्र का जप करे।

१२. मातृकान्यास, वर्णन्यास अथवा मातृकाक्षरन्यास से अभिन्न है। इसका क्रम ऊपर बता दिया गया है।

१३. पंचाक्षर मन्त्र की करन्यास, देहन्यास और अङ्गन्यास की विधि परिशिष्ट में देखिये ।

शिकारदेहमध्या च नमःकारपदद्वयी ॥३९॥
पञ्चाक्षरी परा विद्या सतारा लिङ्गरूपिणी ।
अधिकारयुजां तारे ध्येया सा मन्त्ररूपिणी ॥४०॥
तत्रानधिकृतानां तु मन्त्रं वक्ष्यामि संशृणु ।
शिकारवदना देवी वायकारभुजद्वयी ॥४१॥
विसर्गदेहमध्या च नमकारपदद्वयी ।
पञ्चाक्षरी परा विद्या वितारा लिङ्गरूपिणी ॥
तारेऽधिकाररहितैर्ध्येया सेयं भवेद् द्विजैः ॥४२॥

स्थूलसूक्ष्मपञ्चाक्षरः

अउमाश्चैव नादश्च कला चेत्यंशपञ्चकम् ।
मिलित्वा प्रणवो जज्ञे सूक्ष्मपञ्चाक्षरात्मकः ॥४३॥
तथा नमः शिवायेति स्थूलपञ्चाक्षरो भवेत् ।
प्रतिपाद्यो महत्त्वेऽपि नानयोर्विद्यते भिदा ॥४४॥
सूक्ष्मं मूलं भवेदस्य स्थूलं विवरणं मतम् ।
तारेऽधिकारयुक्तस्तु तारयुक्तं मनुं जपेत् ॥
जपन्ननधिकारी तु तारं गच्छेदधोगतिम् ॥४५॥

यह देवी षडक्षरी विद्या ॐकार मुख वाली, वाकार और यकार रूपी दो भुजाओं वाली, शिकार रूपी देहमध्य वाली और नमःकार रूपी दो पैरों वाली है।॥३९॥ यह पंचाक्षरी परा [१४]विद्या तार, अर्थात् प्रणव के साथ रहने पर साक्षात् लिंगस्वरूपिणी मानी गई है। जो इस प्रणव के अधिकारी हैं, उनके लिये यह मन्त्र के रूप में भ्रूमध्य में ध्येय मानी गई है।॥४०॥ जिनका प्रणव में अधिकार नहीं है, उनके लिये मन्त्र का दूसरा प्रकार बताऊँगा। यह देवी शिकार मुख वाली वाकार और यकार रूपी दो भुजाओं वाली, विसर्ग रूपी देहमध्य वाली, नकार और मकार रूपी दो चरणों वाली है। यह परा विद्या पंचाक्षरी तार (प्रणव) से रहित होती हुई भी लिंगस्वरूपिणी है। हे द्विज बृहस्पति! इसका ध्यान वे करते हैं, जिनका प्रणव में अधिकार नहीं है।॥४१-४२॥

प्रणव के अ उ म् नाद और कला—ये पाँच अंश होते हैं। इन सबके मिलने से पांच अक्षर वाला सूक्ष्म प्रणव बनता है।॥४३॥ इसी तरह से नमः शिवाय यह स्थूल पंचाक्षर मन्त्र है। स्थूल और सूक्ष्म का अन्तर होने पर भी इनके प्रतिपाद्य

---

१४. सिद्धान्तशिखामणि (८.२३) में पंचाक्षर महामन्त्र के मूल, विद्या, शिव सूत्र, पंचाक्षर—ये सब पर्यायवाची शब्द माने गये हैं।

तारेण तुल्यसारोऽपि सोऽयं पञ्चाक्षरो मनुः ।
शासनाद् देवदेवस्य लोकानुग्रहकाङ्क्षिणः ॥
आसीज्जप्यस्तु सर्वेषामाज्ञा शम्भोर्गरीयसी ॥४६॥

अग्निकार्यविधानम्

श्रीरुद्रादींश्च जप्त्वाऽथ वह्न्यगारं प्रविश्य तु ।
होमं शिवाग्नौ कुर्वीत शैवसंस्कारसंस्कृते ॥४७॥
स्थालीपाके प्रवृत्ते तु गृह्याग्निं पुरतोऽपि वा ।
शैवं सम्पाद्य संस्कारैस्तत्र निर्वर्तयेत् क्रियाः ॥४८॥
वैतानिकं च विधिना शैवं सम्पादयेन्मखी ।
नित्यमौपासनं कर्म श्रौतं तत्रैव चेष्यते ॥
वैश्वदेवादिगार्ह्याणि गृह्यशैवे समाचरेत् ॥४९॥

लिङ्गतत्त्व में किसी प्रकार का भेद नहीं रहता।।४४।। इनमें सूक्ष्म स्वरूप मूलभूत है और स्थूल स्वरूप उसका विवरण है। सतार (सप्रणव) मन्त्र का अधिकारी ही उसका जप करे। यदि अनधिकारी प्रणवयुक्त पंचाक्षरी मन्त्र का जप करता है, तो वह अधोगति को प्राप्त करता है।।४५।। बिना प्रणव का पंचाक्षरी मन्त्र भी उसी सामर्थ्य से युक्त है। भगवान् देवदेव महेश्वर ने सारे जगत् पर अनुग्रह करने की दृष्टि से इसका उपदेश किया है। इसलिये इसका जप सभी कोई कर सकते हैं, क्योंकि इस विषय में शंभु की आज्ञा ही सबसे ऊपर मानी जाती है।।४६।।

पंचाक्षरी अथवा षडक्षरी शिवमन्त्र का जप करने के बाद श्री रुद्राध्याय आदि का पाठ करके यज्ञशाला में जाकर शैव संस्कारों से संस्कृत शिवाग्नि में हवन करे।।४७।। रसाई बनाते समय भी [१५]गृह्य अग्नि को चारों तरफ से संस्कार द्वारा शिवाग्नि बना कर ही उसमें सारी क्रियाएं सम्पन्न करे।।४८।। इसी प्रकार शिवयाजी [१६]वैतानिक अग्नि को भी पहले शिवाग्नि के संस्कारों से संस्कृत करे। इसी में नित्य औपासन तथा

---

१५. आवसथ्य, गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिणाग्नि और सभ्य नामक पांच अग्नियों में से आवसथ्य स्मार्ताग्नि है और शेष श्रौताग्नियां। आवसथ्य अग्नि को ही गृह्याग्नि कहते हैं। गृहस्थ स्थालीपाक, अर्थात् भगवान् का भोग लगाने तथा अन्य धार्मिक कृत्य सम्पादन के प्रसंग में रसोई इसी अग्नि में पकाता है।

१६. ''वैतानास्त्वां वह्नयः पावयन्तु'' (४.७) कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तल नाटक में ऊपर प्रदर्शित श्रौत अग्नियों के लिये वैतान शब्द का प्रयोग किया गया है। औपासन होम, वैश्वदेव, पार्वण, अष्टकाश्राद्ध, मासिकश्राद्ध, श्रवणाकर्म और शूलगव ये सात पाकसंस्थाएं हैं। इनका अनुष्ठान गृहस्थ अग्निहोत्री स्मार्ताग्नि पर करता है। इनका विवरण 'कात्यायनयज्ञपद्धति विमर्श' (पृ० ५९-६१) में देखा जा सकता है। यहां शिवाग्नि में इनका विधान निर्दिष्ट है।

समिधादिप्रमाणम्

समिधो होमयोग्यास्तु वक्ष्यामि शृणु गीष्पते ।
पालाशखादिराश्वत्थशम्युदुम्बरजा समित् ॥
अपामार्गकदूर्वाश्च कुशश्चेत्यपरे विदुः ॥५०॥
सत्वचः समिधः कार्या ऋजुश्लक्ष्णसमास्तथा ।
शस्ता दशाङ्गुलास्तास्तु द्वादशाङ्गुलकास्तथा ॥५१॥
आर्द्राः शुष्काः समच्छेद्यास्तर्जन्यङ्गुलवर्तुलाः ।
अपातिताश्चाऽद्विशाखाः कृमिदोषविवर्जिताः ॥५२॥

अन्य श्रौत कर्म किये जाते हैं। वैश्वदेव आदि गृह्याग्नि में सम्पन्न होने वाले कर्मों को भी गृह्य शैवाग्नि में सम्पादित करे॥४९॥

हे बृहस्पति! अब मैं होम के योग्य समिधाओं को बताऊँगा, तुम सुनो। पलाश, खदिर, अश्वत्थ, शमी और उदुम्बर (गूलर) ये सब होम-योग्य समिधाएं मानी जाती हैं। कुछ आचार्यों के मत में अपामार्ग, दूर्वा और कुशा की भी इनमें गणना की जाती है॥५०॥ समिधाएं त्वचा (छाल) से युक्त रहनी चाहिये। ये सीधी, चिकनी और समान आकृति की होनी चाहिये। दस अंगुल की तथा बारह अंगुल की समिधा प्रशस्त मानी जाती है॥५१॥ आधी गीली, आधी सूखी, समान रूप से काटी गई, तर्जनी अंगुली के बराबर गोल आकार की, काट कर न गिराई गई, दूसरी शाखा से रहित और कीड़ों से न खाई गई समिधा उत्तम मानी जाती है॥५२॥ [१७]समिधा, पवित्र और वेद (कुशमुष्टि) ये तीनों प्रादेश प्रमाण के होने चाहिये। [१८]इध्म इससे दुगुना तथा

---

१७. हवन के निमित्त पलाश या अन्य यज्ञीय काष्ठ को समित् या ***समिधा*** कहते हैं। यह अंगुली की मोटाई से अधिक मोटी नहीं होती। यह लम्बाई प्रादेश प्रमाण (एक बित्ता) होती है। ***पवित्र*** कुशा का बनाया जाता है। प्रथम पूर्वाग्र दो कुशा लेकर उन पर तीन कुशा उदगग्र रखी जाती है। नीचे की कुशा से तीनों कुशाओं को दक्षिणावर्त करके सब कुशाओं को बांध दिया जाता है। पवित्र निर्माण की यही विधि है। धार्मिक कृत्यों के अवसर पर दोनों हाथों की अनामिकाओं में अंगूठी के समान इनको धारण किया जाता है। **वेद** बनाने के लिये पचास कुशाओं को मूल से बांधकर उनके तीन भाग किये जाते हैं। तब इनको वेणी की तरह गूँथते हैं। यज्ञ संबन्धी क्रियाओं को करते समय इसको बायें हाथ में रखने का विधान है।

१८. अमरकोष (२.४.१३) में यद्यपि इध्म, समित् आदि शब्दों का पर्यायवाची शब्दों के रूप में उल्लेख है, किन्तु प्रस्तुत स्थल पर परिमाण के भेद से उनका भेद प्रदर्शित है। आवहनीय अग्नि के पश्चिम, दक्षिण और उत्तर में जो पलाश की समिधा रखी जाती है, वह परिधि है। यह बाहुमात्र लम्बी होती है। गार्हपत्य अग्निकुण्ड के चारों ओर बारह अंगुल ऊंची और चार अंगुल चौड़ी जो भित्ति बनाई जाती है, उसको भी परिधि कहते हैं, किन्तु उसका यहां प्रसंग नहीं है।

समित्पवित्रं वेदश्च त्रयं प्रादेशसम्मितम् ।
इध्मस्तु द्विगुणः कार्यस्त्रिगुणः परिधिः स्मृतः ॥
स्मार्ते प्रादेश इध्मो वा द्विगुणः परिधिः स्मृतः ॥५३॥

अग्नेरङ्गानि

अग्नेरङ्गानि वक्ष्यामि न होतव्यं च येषु वै ।
अग्निकर्णे हुते रोगो नासिकायां मनःक्षयः ॥५४॥
चक्षुषोर्निधनं प्रोक्तं केशे दारिद्यकृद् भवेत् ।
हुतं शिरसि पापं स्यात् तस्माज्जिह्वासु होमयेत् ॥५५॥
यत्र काष्ठं तु तच्छ्रोत्रं यत्र धूमस्तु नासिका ।
यत्राल्पज्वलनं नेत्रं यत्र भस्मानि तच्छिरः ॥
यत्रैव ज्वलितो वह्निर्जिह्वा तत्रैव कीर्तिता ॥५६॥
अग्निकार्यं विधायैवं कर्तव्यमभिवादनम् ।
आद्यमष्टांशकं त्वेभिः कृत्यैरह्नः समापयेत् ॥५७॥

अह्नो द्वितीयभागकर्तव्यानि

भागे द्वितीये निगमानभ्यसेदागमानपि ।
अध्यापयेच्च शास्त्राणि समिधादीनि चाहरेत् ॥
पुष्पाणि विल्वपत्राणि श्रीगन्धप्रमुखानि च ॥५८॥

परिधि तिगुनी होनी चाहिये। अथवा स्मार्त कर्मों में इध्म प्रादेश प्रमाण की और परिधि इससे दुगुनी होती है।।५३।।

अग्नि के उन अंगों को मैं बता रहा हूँ, जिनमें आहुति नहीं देनी चाहिये। अग्नि के कान में आहुति देने से रोग होता है और नासिका में देने से मन उचट जाता है।।५४।। चक्षु में आहुति देने से मृत्यु, केश में दारिद्र्य और शिर में आहुति देने से पाप होता है। अत: अग्नि की जिह्वा में आहुति दे।।५५।। यहां न जलता हुआ काष्ठ कान, सधूम स्थल नासिका, धीरे जलता हुआ स्थल नेत्र, कोरी भस्म सिर कहलाती है। जहां अग्नि पूरी गति से प्रज्वलित रहती है, वही उसकी जिह्वा है।।५६।। इस प्रकार अग्निकार्य सम्पन्न कर उसका अभिवादन करना चाहिये। इस तरह इन कृत्यों को करते हुए दिन का [१९]पहला भाग बिताना चाहिये।।५७।।

दिन के दूसरे भाग में निगमों और आगमों का अभ्यास करना चाहिये, शास्त्रों को पढाना चाहिये तथा समिधा आदि के साथ पुष्प, विल्वपत्र, श्रीगन्ध आदि पूजा

---

१९. दिन के पहले भाग का अभिप्राय छः भागों में बाँट गये दिन की प्रथम अरुणोदय वेला से है।

तृतीयचतुर्थभागकृत्यानि

अर्थसिद्ध्यै च कुर्वीत यत्नं भागे तृतीयके ।
चतुर्थे च तथा भागे मध्याह्नस्नानमाचरेत् ॥५९॥
भस्मस्नानं विधायाथ त्रिपुण्ड्राणि यथाविधि ।
यथास्थानं च रुद्राक्षान् धृत्वा च तदनन्तरम् ॥६०॥
सन्ध्याद्वयमुपासीत सावित्रीमूलमन्त्रगम् ।
कर्तव्याः पञ्चयज्ञाश्च गृहिणा स्वहितैषिणा ॥६१॥
ततो माध्याह्निकी पूजा गुर्वी वा महती लघुः ।
कर्तव्या तु यथाशक्ति भक्तिसंसक्तचेतसा ॥६२॥

षट्सु कालेष्विष्टलिङ्गाराधनम्

षट्सु कालेषु सम्पूज्यं त्रिसन्ध्यमथवा पुनः ।
इष्टलिङ्गं महेशस्य सर्वानिष्टनिषूदनम् ॥६३॥

की और हवन की सामग्री जुटाना चाहिये॥५८॥

दिन के तीसरे भाग में अर्थ की प्राप्ति के लिये उद्यम करना चाहिये और चतुर्थ भाग में मध्याह्न स्नान करना चाहिये॥५९॥ अब भस्मस्नान करके यथाविधि त्रिपुण्ड्र और यथास्थान रुद्राक्ष धारण करे। रुद्राक्ष के धारण करने के बाद दोनों [२०]सन्ध्याओं की उपासना सावित्री (गायत्री) और मूल (पंचाक्षर) मन्त्र के जप के साथ करे। अपना हित चाहने वाले गृहस्थ को [२१]पंचयज्ञों का भी अनुष्ठान करना चाहिये॥६०-६१॥ इसके बाद गुर्वी, महती और लघ्वी में से कोई एक माध्याह्निकी पूजा शक्ति के अनुसार भक्तिभाव से भरे मन से करनी चाहिये॥६२॥

[२२]छः कालों में अथवा फिर तीन सन्ध्याओं में भगवान् महेश्वर के स्वरूपभूत तथा सभी अनिष्टों को दूर करने वाले इष्टलिंग का पूजन करना चाहिये॥६३॥ अरुणोदय की वेला में , सूर्योदय के समय, [२३]संगव काल में, मध्याह्न में, सायंकाल और अर्धरात्रि

---

२०. ऊपर की चौथी टिप्पणी देखिये ।

२१. मनुस्मृति (३।७०-७२) के अनुसार ब्रह्मयज्ञ (स्वाध्याय), पितृयज्ञ (तर्पण-श्राद्ध), देवयज्ञ (होम), भूतयज्ञ (बलि-वैश्वदेव) और नृयज्ञ (अतिथिपूजन) — ये पंचयज्ञ के नाम से प्रसिद्ध हैं। सिद्धान्तशिखामणि (९.२१-२५) आदि वीरशैव मत के ग्रन्थों में तप, कर्म, जप, ध्यान और ज्ञान की पंचविध शिवयज्ञ के रूप में मान्यता है।

२२. दशम पटल की तीसरी टिप्पणी देखिये। परमरहस्य में मन्मथ स्वामीजी छ बार इष्टलिंग की पूजा का विधान करते हैं। वहां भी ये ही षट्काल गृहीत होंगे।

२३. संगव काल का परिचय भी दशम पटल की ३री टिप्पणी में दिया गया है।

अरुणस्योदये भानोरुदये संगवे तथा ।
मध्याह्ने च तथा सायमर्धरात्रौ बृहस्पते ॥
षट्कालमर्चनीयं स्याच्छिवलिङ्गमनामयम् ॥६४॥

अवसरा पूजा

अभोजने त्ववसरा विधेया ह्यन्यथा परा ।
लघुर्गुरुर्वा महती पूजा शक्त्यनुसारतः ॥६५॥
पण्डितो वाऽथवा मूर्खः प्रियो वा द्वेष्य एव वा ।
सम्प्राप्तो यस्तु पूजान्ते स वै शम्भुर्न संशयः ॥६६॥
माहेश्वरं हि सद्भक्त्या पूजयेद् गृहमागतम् ।
जङ्गमं च समाराध्य प्रसादमुपभुज्य च ॥६७॥
सुखमास्थाय निश्चिन्तस्तदन्नं परिणामयन् ।
स्तोत्राणि च महेशस्य पुराणानि पठेत् पुनः ॥
आसायमथ कुर्वीत यत्नं पोष्यार्थसिद्धये ॥६८॥

सायंकृत्यानि

सायं तु वारुणं स्नानं निर्वर्त्याग्नेयमेव वा ।
उपास्य पश्चिमे सन्ध्ये वह्निकार्यं समाप्य च ॥
वैश्वदेवं विधायाथ रात्रिपूजां समाचरेत् ॥६९॥

में—इन्हीं छः कालों में सभी आपदाओं को दूर करने वाले शिवलिंग का पूजन करना चाहिये॥६४॥

अवसरा पूजा [२४]बिना भोजन के की जाती है। इसके अतिरिक्त अन्य लघ्वी, गुर्वी और महती पूजा अपनी शक्ति के अनुसार करनी चाहिये॥६५॥ पंडित हो अथवा मूर्ख, प्रिय हो या अप्रिय (द्वेष्य=शत्रु), जो कोई भी पूजा के अन्त में आ जाता है, वह साक्षात् शंभु है, इसमें कोई संशय नहीं रखना चाहिये॥६६॥ घर पर आये माहेश्वर अथवा जंगम की भक्तिभाव से पूजा करनी चाहिये और उसके भोजन कर लेने के उपरान्त ही स्वयं प्रसाद ग्रहण करना चाहिये॥६७॥ इसके बाद निश्चिन्त होकर आराम से बैठे, जिससे कि खाया हुआ अन्न पच सके। इसके साथ भगवान् शिव के स्तोत्रों का पाठ और पुराणवाचन भी चलता रहे। इसके उपरान्त सायंकाल पर्यन्त अपने परिवार की सुख-सुविधा के लिये अर्थोपार्जन का यत्न करना चाहिये॥६८॥

सायंकाल जलस्नान (वारुण) अथवा भस्मस्नान (आग्नेय) करके पश्चिम (सायंकाल) सावित्री मन्त्र से और पंचीक्षर मन्त्र से संपन्न होनेवाली दोनों [२५]सन्ध्याओं

---

२४. अवसरा पूजा का अन्यत्र भी उल्लेख मिलता है। वहां इस परिभाषा के अनुसार ही उसका अर्थ ग्रहण करना चाहिये।

२५. ऊपर की चौथी टिप्पणी देखिये।

अतिथिं च समाराध्य प्रसादमुपभुज्य च ।
पठन् स्तोत्राणि वै शम्भोस्तदन्नं परिणामयन् ॥७०॥

शम्भुं ध्यायन् सुखं शयीत

अधिशय्याऽभिरुचितां शय्यां शम्भुं शुचिः स्मरन् ।
ध्यायन् शयीत निश्चिन्तस्ततो निद्रासुखं व्रजेत् ॥७१॥
शाम्भवानामनुष्ठेयो धर्मस्ते विनिबोधितः ।
एवं समाचरन् मर्त्यो मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥७२॥
नास्तिक्यादथ बालिश्याद् यो धर्मं न निषेवते ।
स गर्हामिह सम्प्राप्य हीनयोनिषु जायते ॥७३॥

इति श्रीचन्द्रज्ञानागमे उत्तरभागेऽनन्तरुद्रबृहस्पतिसंवादे शिवशासने क्रियापादे आह्निकविधिर्नाम एकादशः पटलः ॥११॥

की उपासना करें । वह्निकार्य (हविर्दान) और [२६]वैश्वदेव विधि को सम्पन्न कर रात्रिपूजन करना चाहिये॥६९॥ आगत अतिथि का सत्कार कर, प्रसाद ग्रहण कर, भगवान् शिव के स्तोत्रों का पाठ करते हुए अन्न को पचाना चाहिये॥७०॥

मनोनुकूल शय्या पर विश्राम करते हुए पवित्र मन से भगवान् शिव का स्मरण और ध्यान करते हुए निश्चिन्त होकर सो जाना चाहिये, जिससे कि सुखपूर्वक निद्रा आ सके॥७१॥ शिवभक्तों के अनुष्ठान योग्य धर्म का यह मैंने तुम्हें उपदेश किया है। इसके अनुसार आचरण करने वाला मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है॥७२॥ नास्तिकता अथवा मूर्खता के कारण जो व्यक्ति इस शिवधर्म का अनुष्ठान नहीं करता, वह इस लोक में निन्दा का पात्र बन कर हीन योनि में जन्म लेता है॥७३॥

इस प्रकार अनन्तरुद्र और बृहस्पति के संवाद के रूप में प्रस्तुत इस चन्द्रज्ञानागम नामक शैवशास्त्र के उत्तर भाग के क्रियापाद का आह्निक विधि का निरूपण करने वाला यह ग्यारहवां पटल समाप्त हुआ॥

---

२६. ऊपर की १५-१६ संख्या की टिप्पणियां देखिये । प्रातःकालीन आह्निक कृत्य और औपासन होम करके वैश्वदेव किया जाता है। इस अनुष्ठान में स्मार्ताग्नि (गृह्याग्नि) पर ओदन की आहुति दी जाती है और समस्त देवों के निमित्त आहुतियां और पितरों के लिये बलि दी जाती है ।

* * *

द्वादशः पटलः

बृहस्पतिरुवाच

भगवन् सर्वधर्मज्ञ सर्वभूतहितेरत ।
शाम्भवानां मुमुक्षूणां शम्भुपादाब्जसेविनाम् ॥१॥
वर्णाश्रमोचिता धर्माः कथमावश्यका विभो ।
शाम्भवव्रतमेवोक्तं परमं मुक्तिसाधनम् ॥२॥
सत्येवं विविधैर्धर्मैर्ज्ञानप्रत्यूहकारिभिः ।
भक्तानां देवदेवस्य किं फलं समनुष्ठितैः ॥३॥

अनन्तरुद्र उवाच

गीष्पते ते प्रवक्ष्यामि सावधानमनाः शृणु ।
इदं रहस्यं परमं परं सन्दिहते बुधाः ॥४॥

ज्ञानकर्मसमुच्चयः

ज्ञानं हि परमेशस्य गदितं मुक्तिदं मुने ।
तत् कर्मसहितं प्रोक्तं मुक्तिदानक्षमं त्विति ॥५॥
[1]अपश्यन्नन्धको दग्धः पश्यन् दहति पङ्गुलः ।
अन्धपङ्गुवदन्योन्यसापेक्षे ज्ञानकर्मणी ॥६॥

बृहस्पति प्रश्न करते हैं—

सभी धर्मों को जानने वाले, सभी प्राणियों के कल्याण में लगे हुए हे भगवन् अनन्तरुद्र! शम्भु के चरणकमलों की सेवा में रत शांभव मत के अनुयायी मुमुक्षुओं के लिये वर्णाश्रम धर्मों के पालन की क्या आवश्यकता है? हे विभो! आपने तो शांभव व्रत को ही सर्वश्रेष्ठ मुक्ति का साधन माना है॥१-२॥ ऐसी स्थिति में ज्ञान मार्ग में विघ्न उत्पन्न करने वाले इन विविध धर्मों के अनुष्ठान से भगवान् देवदेव शंकर के भक्तों को नया क्या फल मिलने वाला है॥३॥

अनन्तरुद्र उत्तर देते हैं—

हे बृहस्पते! तुम्हारे इस प्रश्न का जो उत्तर दूँगा, उसे तुम सावधानी से सुनो। यह परम रहस्य की बात है। इस तरह का सन्देह बुद्धिमानों को भी होता है॥४॥

हे मुने! परमेश्वर का ज्ञान ही मुक्ति का कारण माना गया है, किन्तु कर्मसहित ज्ञान ही मुक्ति को देने में समर्थ है, इस बात को मन में बैठा लेना चाहिये॥५॥ अन्धा व्यक्ति न देख पाने के कारण और पंगु (लंगड़ा) व्यक्ति देखते हुए भी न चल पाने

---

१. यह श्लोकार्ध सिद्धान्तशिखामणि (१६। ११) में भी उपलब्ध है।

कर्म वैदिकमप्येके मन्यन्ते बन्धकं जनाः ।
तत्तथा ज्ञानरहितं मुक्तिदं ज्ञानसंयुतम् ॥७॥
यदपीश्वरनिध्याननिष्ठाविवशचेतसः ।
न कर्मणा विनिर्बन्धो विद्यते परमार्थतः ॥८॥

कर्म नैव सन्त्याज्यम्

तदपीश्वरनिध्याननिष्ठाभ्यासपरस्य च ।
अविस्मृतप्रपञ्चस्य साधकस्य हितैषिणः ॥
न भवेत् कर्म सन्त्याज्यं वर्णाश्रमनियन्त्रितम् ॥९॥
अनर्पितं यदीशाय यदज्ञानविचेष्टितम् ।
फलाभिसन्धिसहितं यत्तद् बन्धकरं मतम् ॥१०॥
अर्पितं यन्महेशाय यच्च ज्ञानसमन्वितम् ।
फलाभिसन्धिरहितं यत्तन्मुक्तिकरं मतम् ॥११॥
न कर्मणामनारम्भो मुक्त्यै स्यान्मुनिपुङ्गव ।
बुद्ध्या यः कर्मसन्त्यागः स दोषाय भवेद् ध्रुवम् ॥
जहाति कर्म ध्यानस्थं सुसहस्तस्थपुष्पवत् ॥१२॥

के कारण जल मरता है। अतः अपने बचाव के लिये पंगु व्यक्ति अन्धे के कन्धे पर चढ कर उसकी लकड़ी को पकड़ कर, रास्ता दिखा कर परस्पर एक दूसरे को बचा लेते हैं, उसी तरह से ज्ञान और कर्म भी एक दूसरे के सहायक होकर मुक्ति के साधन बन जाते हैं॥६॥ कुछ आचार्यों के मत से वैदिक कर्म भी बन्धन के कारण माने गये है, किन्तु ये कर्म ज्ञानरहित होने से ही बन्धन का कारण बनते हैं, ज्ञानसंयुक्त कर्म तो मुक्ति को देने वाले हैं॥७॥ ईश्वर का निरन्तर ध्यान करने से जब भगवान् में ही मन रम जाता है, तब उस परिस्थिति में वास्तव में कर्म बन्धन का कारण कभी नहीं बन सकता॥८॥

ऐसी परिस्थिति में ईश्वर का निरन्तर ध्यान करने का अभ्यास करने वाले, अपने हित में लगे साधक के लिये तब तक वर्णाश्रम धर्मों का त्याग करना उचित नहीं है, जब तक कि वह संसार को भूल नहीं जाता॥९॥ भगवान् के प्रति जो समर्पित नहीं है, जो अज्ञान के कारण अनायास सम्पन्न होता रहता है और जो कर्म किसी फल की कामना से किया जाता है, वही कर्म बन्धन का कारण माना गया है॥१०॥ जो कर्म भगवान् के प्रति समर्पित है, समझ बूझकर किया गया है, जिसमें फल की कोई आकांक्षा छिपी हुई नहीं है, वही कर्म मुक्तिदायक माना गया है॥११॥ हे मुनिपुंगव! बिना कर्म किये मुक्ति नहीं मिल सकती। जानबूझ कर जो व्यक्ति विहित कर्मों का

न यावल्लयमाप्नोति चित्तं शम्भौ परात्मनि ।
न तावत् कर्म संत्यक्तुं युज्यते सुरसन्नुत ॥१३॥
तस्माद् धीकुशलैर्धर्मः स्वस्ववर्णाश्रमोचितः ।
सादरं समनुष्ठेयस्त्वन्यथा पतति ध्रुवम् ॥१४॥
त्यक्तवर्णाश्रमाचारस्त्वसिद्धज्ञानवैभवः ।
पतत्येव न सन्देहश्छिन्नस्वाधारशाखिवत् ॥१५॥
अतो वर्णाश्रमाचारो निगमागमचोदितः ।
अवश्यं समनुष्ठेयः सततं भक्तितत्परैः ॥१६॥

इति श्रीचन्द्रज्ञानागमे उत्तरभागेऽनन्तरुद्रबृहस्पतिसंवादे शिवशासने क्रियापादे वर्णाश्रमधर्मावश्यकताकथनं नाम द्वादशः पटलः ॥१२॥

अनुष्ठान नहीं करता, तो वह निश्चित ही दोष का भागी होता है। हाथ में लिया हुआ पुष्प व्यक्ति के सो जाने पर जैसे उसके हाथ से अपने आप छूट जाता है, वैसे ही ध्यानस्थ (अन्तर्मुख) साधक के कर्म अपने आप छूट जाते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि व्यक्ति को कर्म का परित्याग जान बूझ कर नहीं करना चाहिये। वे तो ध्यानस्थ व्यक्ति की अन्तर्मुख अवस्था में अपने आप छूट जाते हैं॥१२॥ शिवरूपी परमात्मा में जब तक साधक का चित्त लीन नहीं हो जाता, तब तक हे सुरपूजित बृहस्पते! कर्म का परित्याग करना उचित नहीं है॥१३॥ इस लिये कुशल बुद्धिवाले मनुष्य को चाहिये कि वह अपने अपने वर्ण और आश्रम के लिये विहित कर्मों का अनुष्ठान आदरपूर्वक करता रहे। अन्यथा उसका पतन निश्चित है॥१४॥ जिसने वर्णाश्रम के आचारों का पालन करना छोड़ दिया है और जिसने अभी ज्ञान की सम्पत्ति भी अर्जित नहीं की है, उस व्यक्ति का उसी प्रकार पतन हो जाता है, जैसे कि आधार (जड़) के कट जाने पर वृक्ष धराशायी हो जाता है॥१५॥ इस लिये [२]निगम और आगम के द्वारा उपदिष्ट वर्णाश्रम के आचारों का पालन भक्तिभावपूर्वक सबको सदा करते रहना चाहिये॥१६॥

इस प्रकार अनन्तरुद्र और बृहस्पति के संवाद के रूप में प्रस्तुत इस चन्द्रज्ञानागम के उत्तर भाग के क्रियापाद का वर्णाश्रम धर्म की आवश्यकता का कथन करने वाला यह बारहवां पटल समाप्त हुआ॥

***

---

२. निगम शब्द यहां वैदिक वाङ्मय का बोधक है। निगम और आगम शब्द की विशेष व्याख्या के लिये "निगमागम संस्कृति" (पृ. २१-२२, ३८,९९) नामक ग्रन्थ देखिये।

चर्यापादे प्रथमः पटलः

बृहस्पतिरुवाच

अनन्तविद्यानिलय विलसत्करुणालय ।
अनन्तरुद्र भगवन् प्रणतोऽस्मि जगद्गुरो ॥१॥
शाम्भवव्रतमाहात्म्यमागमान्तगतं श्रुतम् ।
शाम्भवव्रतिनां धर्माः क्रियापादे ह्यशेषतः ॥
श्रीमन्मुखादधिगता मयाऽवहितचेतसा ॥२॥
अथैतद्व्रतनिष्ठानां द्विजानां लिङ्गधारिणाम् ।
कर्तव्यमखिलं ब्रूहि विधानं त्वौर्ध्वदेहिकम् ॥३॥

अनन्तरुद्र उवाच

गीष्पते ते प्रवक्ष्यामि शृणुष्वैकमना मुने ।
शाम्भवव्रतनिष्ठानामवसानविधिं परम् ॥४॥
येनैव संस्कृतो मुक्तिं व्रती गच्छेदसंभवम् ।
येनैव संस्कृतो मुच्येद् धर्महीनोऽपि तत्क्षणात् ॥५॥

शिवमेधनिरूपणम्

शाम्भवव्रतनिष्ठानामिष्टलिङ्गैकसेविनाम् ।
देहावसाने कर्तव्यः शिवमेधविधिर्महान् ॥६॥

बृहस्पति प्रश्न करते हैं—

हे जगद्गुरु भगवान् अनन्तरुद्र! आप अनन्त विद्याओं के खजाने हैं, आप अपनी अनन्त करुणा से अलंकृत हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ॥१॥ चन्द्रज्ञानागम के उत्तर भाग के क्रियापाद में वर्णित शांभव व्रत की महिमा को और शांभव मत के अनुयायियों के द्वारा अनुष्ठेय धर्मों को मैंने पूरी सावधानी से आपके श्रीमुख से सुना है॥२॥ अब शैव व्रत का निष्ठापूर्वक पालन करने वाले लिंगधारियों की सारी और्ध्वदेहिक क्रियाओं का विधान आप मुझे बताइये॥३॥

अनन्तरुद्र उत्तर देते हैं—

हे गीष्पति (बृहस्पते)! शांभव व्रत का पालन करने वालों की और्ध्वदेहिक क्रिया किस प्रकार की जाती है, यह मैं बता रहा हूँ। तुम सावधानी से सुनो॥४॥ जिसके अनुष्ठान से संस्कृत हुआ शिवव्रती बिना संशय के मुक्ति को प्राप्त करता है और जिससे संस्कृत हुआ धर्माचरणरहित व्यक्ति भी तत्क्षण मुक्ति पा जाता है॥५॥

शांभव व्रत का पालन करने वाले, एकमात्र इष्टलिंग की पूजा में लगे हुए

शिवे परे प्रविष्टानां मेध आराधनात्मकः ।
शिवमेध इति ख्यातः करणीयो मुमुक्षुभिः ॥
विशिष्टः पितृमेधोऽयं शिवमेध इतीर्यते ॥७॥

शिवमेधे श्रद्धाहीनस्य पातित्यम्

शिवभक्तौ शिवार्चायां शिवमेधे शिवव्रते ।
श्रद्धाहीनो वसेन्नित्यं नरके कालमक्षयम् ॥८॥

शिवलिङ्गधरस्य दहननिषेधः

शिवलिङ्गधरो विप्रो विपन्नस्तं न दाहयेत् ।
यदि वा दाहयेत्तस्य ब्रह्महत्या सदा भवेत् ॥९॥
प्राकृतानां मनुष्याणां दीक्षाविरहितात्मनाम् ।
दहनोपस्कृतः कार्यः संस्कारो ह्यवसानगः ॥१०॥

शिवलिङ्गधरस्य समाधिविधिः

शाम्भवानां मुमुक्षूणां संस्कारायैव चोदितः ।
पितृमेधे श्रूयतेऽसौ समाधिविधिरुत्तमः ॥११॥

शिवभक्त का देहावसान होने पर महती [१]शिवमेध विधि की अनुष्ठान करना चाहिये।॥६॥ परम परमेश्वर शिव के साथ सामरस्य को प्राप्त हुए साधकों के निमित्त किया जाने वाला आराधन रूपी और्ध्वदेहिक कर्म ही शिवमेध के नाम से प्रसिद्ध है। इसका अनुष्ठान मुमुक्षुजनों को अवश्य करना चाहिये। यह विशिष्ट पितृमेध शिवशास्त्र में शिवमेध के नाम से प्रसिद्ध है।॥७॥

शिव की भक्ति करने में, शिव का पूजन करने में, शिवमेध और शिवव्रत के अनुष्ठान में जिसको श्रद्धा नहीं है, वह अनन्त काल तक नरक में निवास करता है।॥८॥

शिवलिंगधारी विप्र यदि विपन्न हो जाता है, मृत्यु को प्राप्त करता है, तो उसका दाहसंस्कार नहीं करना चाहिये। यदि कोई उस लिंगधारी शिवभक्त का दाहसंस्कार करता है, तो उसे ब्रह्महत्या का पाप लगता है।॥९॥ प्राकृत मनुष्यों का ही, जो कि दीक्षासंस्कार से रहित हैं, मृत्यु के उपरान्त दाहसंस्कार किया जाता है।॥१०॥

शांभव व्रत का पालन करने वाले मुमुक्षु साधकों के संस्कार के लिये ही वेदों में वर्णित पितृमेध के प्रसंग में इस उत्तम समाधि की विधि को बताया गया है।॥११॥

---

१. शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन संहिता के ३५वें अध्याय में पितृमेध की विधि वर्णित है। भाष्यकार महीधर ने यहां के प्रथम मन्त्र के भाष्य में इसको स्पष्ट किया है। उसी विधि को यहां शिवमेध के नाम से कहा गया है। इस दोनों विधियों में कुछ अन्तर भी है। स्पष्ट अन्तर दाह और समाधि का है। अन्य कुछ विधियां भी स्थगित कर दी गई हैं।

परमेशोपासकानामनावृत्तिमतां नृणाम् ।
अवसानविधिः कार्यः समाधिविधिसंयुतः ॥१२॥
गृही वाऽथ यतिर्वापि लिङ्गधारी तनुं त्यजेत् ।
न देहत् तस्य देहं तु समाधौ गोपयेत्तदा ॥१३॥
समाधिर्मोक्षधर्मोऽयं प्रेतधर्मापवादकः ।
समाधिसंस्कृतेष्वस्माद्धर्मलोपो न शङ्क्यते ॥१४॥

*इति श्रीचन्द्रज्ञानागमे उत्तरभागेऽनन्तरुद्रबृहस्पति-
संवादे शिवशासने चर्यापादे शिवमेध-
प्रशंसानाम प्रथमः पटलः ॥*

परमेश्वर के उपासकों की जन्ममरण की परम्परा, इसकी आवृत्ति समाप्त हो जाती है। ऐसे ही साधकों के अवसान के बाद यह उत्तम समाधि-विधि सम्पन्न की जाती है॥१२॥ लिंगधारी गृहस्थ हो या यति हो, यदि वह इस शरीर का परित्याग करता है, तो उसके शरीर का दाहसंस्कार न कर उसको भूमि के भीतर समाधिस्थ कर देना चाहिये॥१३॥ यह समाधि प्रेत के लिये किये जाने वाले संस्कारों से भिन्न कोटि का मोक्ष की प्राप्ति का एक संस्कार है। इस समाधिसंस्कार में किसी प्रकार के धर्मलोप की कोई आशंका नहीं है॥१४॥

*इस प्रकार अनन्तरुद्र और बृहस्पति के संवाद के रूप में प्रस्तुत
इस चन्द्रज्ञान नामक शैवशासन के चर्यापाद का शिवमेध की
प्रशंसा करने वाला यह प्रथम पटल समाप्त हुआ॥*

❋ ❋ ❋

द्वितीयः पटलः

बृहस्पतिरुवाच

अनन्तरुद्र भगवन्ननन्तमहिमोन्नत ।
उच्चिक्रमिषुणा पुंसा कर्तव्यं किं निबोध मे ॥१॥

अनन्तरुद्र उवाच

उत्क्रान्तिमिच्छतः पुरुषस्य कर्तव्यनिर्देशः

उच्चिक्रमिषुणा पुंसा निवेश्येशे निजं मनः ।
दानादि कर्तुं स्नातव्यं भस्मना वा जलेन च ॥२॥
धृतधौताम्बरेणोर्व्यामासीनेन कुशासने ।
उद्धूलनं त्रिपुण्ड्रं च भूत्या धार्यं प्रयत्नतः ॥
रुद्राक्षाणि च धार्याणि यथोक्तं मुनिपुङ्गव ॥३॥
भस्मरुद्राक्षधारी तु म्रियते यो महीतले ।
रुद्रत्वमाप्नुते सोऽयं वाक्पते नात्र संशयः ॥४॥

बृहस्पति प्रश्न करेत हैं—

हे भगवन् अनन्तरुद्र, आप अपनी अनन्त महिमा के कारण सर्वोच्च पदवी पर प्रतिष्ठित हैं। अब आप मुझे यह बतावें कि जो साधक मुक्ति मार्ग के प्रति उत्क्रमण करना चाहता है, उसके क्या कर्तव्य हैं?॥१॥

अनन्तरुद्र उत्तर देते हैं—

मुक्ति की कामना से जो साधक उत्क्रमण करना चाहता है, उसे अपना मन ईश्वर में लगा देना चाहिये। उत्क्रमण के समय दान करने के लिये उसे भस्म से अथवा जल से स्नान करना चाहिये॥२॥ तब धुले हुए कपड़े पहन कर और पृथ्वी पर कुशासन बिछा कर बैठना चाहिये और प्रयत्नपूर्वक भस्म से उद्धूलन कर त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये। हे मुनिपुंगव! यथोक्त विधि से उसे रुद्राक्ष भी धारण करने चाहिये॥३॥ इस पृथ्वीतल पर जो व्यक्ति भस्म और रुद्राक्ष धारण कर मरता है, हे बृहस्पति! वह रुद्र पदवी को प्राप्त करता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है॥४॥

[1]निमित्तों (लक्षणों) के आधार पर भविष्य में होने वाली प्राणों की उत्क्रान्ति को जानने के तुरन्त बाद गृहस्थ साधक को 'या ते अग्ने' इत्यादि मन्त्र से अपने में

---

१. शिवपुराण की पांचवीं उमा संहिता के २५-२८ अध्यायों में मृत्युकाल का निमित्तों से ज्ञान, कालवंचन, छायापुरुष लक्षण जैसे विषय विस्तार से वर्णित हैं। मृत्यु का ज्ञान और कालवंचन की प्रक्रिया सभी प्रकार की आगम-तन्त्र की शास्त्रों, पुराणों और योग शास्त्र के ग्रन्थों स्वा

स्वात्मन्यग्न्यारोपणम्

उत्क्रान्तिं भाविनीं ज्ञात्वा निमित्तैः समनन्तरम् ।
या ते अग्न इति स्वात्मन्यग्नीनारोपयेद् गृही ॥५॥
अग्निरित्यादिभिर्मन्त्रैर्भस्मनाऽङ्गानि संस्पृशेत् ।
आत्मन्यारोपितस्यास्य वह्नेः संशमनाय वै ॥
षडध्वशुद्धैः कर्तव्यो ह्यप्सु होमो यथाविधि ॥६॥

माहेश्वरेभ्यो गोभूहिरण्यादिदानम्

हिरण्यमथ गां भूमिं शिवलिङ्गं सुपावनम् ।
माहेश्वरेभ्यो देयानि शिवसायुज्यकाङ्क्षिणा ॥७॥
अत्युत्क्रान्तौ प्रवृत्तस्य सुखोत्क्रमणसिद्धये ।
तुभ्यं सम्प्रददे धेनुमिमामुत्क्रान्तिसंज्ञिताम् ॥८॥
हिरण्यगर्भसेव्यस्य महादेवस्य तृप्तये ।
हिरण्यं प्रददे तुभ्यं हेमबीजं महाफलम् ॥९॥

अग्नियों का आधान करना चाहिये॥५॥ 'अग्नि' [2]इत्यादि मन्त्रों से अपने अंगों में भस्म का स्पर्श करना चाहिये और अपने में समारोपित अग्नि की शान्ति के लिये [3]षडध्व-शुद्धि से संपन्न होकर जल में विधि-पूर्वक आहुति देनी चाहिये॥६॥

इसके उपरान्त शिवसायुज्य की आकांक्षा वाले साधक को माहेश्वरों को सुवर्ण, गाय, भूमि का और पवित्र [4]शिवलिङ्ग का दान करना चाहिये।॥७॥ अन्तिम उत्क्रान्ति के लिये उद्यत मैं सुखपूर्वक उत्क्रमण की सिद्धि के लिये तुम्हें इस उत्क्रान्ति -संज्ञक धेनु का दान कर रहा हूँ ॥८॥ हिरण्यगर्भ ब्रह्मा के द्वारा सेवित महादेव शिव की तृप्ति के लिये कान्ति प्रद महान् फल दायी इस सुवर्ण का दान कर रहा हूँ ॥९॥ फिर दुबारा

में उपलब्ध है। स्कन्दपुराण की सूतसंहिता (४। १। ४६ अ.) और "धर्मशास्त्र का इतिहास" भा. ३. पृ. ११११-१२ भी देखिये (हिन्दी संस्करण)।

२. "अग्निरिति भस्म। वायुरिति भस्म। जलमिति भस्म। स्थलमिति भस्म। व्योमेति भस्म। सर्वं ह वा इदं भस्म" (अथर्वशिरस् उप. ५.)

३. षडध्वशुद्धि की प्रक्रिया के लिये वीरशैवलिङ्गिब्राह्मणदशकर्मपद्धति का वीरशैवदीक्षाविधि प्रकरण देखिये (पृ. ८१-८३)।

४. वीरशैव परम्परा में इष्टलिंग को स्वर्ण, चांदी आदि उत्तम धातुओं से बनी सज्जिका (पेटिका) में, जो कि शिवलिंग, आम्रफल, विल्वफल के समान आकार का एक छोटा सा मन्दिर होता है, रखकर उसे शिवसूत्र से संबद्ध कर शरीर पर कण्ठ आदि स्थानों में धारण करते हैं। इस इष्टलिंग की स्वर्णमय अथवा रजतमय सज्जिका का दान ही यहां शिवलिंग-दान के रूप में उक्त है।

पुनरावृत्तिरहितशिवसायुज्यसिद्धये ।
इदं सम्प्रददे तुभ्यं शिवलिङ्गं सुपावनम् ॥१०॥
विश्वम्भराशताङ्गस्य विश्वनाथस्य तृप्तये ।
इमां सम्प्रददे तुभ्यं परां विश्वम्भरां स्थिराम् ॥
दानान्येवं यथाशक्ति कृत्वा तत्त्वानि योजयेत् ॥११॥

सर्वाङ्गलिङ्गसाहित्यकथनम्

आयुषः प्राणमित्यादि मन्त्रान् सम्यगनुस्मरन् ।
सर्वाङ्गलिङ्गसाहित्यं ततः कुर्यात् प्रयत्नतः ॥१२॥
सर्वेष्वङ्गेषु सर्वत्र सर्वदा सर्वतोमुखम् ।
लिङ्गं गुरूपदेशेन ज्ञातं यत्तत् प्रकाशते ॥१३॥
एकमेव परं लिङ्गमङ्गेऽस्मिन् सुप्रतिष्ठितम् ।
सर्वतोमुखमाभाति नामरूपक्रियात्मना ॥१४॥
इष्टलिङ्गं तु बाह्याङ्गे प्राणलिङ्गं तथान्तरे ।
भावलिङ्गं तथैवाऽस्मिन्नात्माङ्गे सुप्रतिष्ठितम् ॥१५॥
हृदयाङ्गे महालिङ्गं श्रोत्राङ्गे तु प्रसादकम् ।
त्वगङ्गे चरलिङ्गं तु दृगङ्गे शिवलिङ्गकम् ॥१६॥

जन्म-मृत्यु की आवृत्ति से रहित शिवसायुज्य की सिद्धि के लिये यह मैं तुम्हें अत्यन्त पवित्र शिवलिंग (सज्जिका) का दान कर रहा हूँ॥१०॥ यह विश्वम्भरा (पृथ्वी) शतरुद्र रूपधारी भगवान् विश्वनाथ की तृप्ति के लिये है। इस श्रेष्ठ स्थिर पृथ्वी का मैं तुम्हें दान करता हूँ। इस प्रकार दानविधि को सम्पन्न कर तब [5]तत्त्वों की योजना करे॥११॥

'आयुषः प्राणम्' इत्यादि मन्त्रों का सावधानी से पाठ करता हुआ प्रयत्नपूर्वक अपने सारे अंगों के साथ लिंग का संयोजन करे॥१२॥ गुरु के उपदेश के अनुसार शरीर के सभी अंगों में आगे बताई गई पद्धति से सर्वत्र सर्वदा सर्वतोमुख (सबको देखने वाला) लिंगतत्त्व विद्यमान है, इस प्रकार से ज्ञात लिंगतत्त्व तब उस साधक के समक्ष प्रकाशित हो उठता है॥१३॥ एक ही परम लिंग इस अंग में प्रतिष्ठित है। यही नाम, रूप और क्रिया के भेद से इस सारे जगत् में नाना स्वरूपों में प्रकाशित हो रहा है॥१४॥ बाह्य अंग में इष्टलिंग, आन्तर अंग में प्राणलिंग और आत्मांग में भावलिंग सुप्रतिष्ठित है ॥१५॥ हृदय में महालिंग, श्रोत्रेन्द्रिय में प्रसादलिंग, स्पर्शेन्द्रिय में चरलिंग और चक्षुरिन्द्रिय में शिवलिंग सुप्रतिष्ठित है॥१६॥ रसनेन्द्रिय में गुरुलिंग और

---

५. तत्त्वयोजन की प्रक्रिया लिङ्गधारणचन्द्रिका (पृ. २७१-२७७) में वर्णित है ।

जिह्वाङ्गे गुरुलिङ्गं तु नासिकाङ्गे तथैव च ।
आचारलिङ्गमश्रान्तं सुप्रतिष्ठितमेव हि ॥१७॥
यथा ज्ञानेन्द्रियाङ्गेषु क्रमाल्लिङ्गं प्रतिष्ठितम् ।
तथा कर्मेन्द्रियाङ्गेषु क्रमाल्लिङ्गं प्रतिष्ठितम् ॥१८॥
अप्रतर्क्यमनिर्देश्यमवाङ्मानसगोचरम् ।
ससर्वशक्ति सर्वज्ञं सच्चिदानन्दलक्षणम् ॥१९॥
भावयन्नेति तद्भावं भावपूतेन चेतसा ।
गणान् शम्भोरनुज्ञाप्य प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥२०॥

प्रायश्चित्तविधानम्

ये वर्णाश्रमधर्माणामनाचरणसम्भवाः ।
ये त्वष्टावरणन्यूनताश्रिता व्रतलोपजाः ॥
ये च पञ्चाचारलोपसम्भूता भक्तिलोपजाः ॥२१॥
मनोवक्कर्मजा दोषास्तेषां हि विनिवृत्तये ।
माहेशसन्निधौ सर्वप्रायश्चित्तं करोम्यहम् ॥२२॥

गुरुजङ्गमयोः पूजनम्

इति संकल्प्य सम्पूज्य भक्त्या गुरुचरेश्वरान् ।
सन्तर्प्य धनवस्त्राद्यैः पिबेत् तत्पादतीर्थकम् ॥२३॥

इसी तरह से घ्राणेन्द्रिय में आचारलिंग निरन्तर सुप्रतिष्ठित रहता है॥१७॥ जिस तरह से ज्ञानेन्द्रिय में ये लिंग प्रतिष्ठित हैं, उसी क्रम से कर्मेन्द्रियों में भी ये सुप्रतिष्ठित हैं, अर्थात् वागिन्द्रिय में प्रसादलिंग पाणि में चर(जंगम)लिंग पाद में शिवलिंग, पायु में गुरुलिंग और उपस्थ में आचारलिंग स्थित हैं॥१८॥ अप्रतर्क्य, अनिर्देश्य, वाणी और मन के अगोचर, सभी शक्तियों के साथ विराजमान, सर्वज्ञ, सत्, चित् और आनन्दस्वरूप भगवान् शिव की भावना करते-करते यह उत्क्रमणशील साधक अपने भावपूत चित्त से शिवभावापन्न हो जाता है। ऐसी स्थिति में उसे शिव के गणों को संबोधित कर प्रायश्चित्त विधि को सम्पन्न करना चाहिये॥१९-२०॥

वर्णाश्रम धर्मों का आचरण न करने से, अष्टावरण धर्मों के पालन में न्यूनता के रह जाने से, व्रतों के लोप से, पंचाचारों के पालन में त्रुटि रह जाने से, शिवभक्ति का अभाव हो जाने से जो दोष उत्पन्न हुए हैं, मन, वचन और कर्म के जो दोष हैं, उन सबकी निवृत्ति के लिये भगवान् शिव की सन्निधि में मैं इन सबकी परिशुद्धि के लिये प्रायश्चित्त करता हूँ॥२१-२२॥

इस प्रकार संकल्प करके, भक्तिपूर्वक गुरु, चर (जंगम) और ईश्वर (लिंग) का पूजन करके, धन और वस्त्र से इनको सन्तृप्त करके उनके पादोदक का पान

यस्य वक्त्रेऽन्त्यकाले तु माहेश्वरपदोदकम् ।
दीयते स हि पूतात्मा शिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥२४॥

महालिङ्गविभावनम्

शिवनाम पठन् दिव्यं महालिङ्गं विभावयन् ।
प्रायोपवेशं कुर्वीत शिवलीनमता: स्वयम् ॥२५॥
अनन्तरं कर्णमन्त्रान् श्रावयेयु: सुतादय: ।
षडक्षरं दक्षकर्णे तथोपनिषद: शिवा: ॥२६॥
कर्पूरं ज्वालयेत् पश्चादुत्क्रान्तिसमये तदा ।
अणु: पन्थेत्यर्चिरादिगतिमन्त्रं समुच्चरन् ॥२७॥

इति श्रीचन्द्रज्ञानागमे उत्तरभागेऽनन्तरुद्रबृहस्पतिसंवादे शिवशासने चर्यापादे उत्क्रान्तिसमयाचारवर्णनं नाम द्वितीय: पटल: ॥

करे॥२३॥ अन्तकाल के समय जिस भक्त के मुख में माहेश्वरों का पादोदक दिया जाता है, उसकी आत्मा पवित्र होकर शिव का सायुज्य प्राप्त करती है॥२४॥

दिव्य शिवनाम का जप करता हुआ, महालिंग की भावना करता हुआ साधक स्वयं यदि शिव में लीन हो जाना चाहता है, तो [६]प्रायोवेशन व्रत को ग्रहण करे॥२५॥ उसके ऐसा करने पर उसके पुत्र, शिष्य आदि उसके कान में मन्त्रों को सुनावें। उसके दाहिने कान में षडक्षर मन्त्र और कल्याणकारी उपनिषदों को सुनाना चाहिये॥२६॥ जब उत्क्रान्ति समय पास में आ जाय, तब 'अणु: [७]पन्था' इत्यादि अर्चिरादि (उत्तरायण) गति के प्रापक मन्त्रों का उच्चारण करते हुए कपूर जलाना चाहिये॥२७॥

इस प्रकार अनन्तरुद्र और बृहस्पति के संवाद के रूप में प्रस्तुत इस चन्द्रज्ञान नामक शैवशासन के उत्तर भाग के चर्यापाद का उत्क्रान्ति के अवसर पर किये जाने वाले कार्यों के क्रम का तथा कर्ता की योग्यता का निरूपण करने वाला यह तृतीय पटल समाप्त हुआ॥

---

६. प्राणत्याग के निश्चय का दृढ संकल्प कर किसी निश्चत स्थान पर बैठ जाने को ही प्रायोपवेशन कहा जाता है। सीता की खोज से निराश हुए वानरों के प्रायोपवेशन की कथा वाल्मीकि रामायण के किष्किन्धा काण्ड के ५५वें सर्ग में मिलती है।

७. "अणु: पन्था वितत: पुराणो मां स्पृष्टोऽनुवित्तो मयैव । तेन धीरा अपियन्ति ब्रह्मविद: स्वर्गं लोकमित ऊर्ध्वं विमुक्ता:॥" (बृहदा० उप० ४।४।११)



तृतीयः पटलः

बृहस्पतिरुवाच

अनन्तरुद्र भगवन्नखिलज्ञानभासुर ।
अनन्तरं समुत्क्रान्तेः कार्यं कर्तुर्वदस्व मे ॥१॥

अनन्तरुद्र उवाच

उत्क्रान्तिकार्यकर्तृक्रमः

आदौ कर्तृक्रमं वक्ष्ये तच्छृणु त्रिदशार्चित ।
पुत्रः पौत्रः प्रपौत्रश्च पुत्रिकापुत्र एव च ॥२॥
तत्सुतो वाऽथवा दत्तस्तत्सन्तानस्तथैव च ।
धनहारी पतिः पत्नी सपत्नीपुत्र एव च ॥३॥
पुत्री भ्राता च तत्पुत्रः पिता माता स्नुषा तथा ।
पौत्री दौहित्रिका चापि पौत्रपत्नी च तत्सुता ॥४॥
दत्तस्य पत्नी भगिनी भागिनेयश्च सोदकः ।
मातुः सोदक एवापि सगोत्रः शिष्य एव च ॥५॥

बृहस्पति प्रश्न करते हैं—

हे समस्त ज्ञान के धारण करने से देदीप्यमान भगवन् अनन्तरुद्र! समुत्क्रान्ति के अनन्तर सम्पादनीय कृत्य का आप मुझे उपदेश कीजिये॥१॥

अनन्तरुद्र उत्तर देते हैं—

हे त्रिदशों (देवों) के द्वारा पूजित बृहस्पति! सबसे पहले कर्ता के क्रम को बताता हूँ, उसे तुम सुनो। [१]पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, पुत्री का पुत्र (दौहित्र) ये क्रमशः समुत्क्रान्ति के बाद के कृत्य के अधिकारी माने गये हैं॥२॥ इसके बाद दौहित्र का पुत्र, दत्तक पुत्र और उसकी सन्तान, धन का दाता, पति, पत्नी और सपत्नीपुत्र ये क्रमशः अधिकारी माने जाते हैं॥३॥ पुत्री, भ्राता, भातृपुत्र (भानजा), पिता, माता, बहिन, पौत्री, दौहित्री, पौत्र की पत्नी और उसकी पुत्री॥४॥ दत्तक पुत्र की पत्नी, भगिनी, भागिनेय, अपना सोदक[२] ,माता का सोदक और सगोत्र तथा शिष्य भी॥५॥ ऋत्विक्,

१. म. म. भारतरत्न पी. वी. काणे के धर्मशास्त्र के इतिहास (हिन्दी संस्करण, भा. ३. पृ. ११४९-११५२, १२१२-१५) में विस्तार से अन्त्येष्टि और श्राद्ध के अधिकारियों का निरूपण किया है। यहां का वर्रन भी उसका पूरी तरह से अनुवर्तन करता है।

२. धर्मशास्त्र में कुल-परम्परा को सपिण्ड, सोदक और सगोत्र नाम दिया गया है। सात पीढी तक सपिण्ड, सात से आगे चौदह पीढी तक सोदक और उससे आगे इक्कीस पीढी तक के स्वजन सगोत्र कहलाते हैं। धर्मशास्त्र० (पृ. ११६१-६२) देखिये ।

ऋत्विग् भृत्यो गुरुश्चैव सहाध्यायी तथैव च ।
जामाता च सखा चैव राजा च क्रमशः स्मृताः ॥६॥

उत्क्रान्तिकार्यविवरणम्

उत्क्रान्तप्राणमालोक्य कर्ता स्नात्वा धृताम्बरः ।
धृतत्रिपुण्ड्ररुद्राक्षः कर्माधिकृतिसिद्धये ॥
कुर्याद् गणनमस्कारं दद्याच्च द्रविणं ततः ॥७॥
दीयते यन्मृताहे तत् सर्वपर्वसु दानतः ।
विशिष्यते तद्यथाशक्ति दद्याद् द्रविणमात्मजः ॥८॥

ऊर्ध्वोच्छिष्टादिदोषप्राप्तौ प्रायश्चित्तम्

ऊर्ध्वोच्छिष्टादिसम्प्राप्तौ विदध्यान्निष्कृतिं तदा ।
प्राजापत्यप्रतिनिधिं द्रव्यं देयं हितैषिणा ॥९॥
प्रासादे वापि खट्वायां मृतौ कुर्याच्च निष्कृतिम् ।
गां वा हिरण्यं दद्याच्च प्राजापत्यमथापि वा ॥१०॥

भृत्य (नौकर), गुरु और सहाध्यायी, जामाता, मित्र और राजा ये सब क्रमशः समुत्क्रान्ति के अनन्तर संपाद्य कर्मों के अधिकारी माने जाते हैं॥६॥

इस शरीर से प्राण निकल गये हैं, ऐसा जान लेने के बाद और्ध्वदेहिक कृत्यों का सम्पादन करने वाला व्यक्ति स्नान के उपरान्त स्वच्छ वस्त्र धारण कर, त्रिपुण्ड्र और रुद्राक्ष धारण कर कर्म के अधिकार की सिद्धि के लिये शिवगण, अर्थात् जंगमों को नमस्कार करे और उनको धन समर्पित करे॥७॥ मृत्यु के दिन जो कुछ दिया जाता है, वह सभी पर्वों में दिये गये दान से श्रेष्ठ माना है, अतः पुत्र को चाहिये कि वह इस अवसर पर यथाशक्ति दान करे॥८॥

इस अवसर पर यदि कोई उच्छिष्ट आदि दोष आपतित हों, तो उनके लिये प्रायश्चित्त करना चाहिये और हितैषी व्यक्ति को [3]प्राजापत्य कर्म के प्रतिनिधि के रूप में द्रव्य का दान करना चाहिये॥९॥ प्रासाद (मकान की ऊपरी मंजिल) अथवा खट्वा

---

३. प्राजापत्य कर्म एक प्रायश्चित्त-विशेष है। उक्त ग्रन्थ के प्रायश्चित्त प्रकरण (अध्याय पाँच) में प्राजापत्य का लक्षण इस प्रकार बताया है—जब कृच्छ्र का कोई विशेषण न हो तो उसे प्राजापत्य कहते हैं। मनु (११ । २११) के अनुसार इसमें तीन-तीन दिनों की चार अवधियां होती हैं, जिनमें क्रम से केवल दिन में एक बार, पुनः केवल रात्रि में एक बार, पुनः तीन दिनों तक बिना मांगे खाना एवं फिर पूर्ण उपवास किया जाता है। अर्थात् प्रथम तीन दिनों में केवल एक बार दिन में, दूसरे तीन दिनों में केवल रात्रि में, तीसरे तीन दिनों में बिना मांगे और चौथे तीन दिनों में पूर्ण उपवास। इसके अतिरिक्त इसके अन्य प्रकार भी यहां दिंये गये हैं (पृ. १०९०-१०९१)

सिद्धिं गतस्य संस्कारसमयः

सिद्धिं गतस्य तु दिवा कुर्यात् संस्कारमात्मजः ।
पञ्चविंशघटीपूर्वमथ पर्युषितं भवेत् ॥११॥
दिवा वा यदि वा नक्तं वपुस्तद्यदसंस्कृतम् ।
स्यात् पर्युषितमस्यैवं कुर्यात् संस्कारमादितः ॥१२॥
पञ्चगव्येन संस्नाप्य पावमान्याऽभिमन्त्र्य च ।
जलेन स्नापयित्वा च विधिवन्निखनेत् ततः ॥१३॥

गणप्राणस्य समाधिसंस्कारः

गतप्राणशरीरं तु श्रीरुद्रादिमनून् पठन् ।
संस्नाप्य चाप्यलङ्कृत्य रुद्राक्षैर्भस्मनाऽपि च ॥१४॥
इष्टलिङ्गं करे न्यस्य सम्पूज्य समनन्तरम् ।
पेटिकायां च विन्यस्य वृणुयाद् वाहकांस्ततः ॥१५॥

पेटिकायां विन्यस्य शिवारामनयनम्

महोक्षो वृषभश्चैव नन्दीशो नन्दिकेश्वरः ।
एतैश्च नामभिर्युक्तंश्चतुरस्तैः शरीरकम् ॥
विमाने सन्निवेश्याथ शिवारामं नयेत्तदा ॥१६॥

(पलंग) पर मृत्यु होने पर उसके प्रायश्चित के रूप में गोदान अथवा सुवर्ण दान करना चाहिये। या प्राजापत्य व्रत का आचरण करना चाहिये॥१०॥

दिन में सिद्धि, अर्थात् मृत्यु के प्राप्त होने पर पुत्र को चाहिये कि वह उसका पचीस घटिका, अर्थात् १० घंटे बीतने से पहले ही संस्कार कर दे, क्योंकि इसके बाद वह मृत देह पर्युषित (बासी) हो जाता है॥११॥ दिन में अथवा रात्रि में यदि इस मृत देह का संस्कार नहीं किया जाता, तो वह पर्युषित (बासी) हो जाता है, अतः इस अवधि के भीतर उसका संस्कार हो जाना चाहिये॥१२॥ ऐसी स्थिति में पंचगव्य से उस मृत देह को स्नान करा कर पावमानी ऋचा से उसे अभिमन्त्रित कर और जल से स्नान करा कर तब विधिपूर्वक उसका भूमि(समाधि)संस्कार करना चाहिये॥१३॥

निष्प्राण देह को श्रीरुद्र आदि के मन्त्रों का पाठ करते हुए स्नान कराकर उसे भस्म और रुद्राक्ष से अलंकृत करना चाहिये॥१४॥ इष्टलिंग को हाथ पर रख कर उसकी पूजा करने के उपरान्त उसे पेटिका में रख कर इस पेटी को उठाने वाले व्यक्तियों का वरण करना चाहिये॥१५॥

इति श्रीचन्द्रज्ञानागमे उत्तरभागेऽनन्तरुद्रबृहस्पति-
संवादे शिवशासने चर्यापादे उत्क्रान्तिकार्य-
कर्तृक्रमनिर्णयो नाम तृतीयः पटलः ॥३॥

महोक्ष, वृषभ, नन्दीश और नन्दिकेश्वर नाम वाले चार व्यक्तियों के द्वारा इस मृत देह को विमान में रखकर शिवाराम (शिवमन्दिर से युक्त बगीचा) में ले जाना चाहिये॥१६॥

इस प्रकार अनन्तरुद्र और बृहस्पति के संवाद के रूप में प्रस्तुत
इस चन्द्रज्ञान नामक शैवशासन के उत्तर भाग के चर्यापाद
का उत्क्रान्ति के अवसर पर किये जाने वाले कार्यों
के क्रम का तथा कर्ता की योग्यता का निरूपण
करने वाला यह तृतीय पटल समाप्त हुआ॥



चतुर्थः पटलः

बृहस्पतिरुवाच

प्रमथप्रवरानीकसेव्यमानपदाम्बुज ।
अनन्तरुद्र विश्वात्मन् नीलकण्ठ नमोऽस्तु ते ॥१॥
अनन्तराणि कृत्यानि कर्तव्यान्यखिलान्यपि ।
निबोधय महेशान शिवारामप्रवेशनात् ॥२॥

अनन्तरुद्र उवाच

मृतस्य शिवारामप्रवेशनम्

शिवालयसमीपे वा शिवारामेऽथवा पुनः ।
विल्ववृक्षस्य मूले वा शिवतीर्थसमीपके ॥३॥
समाधिं कारयित्वा तां तनुं तत्र यथाविधि ।
निधाय पूरयेद् गर्तं भस्मना मृत्स्नयाऽपि च ॥
वस्त्रं तु धारयित्वाऽतः सचेलस्नानमाचरेत् ॥४॥

केशवपनावश्यकत्वम्

ब्राह्मणस्वर्णघातादिपापानि विविधानि च ।
केशानाश्रित्य तिष्ठन्ति तस्मात्केशान् वपाम्यहम् ॥५॥

बृहस्पति प्रश्न करते हैं—

प्रमथ आदि शिवगणों के समूह के द्वारा जिनके चरण-कमल की सेवा की जा रही है, ऐसे हे विश्वात्मा नीलकण्ठ अनन्तरुद्र! आपको मैं प्रणाम करता हूँ॥१॥ हे महेशान! इसके बाद सम्पन्न होने वाले समस्त कृत्यों का आप मुझे उपदेश कीजिये, जो कि मृतदेह को शिवाराम में प्रवेश कराने के बाद किये जाते हैं॥२॥

अनन्तरुद्र उत्तर देते हैं—

शिवालय के समीप में अथवा शिवाराम के भीतर, विल्व वृक्ष के अथवा शिवतीर्थ के समीप समाधि बनाकर उस मृत देह को विधि के अनुसार वहां रखकर उस गड्ढे को पहले भस्म से तथा बाद में मिट्टी से भर देना चाहिये। इसके उपरान्त सचैल (पहने हुए वस्त्रों के साथ) स्नान कर नये वस्त्र धारण करे॥३-४॥

[१]ब्रह्महत्या, स्वर्णस्तेय आदि से उत्पन्न नाना प्रकार के पाप केशों में अपना घर बना लेते हैं, अतः मैं उन केशों का वपन (मुंडन) करा लेता हूँ ॥५॥ मेरु और मन्दर

---

१. ब्रह्महत्या, सुरापान, स्तेय(चोरी), गुरुतल्पगमन और महापातकी का संसर्ग—मनुस्मृति (११।५४) आदि में इन्हीं को महापातक कहा गया है। इनका विस्तृत विवरण धर्मशास्त्र० (पृ. १०१८-१०२८) में देखा जा सकता है।

मेरुमन्दरतुल्यानि पापानि विविधानि च ।
केशानाश्रित्य तिष्ठन्ति तस्मात् केशान् वपाम्यहम् ॥
इति मन्त्रेण संकल्प्य केशश्मश्रूणि वापयेत् ॥६॥
अग्नेरिव शिखा यस्य विद्या ज्ञानमयी शिखा।
स शिखीत्युच्यते विद्वन्नितरे केशधारिणः ॥७॥

वपनानन्तरकृत्यानि

वपनानन्तरं स्नात्वा भूतिरुद्राक्षसंयुतः ।
गृहीत्वा च गणानुज्ञां दिव्यरूपाप्तये पितुः ॥८॥
नवभिः पञ्चभिर्वापि शोभितं वृषभैः परम् ।
लिङ्गं तु पितृनामाङ्कं समाधौ स्थापयेत् तदा ॥
दश दानानि दद्याच्च लिङ्गं च परिपूजयेत् ॥९॥

क्षीरादिना तर्पणम्

मृद्घट्टनोपजनितसन्तापस्योपशान्तये ।
क्षीरादितर्पणं कार्यमादशाहं तथाऽन्वहम् ॥१०॥

पर्वत के समान अतिदीर्घ नाना प्रकार के पाप भी इन केशों के सहारे ही शरीर में टिके रहते हैं, अतः मैं इनका वपन (मुंडन) करा लेता हूँ। इस मन्त्र से संकल्प-पूर्वक केश और श्मश्रु (डाढी-मूंछ) का वपन करा ले॥६॥ जिसकी शिखा अग्नि के समान है, जिसके पास ज्ञानमयी शिखा विद्यमान है, वही वास्तव में शिखी कहलाता है। हे बृहस्पति! ऐसे व्यक्ति के सिवाय बाकी सब केवल केशधारी माने जाते हैं।॥७॥

वपन कराने के उपरान्त स्नान करके, भस्म और रुद्राक्ष धारण करके शिवगण (जंगमों) की अनुज्ञा लेकर पिता के दिव्य रूप की प्राप्ति के लिये नौ अथवा पांच वृषभों से शोभित श्रेष्ठ मृण्मय शिवलिंग पर अपने पिता का नाम अंकित कर समाधि स्थल पर स्थापित करना चाहिये। यहां [२]दशविध दान देना चाहिये और उस शिवलिंग का पूजन करना चाहिये॥८-९॥

इसके बाद दस दिन तक प्रतिदिन समाधि-संस्कार के अवसर पर मिट्टी को डालने से उत्पन्न सन्ताप की शान्ति के लिये क्षीर आदि से तर्पण करना चाहिये॥१०॥

---

२. दशविध दान में गाय, भूमि, तिल, सोना, घृत, वस्त्र, धान्य, गुड़, रजत (चांदी) एवं नमक का परिगणन किया गया है। देखिये धर्मशास्त्र० (पृ. १११२)

इष्टादीनि च लिङ्गानि पितरं चापि तर्पयेत् ।
पित्रे नित्यं प्रदद्याच्च त्रिसंख्यानुदकाञ्जलीन् ॥११॥

नग्नप्रच्छादनाराधनम्

प्रविश्य दीपसहितं भवनं ज्ञातिभिः सह ।
नग्नप्रच्छादनाभिख्यं कुर्यादाराधनं ततः ॥१२॥

समाधिस्थापितलिङ्गस्य चालनप्रतिषेधः

समाधिस्थापितं लिङ्गमादशाहं न चालयेत् ।
जन्त्वादिभिश्चालितेऽस्मिन् यथास्थानं निधाय तत् ॥
प्राणायामत्रयं कृत्वा स्पृष्ट्वा तद्व्याहृतीर्जपेत् ॥१३॥
समाधिस्थापितं लिङ्गमादशाहं प्रपूजयेत् ।
दशाहपूजाविधिना दिव्यरूपं प्रजायते ॥१४॥

आराधनविधिनिरूपणम्

आराधनं ततः कार्यं दिव्यरूपवतः पितुः ।
एकोद्दिष्टविधानेन रुद्रत्वं भवति ध्रुवम् ॥

इष्ट आदि लिंगों के और पिता के निमित्त भी तर्पण करना चाहिये तथा पिता को नित्य तीन जलांजलि देनी चाहिये॥११॥

फिर ज्ञाति-बान्धवों के साथ दीपक हाथ में लेकर अपने घर में प्रवेश करे और वहां [३]नग्नप्रच्छादन नामक आराधन करे॥१२॥

समाधि पर स्थापित शिवलिंग को दस दिन तक हिलाना-डुलाना नहीं चाहिये। किसी प्राणी के द्वारा हिला दिये जाने पर उसे यथास्थान रखकर तीन प्राणायाम तथा व्याहृति [४]का जप कर उसका स्पर्श करना चाहिये॥१३॥ समाधि पर स्थापित लिंग की दस दिन तक पूजा करना चाहिये। इस तरह से दस दिन तक पूजा करने से उसमें दिव्यता आ जाती है॥१४॥

तब दिव्य रूप धारी पिता का [५]एकोद्दिष्ट श्राद्ध की विधि से आराधन करना

---

३. ''घर में प्रवेश कर लेने के उपरान्त नग्न-प्रच्छादन नामक श्राद्ध करना चाहिये। नग्न-प्रच्छादन श्राद्ध में एक घड़े में अनाज भरा जाता है। एक पात्र में घृत एवं सामर्थ्य के अनुसार सोने के टुकड़े या सिक्के भरे जाते हैं। अन्नपूर्ण घड़े की गरदन वस्त्र से बंधी रहती है। विष्णु का नाम लेकर दोनों पात्र किसी कुलीन दरिद्र ब्राह्मण को दे दिये जाते हैं'' (धर्म०, पृ. ११३१)।

४. भूः, भुवः और स्वः की व्याहृति में और इनके साथ महः, जनः, तपः और सत्यम् को जोड़ने पर इनकी महाव्याहृति में गणना होती है।

५. जिसमें एक ही मृत व्यक्ति उद्दिष्ट रहता है, जिसमें एक ही मृत व्यक्ति का आवाहन होता है या जिसमें एक ही व्यक्ति का कल्याण निर्दिष्ट है, उसे एकोद्दिष्ट कहते हैं। पार्वण श्राद्ध

तत्त्वसंयोजनेनैव महेशत्वं पुनर्भवेत् ॥१५॥
प्रथमेऽह्नि तृतीये च पञ्चमे सप्तमे तथा ।
नवमैकादशाह्नोश्च नवाराधनमाचरेत् ॥१६॥
आसप्तमा ज्ञातयश्च कर्ता च दशमेऽहनि ।
वापयित्वा च स्नात्वा च ते कुर्युः क्षीरतर्पणम् ॥
दद्यादेव यथाशक्ति दश दानानि संयुतः ॥१७॥

सवृषलिङ्गोद्वासनम्

उद्वास्य सवृषं लिङ्गं वसने च निधाय तत् ।
तीर्थमानीय पृथिवीं यच्छेति च मनुं पठन् ॥
विसृजेत्तत्र लिङ्गं च दिव्यरूपमनुस्मरन् ॥१८॥

गाणपत्याहोम आनन्दहोमश्च

एवमुद्वास्य च स्नात्वा तिलामलकवारिभिः ।
गाणपत्याभिधं होमं तथैवानन्दसंज्ञकम् ॥
कुर्यात् पितृगणैः साकमानन्दसमवाप्तये ॥१९॥

चाहिये। इससे पिता को रुद्रत्व प्राप्त होता है। इसके साथ ही [६]तत्त्वसंयोजन की प्रक्रिया से उसे पुनः महेशत्व प्राप्त हो जाता है॥१५॥ पहले, तीसरे, पांचवें, सातवें, नवें, और ग्यारहवें दिन [७]नवाराधन करना चाहिये॥१६॥ दसवें दिन सात पीढी तक के समस्त ज्ञातिबन्धुओं के साथ कर्ता केशवपन कराकर स्नान करे और दूध से तर्पण करे। इस अवसर पर यथाशक्ति [८]दशविध दान भी करना चाहिये॥१७॥

इसके बाद समाधि पर स्थापित सवृषभ लिंग को वहां से उठाकर वस्त्र में रखकर, तालाब आदि के पास जाकर ''पृथिवीं गच्छ'' [९]इस मन्त्र का पाठ करता हुआ लिंग के दिव्य स्वरूप का स्मरण करता हुआ उसे जल में विसर्जित कर दे॥१८॥

इस तरह से सवृषभ लिंग का उद्वासन करके, तिल, आमलक (आवला)

से इसमें इतना ही भेद है कि उसमें तीन पितर उद्दिष्ट रहते हैं और एकोद्दिष्ट में केवल एक ही । विस्तृत परिचय के लिये धर्मशास्त्र० (पृ. १२७८-१२८०) देखिये । एकोद्दिष्ट का लक्षण इसी पटल के २८वें श्लोक में भी देखिये ।

६. द्वितीय पटल की पाँचवीं टिप्पणी देखिये ।

७. धर्मशास्त्र० में नवश्राद्ध के रूप में यह विषय वर्णित हैं (पृ. ११५३, १२७९) यहां हमें स्मरण रखना है कि प्रस्तुत आगम कें श्राद्ध के लिये सर्वत्र आराधन शब्द प्रयुक्त हुआ है।

८. ऊपर की दूसरी टिप्पणी देखिये ।

९. ''पृथिवीं यच्छ पृथिवीं हंह पृथिवीं मा हिंसीः'' ।

एकादशेऽहनि स्नात्वा विप्रान् विज्ञान्निमन्त्र्य च ।
रुद्रहोमं विधायाथ वृषोत्सर्जनमाचरेत् ॥२०॥
उत्सृजेद् वृषभं श्वेतं रोहितं नीलमेव वा ।
तृप्त्या वै नन्दिकेशस्य शिवसान्निध्यसिद्धये ॥२१॥

षोडशाराधनक्रमः

आद्यमासिकमुख्यानि षोडशाराधनानि च ।
रुद्रगणाराधनं च वृषोत्सर्गाभिधं तथा ॥२२॥
आचारादिकषड्लिङ्गस्थलषट्कसमाश्रयम् ।
अनुत्तरं च पञ्चाशद् रुद्राराधनमाचरेत् ॥२३॥
आद्यमेकादशेऽह्नि स्यादूने मास्यूनमासिकम् ।
त्रैपक्षिकं त्रिपक्षे स्यादूनषाण्मासिकं तथा ॥२४॥

आदि से मिश्रित जल से स्नान करके पितृगणों के साथ अपने आनन्द की प्राप्ति के लिये गाणपत्य होम और आनन्द नाम के होम का अनुष्ठान करे॥१९॥ ग्यारहवें दिन स्नान करके विद्वान् ब्राह्मणों को बुलाकर रुद्रहोम का विधान कर [१०]वृषोत्सर्ग करे॥२०॥ वृषोत्सर्ग कर्म में श्वेत, लाल अथवा नील (कृष्ण) वृषभ का उत्सर्ग किया जाता है। ऐसा करने से नन्दिकेश प्रसन्न होकर शिव का सांनिध्य प्रदान करते हैं॥२१॥

इसके अनन्तर आगे वर्णित आद्यमासिक, मासिक आदि [११]सोलह आराधना विधियों का, रुद्रगण की आराधन का और वृषोत्सर्ग नामक कर्म का अनुष्ठान करना चाहिये॥२२॥ आचारलिंग, गुरुलिंग, शिवलिंग, जंगमलिंग, प्रसादलिंग और महालिंग नामक षड्लिंग तथा भक्त, महेश, प्रसादी, प्राणलिंगी, शरण और ऐक्य नामक षट्स्थल में आश्रित श्रेष्ठ [१२]पचास रुद्रों की आराधना करनी चाहिये॥२३॥ पहली आराधना ११वें दिन की जाती है, मास की समाप्ति में पहला ऊनमासिक, तीन पक्ष पर त्रिपक्ष और छठे मास की समाप्ति से पहले ऊनषाण्मासिक आराधन किया जाता है। मृत्यु के दिन प्रत्येक मास में, वर्ष की समाधि के पहले ऊनाब्द इस प्रकार

---

१०. धर्मशास्त्र के अनेक ग्रन्थों में यह श्लोक प्रसिद्ध है—"एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् । यजेत वाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत्॥" यहां पितरों के निमित्त वृष (बैल=सांढ) के उत्सर्ग की महिमा गाई गई है। इसकी पद्धति धर्म० (पृ० १२९१-९२) में देखिये।

११. षोडश श्राद्धविषयक विविध पक्षों के लिये देखिये— धर्म० (पृ. १२७८-८०)।

१२. पचास रुद्रों की नामावली मकुटागम के चर्यापाद (६. १४-२०) में देखिये । आचार आदि षड्विध लिंग और भक्त आदि षड्विध स्थलों में इन पचास रुद्रों की आराधन-पद्धति का स्पष्ट स्वरूप भी वहीं देखिये। यह नामावली प्रपंचसार (३। ३९-४४) के पचास रुद्रों (वर्ण-देवताओं) की नामावली से बहुत मिलती है।

मासि षष्ठे किञ्चिदूने कर्तव्यं सम्प्रकीर्तितम् ।
प्रतिमासं मृताहस्सु ऊनाब्दं चेति षोडश ॥२५॥
आषोडशान्न वै तस्य जीवभावो निवर्तते ।
षोडशाराधनं कार्यमेकोद्दिष्टविधानतः ॥२६॥

तत्त्वसंयोजनम्

अकृत्वा षोडशविधिं न कार्यं तत्त्वयोजनम् ।
द्वादशेऽह्नि पितुस्तत्त्वसंयोजनचिकीर्षुणा ॥
अवश्यं हि विधेयानि षोडशाराधनान्यपि ॥२७॥
एकोद्दिष्टविधानेन तत्त्वसंयोगसिद्धये ।
क्रियते यदेकमुद्दिश्य चैकोद्दिष्टं प्रकीर्तितम् ॥२८॥
विश्वेदेवावाहनं च नाभिश्रवणकीर्तनम् ।
प्रदक्षिणविसर्गो वा सीमान्तगमनं नहि ॥२९॥

ये सोलह आराधन सम्पन्न किये जाते हैं॥२४-२५॥ इन सोलह आराधनों के अनुष्ठान तक उसका जीवभाव निवृत्त नहीं होता। अत: एकोद्दिष्ट विधि से इन आराधनों का अनुष्ठान अवश्य करना चाहिये॥२६॥

इन सोलह आराधनों को किये बिना [१३]तत्त्वयोजन की प्रक्रिया नहीं करनी चाहिये। जो व्यक्ति बारहवें दिन पिता के निमित्त तत्त्वसंयोजन की प्रक्रिया को पूरा करना चाहता है, उसे भी इन १६ आराधनों का अनुष्ठान उससे पहले अवश्य पूरा कर लेना चाहिये॥२७॥ तत्त्वसंयोजन-प्रक्रिया को सम्पन्न करने के लिये एकोद्दिष्ट विधान के अनुसार जो एक व्यक्ति को उद्दिष्ट कर अनुष्ठान किया जाता है, उसे एकोद्दिष्ट कहते हैं॥२८॥ यहां [१४]विश्वेदेवों का आवाहन, अभिश्रवण, कीर्तन नहीं किया जाता। प्रदक्षिणा, विसर्जन अथवा सीमान्तगमन आदि कार्य भी नहीं किये जाते॥२९॥

---

१३. द्वितीय पटल की पाँचवीं टिप्पणी देखिये।

१४. "ऋतुर्दक्षो वसुः सत्यः कालः कामस्तथैव च। धुरिश्चारोचनश्चैव तथा चैव पुरूरवाः। आर्द्रवश्च दशैते तु विश्वेदेवाः प्रकीर्तिताः॥" अनेक स्थलों पर उद्धत इस वचन में दस विश्वेदेवों के नाम दिये गये हैं। विभिन्न श्राद्धों में इनका आवाहन किया जाता है। देखिये- धर्म० (पृ० १२५६-५७) तथा वहां की टिप्पणी। वीरशैव मत में इस तरह के अनेक विधानों को स्थगित कर दिया गया है।

रुद्राराधनम्

एकादशेऽह्नि माहेशान् रुद्ररूपतयाऽर्चयेत् ।
यथा सम्भवमेतद्धि रुद्राराधनमुच्यते ॥३०॥
वृषोत्सर्गफलावाप्त्यै विप्रमेकं समर्चयेत् ।
वृषोत्सर्गाख्यमाराधनमितीदं सम्प्रचोदितम् ॥३१॥
आचारादिकषड्लिङ्गस्थलषट्कसमाश्रयम् ।
खड्गेशादिकपञ्चाशद् रुद्राराधनमाचरेत् ॥३२॥
चत्वारः षड् दश तथा रुद्रा द्वादश षोडश ।
द्वावित्याचारलिङ्गादिस्थलषट्कसमाश्रयाः ॥३३॥
आधारादिकषट्चक्रवर्तिषड्लिङ्गसंश्रयाः ।
चतुरादिकसंख्याद्यास्तत्तच्चक्रदलाश्रिताः ॥३४॥
षट्स्थलेषूपास्यमाना वर्णरूपतया स्थिताः ।
अर्चनीया हि पञ्चाशद् रुद्राः षड्लिङ्गतृप्तये ॥३५॥

ग्यारहवें दिन माहेश्वरों (जंगमों) को बुला कर उनका रुद्र के रूप में अर्चन करे। यथाशक्ति किया गया यह पूजन ही रुद्राराधन कहलाता है॥३०॥ वृषोत्सर्ग के फल की प्राप्ति के लिये एक लिंगी ब्राह्मण का पूजन करे। इसी को यहां वृषोत्सर्ग आराधन कहा गया है॥३१॥ २३वें श्लोक के अर्थ में निर्दिष्ट आचार आदि षड्विध लिंग और भक्त आदि षट्स्थलों में ही खड्गेश आदि पचास रुद्रों की आराधना करनी चाहिये॥३२॥ चार, छः, दस, बारह, सोलह और दो—ये रुद्र क्रमशः आचार आदि छः लिंगों और भक्त आदि छः स्थलों पर समाश्रित हैं॥३३॥ [१५]आधार आदि छः चक्रों में रहने वाले छः लिंगों में भी ऊपर बताई गई संख्या के अनुसार उन उन चक्रों के दलों में ये रुद्र निवास करते हैं। इनकी वर्ण और रूप के अनुसार छः स्थलों में उपासना की जाती है। इस प्रकार षड्विध लिंग की तृप्ति के लिये इन पचास रुद्रों की पूजा की जाती है॥३४-३५॥ बारहवें दिन पिता की तत्त्वसंयोजन—प्रक्रिया को सम्पन्न करना चाहिये। प्रयत्नपूर्वक इसका अनुष्ठान करने से चतुर्थ पुरुष [१६]की निवृत्ति

---

१५. षट्चक्रों के नाम योगशास्त्र एवं तन्त्रशास्त्र के ग्रन्थों में इस प्रकार मिलते हैं—मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, और आज्ञा। इनका विशेष परिचय "षट्चक्र निरूपण" नामक ग्रन्थ से प्राप्त किया जा सकता है। पूर्णानन्द परमहंस के ग्रन्थ श्रीतत्त्वचिन्तामणि का यह छठा प्रकाश हिन्दी अनुवाद के साथ चौखंबा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी से प्रकाशित है।

१६. सपिण्डीकरण में एकोद्दिष्ट एवं पार्वण के स्वरूप मिले हुए हैं; एक तो प्रेतवाला स्वरूप और

द्वादशेऽह्नि तु कर्तव्यं तत्त्वसंयोजनं पितुः ।
पुरुषस्य चतुर्थस्य निवृत्त्यर्थं प्रयत्नतः ॥
तत्त्वादियोजनेनैव चतुर्थो हि निवर्तते ॥३६॥

लिङ्गाङ्गसङ्गिनः सापिण्ड्यनिषेधः

लिङ्गाङ्गसङ्गिनि मृते सापिण्ड्यं न विधीयते ।
शिवलिङ्गाङ्गयोगेन शिवभावयुजः पितुः ॥
न योज्यमेव सापिण्ड्यं प्रेतभावनिवर्तकम् ॥३७॥

कलातत्त्वाराधनक्रमः

महेश्वरादिभिन्नेभ्यः पितृभ्यस्तत्त्वसंयुताः ।
कला आवाह्य पात्रे तु समभ्यर्च्य पितुस्तदा ॥
वर्गत्रयैक्यसिद्ध्यर्थं तत्त्वादीन् योजयेत् सुतः ॥३८॥
तत्त्वसंयोगविधिनाऽनुष्ठितेन यथाविधिः ।
महेशत्वादिसंसिद्धिः पित्रादेः स्यादसंशयम् ॥३९॥

हो जाती है, अर्थात् पिता, पितामह और प्रपितामह में उसका विलय हो जाता है। तत्त्व-संयोजन की प्रक्रिया से ही यह चतुर्थ भाव निवृत्त होता है॥३६॥

लिंगांगसामरस्य को प्राप्त व्यक्ति की मृत्यु होने पर उसकी सापिण्ड्यविधि नहीं की जाती। शिव के साथ सामरस्य हो जाने से शिवभाव को प्राप्त पिता के लिये प्रेतभाव के निवर्तक सापिण्ड्य कर्म की आवश्यकता ही नहीं रह जाती॥३७॥

इस प्रकार शिवसायुज्य को प्राप्त पितरों के लिये पितृपात्र में तत्त्वों के साथ कलाओं का आवाहन कर उनसे पूजाविधि सम्पन्न कर पुत्र को चाहिये कि पिता आदि के तीन वर्गों में अपने पिता के तत्त्वों[17] की योजना कर दे॥३८॥ इस तत्त्वसंयोजन प्रक्रिया का यथाविधि अनुष्ठान करने से पिता आदि को बिना संदेह के अवश्य ही

दूसरा प्रेत के तीन पितरों वाला, अतः इसमें दोनों प्रकार के श्राद्ध संमिलित हैं। जब सपिण्डीकरण का अन्त ब्राह्मणों के दक्षिणा दान से होता है, तो प्रेत प्रेतत्व छोड़ कर पितर हो जाता है। पितर हो जाने पर वह वसु, रुद्र और आदित्य नामक श्राद्ध-देवताओं के संसर्ग में आ जाता है। इसी को यहां चतुर्थ पुरुष की निवृत्ति कहा गया है। यहां हमें स्मरण रखना है कि वीरशैव मत में सपिण्डीकरण निषिद्ध है। उसके स्थान पर प्रेत की कलाओं और तत्त्वों का पिता, पितामह और प्रपितामह की कलाओं और तत्त्वों से संयोजन किया जाता है। इस प्रक्रिया से उस प्रेत का चतुर्थ भाव समाप्त हो जाता है।

१७. छत्तीस तत्त्वों के साथ पांच कलाओं और ३८ कलाओं की संयोजन-प्रक्रिया लिङ्गधारण-चन्द्रिका (पृ० २७१-२७७) में वर्णित है। इसके लिये द्वितीय पटल की तृतीय टिप्पणी में उद्धृत वीरशैवदीक्षाविधि (पृ० ८३-८४) भी देखिये।

अहनि द्वादशे कर्ता निमन्त्र्य विदुषो द्विजान् ।
गणाभ्यनुज्ञां संगृह्य चैवं संकल्पमाचरेत् ॥४०॥
पितुस्तदीयपित्राद्यैः करिष्यन् तत्त्वयोजनम् ।
नन्दिकेशमहाकालसंज्ञिनोर्विश्वदेवयोः ॥४१॥
पितुः पितामहादीनां महेशादिस्वरूपिणाम् ।
षट्त्रिंशतां च तत्त्वानां कलानामष्टत्रिंशताम् ॥
आराधनं करिष्यामीत्येवं संकल्पमाचरेत् ॥४२॥
विश्वेदेवौ च पित्रादीन् तत्त्वानि च कलास्तदा ।
आवाह्य चाभिसम्पूज्य चिकीर्षुस्तत्त्वयोजनम् ॥
गवादिदशदानानि कुर्यात् सन्तृप्तये पितुः ॥४३॥
तत्त्वानां च कलानां च संयोजनमतः परम् ।
कृत्वोनमासिकादीनि यथाकालं समाचरेत् ॥४४॥

महेशत्व अदि की प्राप्ति हो जाती है॥३९॥ [१८]तत्त्वसंयोजन विधि को सम्पन्न करने वाला व्यक्ति विद्वान् ब्राह्मणों को बारहवें दिन निमन्त्रित करे और शिवगण (जङ्गमों) की आज्ञा प्राप्त कर इस प्रकार संकल्प करे॥४०॥ मैं अपने पिता का उनके पिता, पितामह आदि से साथ संयोजन करने के लिये नन्दिकेश और महाकाल नामक विश्वेदेवों का पूजन करता हूँ ॥४१॥ मेरे पिता का महेश आदि का स्वरूप का धारण किये पिता, पितामह आदि के साथ संयोजन करने के लिये ३६ तत्त्वों की और ३८ कलाओं की आराधना करूँगा। इस प्रकार संकल्प करा॥४२॥ इसके बाद दोनों [१९]वैश्वदेवों का पिता, पितामह और प्रपितामह के तत्त्वों का और कलाओं का आवाहन और पूजन कर तत्त्वयोजन की प्रक्रिया में लगा हुआ व्यक्ति पहले पिता की तृप्ति की लिये गौ आदि दशविध [२०]द्रव्यों का दान करे॥४३॥ इसके बाद तत्त्वों और कलाओं का संयोजन कर ऊनमासिक आदि षोडशविध [२१]आराधन को यथाकाल

---

१८. तत्त्वसंयोजन प्रक्रिया के अनन्तर प्रेत के चतुर्थ भाव की निवृत्ति हो जाती है और महेश्वर, सदाशिव और शिवस्वरूप पिता, पितामह और प्रपितामह के वर्ग में महेश्वत्व प्राप्त कर लेता है।

१९. द्विविध वैश्वदेवों और महेश, सदाशिव और शिवपद प्राप्त पितरों के विषय में पंचम पटल के ३-५ श्लोक देखिये। ऊपर १४वीं टिप्पणी में दिये गये नामों से यहां के नामों में अन्तर है।

२०. दशविध दान के लिये ऊपर की दूसरी टिप्पणी देखिये।

२१. षोडशविध आराधन के विषय में यहां दो पक्ष वर्णित हैं। इसी पटल के २७वें श्लोक में बताया गया है कि सोलह आराधनों के बिना तत्त्वयोजन की प्रक्रिया नहीं करनी चाहिये और प्रस्तुत स्थल पर तत्त्व और कला के संयोजन के उपरान्त षोडश आराधनों का विधान निर्दिष्ट है। इन दोनों पक्षों का समन्वय अगले पटल के तेरहवें और सत्रहवें श्लोक में मिलता है।

इत्यौर्ध्वदेहिकविधिः शिवाश्रमनिषेविणाम् ।
बोधितस्तव वागीश निगमागमसम्मतः ॥४५॥

इति श्रीचन्द्रज्ञानागमे उत्तरभागेऽनन्तरुद्रबृहस्पतिसंवादे
शिवशासने चर्यापादे औध्र्वदेहिकविधिकथनं नाम
चतुर्थः पटलः।

पूरा करे॥४४॥ हे वागीश! इस प्रकार मैंने तुमको शिवाश्रम में निवास करने वाले पितरों के निमित्त की जाने वाली औध्र्वदैहिक कृत्य की निगम और आगम संमत विधि को बताया है॥४५॥

इस प्रकार अनन्तरुद्र और बृहस्पति के संवाद के रूप में प्रस्तुत इस
चन्द्रज्ञान नामक शैवशासन के उत्तर भाग के चर्यापाद का
औध्र्वदेहिक विधि का कथन करने वाला यह
चतुर्थ पटल समाप्त हुआ।।



पञ्चमः पटलः

बृहस्पतिरुवाच

अनन्तगुणवाराशे अनन्तकरुणाकर ।
अनन्तरुद्र भगवन् प्रणतोऽस्म्यनुगृहाण माम् ॥
प्रकीर्णकविधिं ब्रूहि विधाने ह्यौर्ध्वदेहिके ॥१॥

अनन्तरुद्र उवाच

की
प्रकिर्णविधिनिरूपणम्

गीष्पते ते प्रवक्ष्यामि प्रकीर्णकविधिं परम् ।
येन सम्यङ् निवर्तेरन् कर्तॄणां सर्वसंशयाः ॥२॥

पूर्वशैवाद्युक्तपितृगणः

विश्वदेवौ पूर्वशैवे रुद्रानन्तसमाह्वयौ ।
स्कन्दश्चण्डो गणेशश्च पितरः परिकीर्तिताः ॥३॥
नन्दी चैव महाकालो विश्वेदेवौ तदुत्तरे ।
पितरः स्युर्महेशश्च सदाशिवशिवौ मतौ ॥४॥
वस्वादिरूपाः पितरः पितृलोकनिवासिनः ।
महेश्वरादिरूपाः स्युर्मम लोकनिवासिनः ॥५॥

बृहस्पति प्रश्न करते हैं—

हे अनन्त गुणों के सागर, अनन्त करुणा के प्रदाता भगवन् अनन्तरुद्र! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। मेरे ऊपर अनुग्रह करके आप और्ध्वदेहिक विधान की प्रकीर्णक विधि को मुझे बताइये॥१॥

अनन्तरुद्र उत्तर देते हैं—

हे बृहस्पति! मैं तुम्हें प्रकीर्णक विधि को ठीक से बताता हूँ, जिससे कि इस विधि का अनुष्ठान करने वालों के भी सभी संशय दूर हो जायेंगे॥२॥

पूर्वशैव मत के अनुसार रुद्र और अनन्त विश्वेदेव कहलाते हैं और स्कन्द, चण्ड एवं गणेश पिता, पितामह और प्रपितामह नाम के पितृगण माने गये हैं॥३॥ उत्तर शैव में नन्दी और महाकाल विश्वेदेव माने गये हैं और पितरों में महेश, सदाशिव और शिव की गणना की जाती है॥४॥ पितृलोक में निवास करने वाले वसु आदि की पितरों के रूप में गणना होती है और मेरे शिवलोक में निवास करने वाले महेश्वर आदि के रूप में रहते हैं॥५॥

शैवश्राद्धेषु वर्ज्यानि

अपसव्यं तिलान् पिण्डं विकिरं चाग्निकर्म च ।
अर्घ्यपात्रं च मतिमान् शैवश्राद्धेषु वर्जयेत् ॥६॥

ग्राह्यद्रव्याणि

निषिध्यन्ते क्वचिद्दर्भा आगमे यद्यपि क्वचित् ।
तदत्यावश्यकत्वस्य निषेधस्तेन गृह्यताम् ॥७॥
श्रीगन्धश्चाक्षतो धूपो दीपः सज्याश्च वर्तिकाः ।
पुष्पाणि बिल्वपत्राणि दक्षिणा वसनानि च ॥
ताम्बूलं भस्मघुटिका द्रव्याण्याराधने स्मृताः ॥८॥

तत्त्वसंयोजनक्रमः

दम्पत्यो सह लिङ्गैक्ये समाध्यादिक्रियाः सह ।
प्राक्समाधेरन्यसिद्धौ तदूर्ध्वं चेत्क्रियाः पुनः ॥९॥
अनुजेन पितुः कर्म कृतं चेज्ज्येष्ठ आगतः ।
एकोद्दिष्टं विना कुर्यात् तत्त्वसंयोजनं पुनः ॥१०॥

---

[१]अपसव्यीकरण, तिल, पिण्ड, विकिर, अग्नि-कर्म और अर्घ्यपात्र—बुद्धिमान् व्यक्ति को चाहिये कि इन सबको शैव श्राद्ध में वर्जित माने॥६॥

यद्यपि किसी किसी आगम में दर्भ के ग्रहण का भी निषेध किया गया है, किन्तु उस निषेध का इतना ही तात्पर्य है कि वह बहुत आवश्यक नहीं है। अतः दर्भ का ग्रहण यहां करना ही चाहिये॥७॥ श्रीगन्ध, अक्षत, धूप, दीप, घृत से युक्त बत्तियां, पुष्प, बिल्वपत्र, दक्षिणा, वस्त्र, ताम्बूल (पान) भस्म की गुटिका—ये सब द्रव्य पितरों की आराधना में भी प्रयुक्त होते हैं॥८॥

दम्पती के एक साथ लिंगैक्य होने पर समाधि आदि की क्रियाएं भी साथ में ही की जाती हैं। ऐसा तभी किया जाता है, जब कि समाधि के बनने से पहले ऐसा हुआ हो। समाधि बन जाने के बाद तो सारी क्रियाएं पुनः करनी चाहिये॥९॥ पिता

---

१. शैव शास्त्र में यहां छः वस्तुओं का उपयोग वर्जित किया गया है। वैदिक विधि के अनुसार पितृकार्य करते समय यज्ञोपवीत को अपसव्य, अर्थात् बांये कन्धे से हटाकर दाहिने कन्धे पर धारण करना पड़ता है। पितृपूजा में अक्षत के स्थान पर तिल का उपयोग होता है। पितरों को चांवल या जौ के आटे के बने पिण्ड दिये जाते हैं। बिना संस्कारों के मृत व्यक्तियों के लिये दर्भों पर दिये गये नैवेद्य को विकिर कहते हैं। आहिताग्नि के लिये श्राद्ध के अवसर पर अग्नि में आहुतियां दी जाती है और पितरों के पूजन के समय तिलमिश्रित जल का अर्घ्य देने के लिये अर्घ्यपात्र रखा जाता है।

ज्येष्ठेन तु पितुः कर्म कृतं चेत्तत आगतः ।
दशाहान्तेऽनुजः कुर्यात् पार्वणाराधनं पुनः ॥
कनिष्ठोऽप्याहिताग्निस्तु कुर्याद्वै तत्त्वयोजनम् ॥११॥
दशाहमध्ये चेत्कर्तुः शावाशौचान्तरागमः ।
तस्य शुद्धिः पूर्वशेषादेकोद्दिष्टं यथोदितम् ॥१२॥
तत्त्वसंयोजनं कुर्यात् पित्रादेः प्रयतः सुतः ।
ततः संवत्सरे पूर्णे द्वादशाहेऽथवा सुधीः ॥१३॥
तत्त्वसंयोजनं कुर्याद् वत्सरान्ते यदा पुनः ।
ऊनाब्दिकात् परं कुर्यादाब्दिकात् पूर्ववासरे ॥१४॥
द्वादशाहप्रभृतिषु षट्सु कुर्याद्दिनेषु वा
त्रिपक्षे मासि षष्ठे वा वत्सरान्ते शुभागमे ॥१५॥

का कार्य यदि छोटे भाई ने किया है, तो ज्येष्ठ भ्राता के आने पर एकोद्दिष्ट विधि के सिवाय तत्त्वसंयोजन की प्रक्रिया का पुनः अनुष्ठान किया जाता है॥१०॥ ज्येष्ठ भ्राता के पिता का कार्य सम्पन्न करने के उपरान्त यदि दशाह के बाद छोटा भाई आता है, तो उसे [२]पार्वण आराधन पुनः करना चाहिये। यदि कनिष्ठ भ्राता भी अग्निहोत्री है, तो उसे भी तत्त्वसंयोजन की प्रक्रिया को सम्पन्न करना चाहिये॥११॥ दशाह के बीच में कर्ता को यदि [३]शावाशौच (मरणाशौच) की प्राप्ति होती है, तो उसकी शुद्धि पूर्व के आशौच के बचे दिनों में हो जाती है, जैसा कि [४]एकोद्दिष्ट के संबन्ध में कहा गया है॥१२॥ पुत्र को चाहिये कि वह पवित्र मन से पिता आदि की तत्त्वसंयोजन की विधि को सम्पन्न करे। यह विधि द्वादशाह के दिन अथवा वर्ष के सारे कृत्यों के पूरा हो जाने पर की जाती है॥१३॥ यदि वर्ष के अन्त में तत्त्वसंयोजन करना है, तब ऊनाब्दिक कृत्य के बाद आब्दिक कर्म का अनुष्ठान करने के पहले दिन इसका अनुष्ठान करे॥१४॥ अथवा द्वादशाह इत्यादि छः दिनों में से किसी एक दिन इस तत्त्वसंयोजन की प्रक्रिया को सम्पन्न करे। तीसरे पक्ष में , छठे मास में अथवा वत्सर की समाप्ति की शुभ वेला में, एकादशाह के दिन अथवा यदि इस बीच में दर्श तिथि पड़े तो

---

२. पिता, पितामह और प्रपितामह को उद्दिष्ट कर किये गये श्राद्ध का नाम पार्वण है। अन्य सभी श्राद्धों में यह प्रधान है। धर्मशास्त्र, (पृ. १२४६-१२७७) में इसका विस्तार से वर्णन है।

३. आशौच के दो प्रकार हैं—१, जन्म से उत्पन्न, जिसे जननाशौच या सूतक कहा जाता है; तथा २. मरण से उत्पन्न, जिसे शावाशौच या मरणाशौच कहा जाता है। 'शाव' शब्द 'शव' से बना है (देखिये—धर्मशास्त्र०, पृ० ११५८)।

४. पार्वण श्राद्ध के समान एकोद्दिष्ट श्राद्ध का और उसके अन्य प्रकारों का भी धर्मशास्त्र० (पृ. १२७८-८३) में विस्तार से वर्णन है। चतुर्थ पटल की १६वीं टिप्पणी भी देखिये।

एकादशाह एवाथ यदि दर्शः समापतेत् ।
तदैव तद्विधायादौ पितृयज्ञं समाचरेत् ॥
पितुर्महागुरोः कुर्यात् त्रयोदशदिने तथा ॥१६॥

तत्त्वसंयोजनषोडशाराधनयोर्व्यवस्था

तत्त्वसंयोजनमृते षोडशाराधने कृते ।
संवत्सरे व्यतीते तु पुनः कुर्वीत षोडशम् ॥१७॥
तत्त्वसंयोजनादर्वाक् षोडशाराधनानि च ।
एकोद्दिष्टविधानेन कुर्यात् सर्वाण्यतन्द्रितः ॥१८॥
तत्त्वसंयोजनादूर्ध्वं यदा कुर्यात्तदा पुनः ।
प्रत्यब्दं यो यथा कुर्यात्तथा कुर्याद्विचक्षणः ॥१९॥
तत्त्वसंयोजनं कृत्वा कुर्यात् पार्वणवत् ततः ।
प्रत्याब्दिकाराधनादीन् विधिरेष सनातनः ॥२०॥
तत्त्वसंयोजनादूर्ध्वमेकोद्दिष्टं विधीयते ।
यत्र तद् दैवयुक्तं स्याद्दैवहीनं वृथा भवेत् ॥२१॥

तत्त्वसंयोजनाकरणे प्रत्यवायः

तत्त्वसंयोजनविधिमकृत्वा शुभकर्मकृत् ।
प्रत्यवैति ध्रुवं श्रेयो नाप्नुयादिति निश्चयः ॥

पहले तत्त्वसंयोजन की प्रक्रिया को पूरा करके तब पितृयज्ञ का अनुष्ठान करे। पिता की और महागुरु की तत्त्वसंयोजन प्रक्रिया तेरहवें दिन की जाती है॥१५-१६॥

तत्त्वसंयोजन की प्रक्रिया को पूरा किये बिना यदि षोडश आराधन किया जाता है, तो ऐसी स्थिति में संवत्सर के बीत जाने पर पुनः षोडश आराधन करे॥१७॥ तत्त्वसंयोजन से पहले षोडश आराधन एकोद्दिष्ट विधान से सावधानीपूर्वक करने चाहिये॥१८॥ यदि कोई तत्त्वसंयोजन के बाद षोडश आराधन करता है, तो उसे प्रति वर्ष उसी पद्धति का अनुसरण करना चाहिये। इसी में बुद्धिमत्ता है॥१९॥ सनातन पद्धति तो यही है कि तत्त्व संयोजन करके प्रति वर्ष के आराधन आदि कर्मों को [५]पार्वण श्राद्ध की पद्धति से सम्पन्न करे॥२०॥ जहां तत्त्वसंयोजन के बाद एकोद्दिष्ट-विधि सम्पन्न की जाती है, तभी वह कर्म फलवान् होता है, अन्यथा वह निष्फल हो जाता है॥२१॥

तत्त्वसंयोजन की विधि को सम्पन्न किये बिना जो व्यक्ति शुभ कार्य करता है, तो वह अवश्य ही प्रायश्चित्त का भागी होता है। यह भी निश्चित है कि उसका कभी

५. ऊपर की दूसरी टिप्पणी देखिये।

मुख्येऽन्यस्मिन् कर्तरि तु शुभं कर्म समाचरेत् ॥२२॥
द्वादशाहं समारभ्य तृप्तये वत्सरावधि ।
दद्यादहरहः कुम्भं सजलं सप्रसादकम् ॥२३॥
पितुः शिवपदप्राप्त्यै तत्त्वसंयोजनात् परम् ।
आहिताग्निस्तु कुर्वीत पितृयज्ञं विधुक्षये ॥२४॥

द्विविधमाराधनं तस्य त्रैविध्यं च

एकोद्दिष्टं पार्वणं चेत्युक्तमाराधनं द्विधा ।
नित्यं नैमित्तिकं काम्यमिति तत्त्रिविधं पुनः ॥२५॥
आब्दिकं दार्शिकं चैव तन्महालयसंज्ञकम् ।
दैनन्दिनं च नियतोपाधिकं नित्यमुच्यते ॥२६॥
संक्रान्तौ ग्रहणे चोक्तं तत्त्वसंयोजनं तथा ।
एकोद्दिष्टं वृद्धिसंज्ञं नैमित्तिकमुदाहृतम् ॥२७॥
मन्वादौ च युगादौ च तथा लभ्येषु प्रायशः ।
योगेषु क्रियते यत्तत् काम्यमित्यभिधीयते ॥२८॥

कल्याण नहीं हो सकता। यदि और्ध्वदेहिक कृत्य का कर्ता कोई दूसरा है, तो इस स्थिति में वह शुभ कर्म कर सकता है॥२२॥ पितृगण की तृप्ति के लिये द्वादशाह से लेकर पूरे वर्ष भर प्रसाद के साथ जल से भरे कुंभ का प्रतिदिन दान करना चाहिये॥२३॥ पिता की शिव पद की प्राप्ति के लिये तत्त्वसंयोजन के बाद आहिताग्नि व्यक्ति अमावस्या के दिन पितृयज्ञ का अनुष्ठान करे॥२४॥

एकोद्दिष्ट और पार्वण के भेद से आराधन दो प्रकार का होता है। नित्य, नैमित्तिक, काम्य के भेद से यह पुनः त्रिविध हो जाता है॥२५॥ प्रत्येक संवत्सर पर होने वाला अमावस्या के दिन होने वाला और श्राद्ध पक्ष में होने वाला श्राद्ध नित्य कहलाता है। दैनन्दिन और नियतोपाधिक श्राद्ध की भी इसी में गणना होती है॥२६॥ संक्रान्ति के अवसर पर, ग्रहण के समय, तत्त्वसंयोजन के समय किया गया श्राद्ध, एकोद्दिष्ट और [६]वृद्धिसंज्ञक श्राद्ध नैमित्तिक कहलाता है॥२७॥ समय समय पर

---

६. नान्दीश्राद्ध एवं वृद्धिश्राद्ध शब्द पर्यायवाची हैं। याज्ञवल्क्य स्मृति (१। २५०) में ऐसा कथन है कि वृद्धि (शुभावसर, यथा पुत्रोत्पत्ति) के अवसर पर नान्दीमुख पितरों की पिण्डों से पूजा करनी चाहिये, जो इसका संकेत है कि नान्दीश्राद्ध एवं वृद्धिश्राद्ध दोनों समान ही हैं। आभ्युदयिक श्राद्ध एवं वृद्धिश्राद्ध को भी समान माना गया है (धर्मशास्त्र० पृ० १२८३-८५)। आभ्युदयिक श्राद्ध का विवरण वहीं (पृ. १२८३-८५) देखिये।

श्राद्धपदनिरुक्ति:

पित्रोराराधनं सर्वमास्तिक्यमतिभिर्नरै: ।
श्रद्धया क्रियते यस्माच्छ्राद्धमित्यभिधीयते ॥२९॥
अपेक्षितं न प्रयच्छेत् सम्पादितपदार्थके ।
न स तत्फलमाप्नोति कृपणो गर्ह्यचेतन: ॥३०॥

श्राद्धभोक्तृणां नियमा:

साधितेषु पदार्थेषु याचितव्यमपेक्षितम् ।
अन्यथा स पितृघ्न: स्यादसन्तृप्तान्नभोजन: ॥३१॥
भोक्ता तु दक्षिणां नेच्छेत् कर्ता दद्याच्च दक्षिणाम् ।
कृतार्थौ तावुभौ स्यातामन्यथा दोषभाजनौ ॥३२॥
कर्ममध्ये तु यो ब्रूते नालं मे दक्षिणेति च ।
कर्ताऽपि चेन्न प्रयच्छेत् तौ दुर्गतिमवाप्नुत: ॥३३॥

उपलब्ध होने वाले [७]मन्वादि और युगादि योगों के अवसर पर प्राय: जो श्राद्ध किया जाता है, उसे काम्य श्राद्ध कहते हैं॥२८॥

आस्तिक बुद्धि वाले मनुष्यों के द्वारा श्रद्धा-भक्ति के साथ अपने माता-पिता की यह आराधना की जाती है, अत: इसे श्राद्ध कहते हैं॥२९॥ श्राद्ध के अवसर पर संपादित पदार्थों में जो व्यक्ति अपेक्षित सामग्री को निमन्त्रित व्यक्तियों को नहीं परोसता, वह कृपण व्यक्ति लोक में गर्हित स्वभाव का माना जाता है। वह कभी श्राद्ध के फल को प्राप्त नहीं कर सकता॥३०॥

निमन्त्रित व्यक्तियों को भी चाहिये कि श्राद्ध के लिये साधित पदार्थों में से वे अपनी रुचि के पदार्थ को मांग लें। जो ऐसा नहीं करता, वह व्यक्ति परोसे गये अन्न से स्वयं भलीभांति तृप्त न हो पाने के कारण पितरों को भी अतृप्त रख देता है और इस प्रकार वह पितृघ्न माना जाता है॥३१॥ भोक्ता दक्षिणा की इच्छा न करे और श्राद्धकर्ता दक्षिणा अवश्य दे। इस तरह के दोनों व्यक्ति कृतार्थ माने जाते हैं। इसके विपरीत आचरण करने वाले दोष के भागी होते हैं॥३२॥ श्राद्ध-कर्म करते समय जो

७. ***मन्वादि,*** अर्थात् १४ मनुओं या मन्वन्तरों की प्रथम तिथियां इस प्रकार हैं— आश्विन शुक्ल नवमी, कार्तिक शुक्ल द्वादशी, चैत्र एवं भाद्रपद शुक्ल तृतीया, फाल्गुन की अमावस्या, पौष शुक्ल एकादशी, आषाढ शुक्ल दशमी एवं माघ शुक्ल सप्तमी, श्रावण कृष्ण अष्टमी, आषाढ, कार्तिक, फाल्गुन, चैत्र एवं ज्येष्ठ की पूर्णिमा। ***युगादि*** अर्थात् चारों युगों के प्रथम दिन ये हैं–वैशाख शुक्ल तृतीया, कार्तिक शुक्ल नवमी, भाद्रपद कृष्ण त्रयोदशी एवं माघ की अमावस्या। कर्नाटक और महाराष्ट्र में युगादि के रूप में चैत्र शुद्ध प्रतिपदा मान्य है। पंचांगों में ऐसा कोई निर्देश नहीं है। संभवत: वत्सरारंभ को ही इस रूप में मनाने की रूढि वहां चल पड़ी है।

देशकालादिषु विशेषः

विप्लवे देशकालाभ्यां विदेशगमनादिषु ।
चन्द्रसूर्योपरागे च हेम्ना वाऽऽमेन वा पुनः ॥
कार्यमाराधनं प्रत्याब्दिकमासिकवर्जितम् ॥३४॥

इति श्रीचन्द्रज्ञानागमे उत्तरभागेऽनन्तरुद्रबृहस्पतिसंवादे
शिवशासने चर्यापादे प्रकीर्णकविधिकथनं
नाम पञ्चमः पटलः॥

व्यक्ति कहता है कि मुझे पर्याप्त दक्षिणा नहीं मिली और मांगने पर भी कर्ता यदि उसकी इच्छापूर्ति नहीं करता, तो ये दोनों ही व्यक्ति दुर्गति को प्राप्त होते हैं॥३३॥

विदेश-गमन आदि के कारण देश और काल का व्यतिक्रम हो जाने पर तथा चन्द्र और सूर्यग्रहण के अवसर पर सुवर्ण से अथवा बिना पकाये अन्न से उक्त आराधन करना चाहिये। सांवत्सरिक और मासिक श्राद्ध को तो यथाविधि ही करना चाहिये॥३४॥

इस प्रकार अनन्तरुद्र और बृहस्पति के संवाद के रूप में
प्रस्तुत इस चन्द्रज्ञान नामक शैवशासन के उत्तर भाग
के चर्यापाद का प्रकीर्णक विधि का कथन करने
वाला यह पंचम पटल समाप्त हुआ॥

❋ ❋ ❋

षष्ठः पटलः

बृहस्पतिरुवाच

अनन्तरुद्र सर्वज्ञ सर्वागमविशारद ।
आशौचशुद्धिं वद मे कृपया करुणाकर ॥१॥

अनन्तरुद्र उवाच

द्विविधमाशौचं पुनश्चतुर्धा

आशौचशुद्धिं वक्ष्यामि शृणुष्वावहितो मुने ।
जनिजं मृतिजं चेति प्रोक्तमाशौचकं द्विधा ॥
तदल्पमधिकं पूर्णमपूर्णं च चतुर्विधम् ॥२॥
कालतोऽल्पाधिकं ज्ञेयमपूर्णं तु त्रिरात्रकम् ।
पूर्णं दशाहं विज्ञेयं सुरलोकाभिवन्दित ॥३॥

आशौचे दिवसव्यवस्था

मातुस्त्रिरात्रं स्त्रावे स्यात् तज्ज्ञातीनां न विद्यते ।
माससंख्यं हि मातुः स्यात् पाते तं त्रिदिनं पितुः ॥४॥

बृहस्पति प्रश्न करते हैं —

हे सर्वज्ञ, सभी आगमों में निष्णात, सभी पर करुणा करने वाले, अनन्तरुद्र देव! कृपा कर आप मुझे आशौच से शुद्धि की विधि बताइये ॥१॥

अनन्तरुद्र उत्तर देते हैं —

हे मुनि बृहस्पति! मैं आशौच की शुद्धि की विधि तुमको बताऊँगा, तुम उसे सावधानी से सुनो। यह आशौच दो प्रकार का होता है — एक तो परिवार में किसी का जन्म होने पर, दूसरा मृत्यु होने पर। अल्प, अधिक, पूर्ण और अपूर्ण के भेद से यह पुनः चार प्रकार का होता है॥२॥ हे सुरलोक में पूजित बृहस्पति! काल के अनुसार अल्प और अधिक की व्यवस्था जाननी चाहिये। अपूर्ण आशौच तीन रात्रि का और पूर्ण दस रात्रि का माना जाता है॥३॥

गर्भस्त्राव[1] होने पर माता को तीन रात्रि का आशौच रहता है। यह आशौच ज्ञातिजन को नहीं लगता। जितने मास के गर्भ का स्त्राव होता है, माता को उतने दिन

---

१. गर्भ के ठहरने के उपरान्त चार महीनों तक के गर्भ के गिरने को स्त्राव कहा जाता है, पाँचवें या छठे महीने के गर्भ के गिरने को पात तथा सातवें या इसके पश्चात् के गर्भ के गिरने को प्रसूति या प्रसव कहा जाता है। स्त्राव में माता को तीन दिन का सूतक लगता है, पात में उतने दिनों का सूतक लगता है, जितने महीने के पश्चात् वह होता है(५ या ६ दिनों का)। स्त्राव

विप्राणां तु दशाहं स्यान्नृपाणां द्वादशाहकम् ।
विशां पञ्चदशाहं स्यान्मासः शूद्रस्य चोदितम् ॥५॥
अतिक्रान्ते दशाहे तु जाताशौचं न विद्यते ।

ज्ञातीनां शुद्धिव्यवस्था

मृते जाते हि ज्ञातीनां शुद्धिः स्यात् स्नानमात्रतः ॥
सोदराणां च दम्पत्योर्विशुद्धिः स्याद्दशाहतः ॥६॥
मृतावनुपनीतस्य पित्रोस्तु त्रिदिनं स्मृतम् ।
उपनीतस्य तु मृतौ दशाहं सम्प्रकीर्तितम् ॥७॥
आसप्तमं दशाहं स्यात्त्रिरात्रं त्वाचतुर्दशम् ।
स्नानमात्रं त्वैकविंशमाशौचं विद्यते मुने ॥८॥
मातुलादिमृतौ ज्ञेयं त्रिरात्रं सुरसन्नुत ।
बान्धवानां तु मरणे पक्षिणी विहिता पुनः ॥९॥

का और पिता को तीन दिन का आशौच लगता है।॥४॥ [२]ब्राह्मणों के लिये दस दिन का, क्षत्रियों के लिये बारह दिन का, वैश्यों के लिये पन्द्रह दिन का और शूद्र के लिये एक मास का मरणाशौच माना गया है।॥५॥

दस दिन बीत जाने पर जाताशौच समाप्त हो जाता है। मरे हुए बच्चे का जन्म होने पर ज्ञातिजन की शुद्धि स्नानमात्र से हो जाती है। सगे भाईयों की और माता-पिता की शुद्धि दस दिन बीतने पर होती है।॥६॥ उपनयन संस्कार होने से पहले मृत्यु होने पर तीन दिन का और उपनयन संस्कार के बाद मृत्यु होने पर दस दिन का आशौच रहता है।॥७॥ सातवीं पीढी तक दस दिन का, चौदहवीं पीढी तक तीन रात्रि का और इक्कीसवीं पीढी तक केवल स्नान करने तक का आशौच रहता है।॥८॥ हे सुरपूजित बृहस्पति! मातुल (मामा) आदि की मृत्यु पर तीन रात्रि का आशौच माना जाता है। बान्धवों की मृत्यु पर [३]पक्षिणी के अनुसार व्यवस्था की जाती है।॥९॥ तीन मास तक

में केवल पिता को अशुद्धि लगती है, किन्तु पात में पिता के साथ सपिण्डों को भी तीन दिन का सूतक लगता है (धर्म०, पृ० ११६१)। यही विषय यहां भी प्रतिपादित है।

२. मनुस्मृति (५।८३) आदि के प्रमाण से यह विषय धर्मशास्त्र०, (पृ० ११५९-६९) में आशौचावधि, अतिक्रान्ताशौच इत्यादि शीर्षकों से विस्तार से वर्णित है।

३. ''आगामिवर्तमानाहर्युक्तायां निशि पक्षिणी'' (१.४.५) अमरकोश के इस वचन में पक्षिणी की परिभाषा दी गई है। धर्मशास्त्र० में इसकी द्विविध व्याख्या प्रस्तुत की गई है — ''दो रात एवं मध्य में एक दिन या दो दिन एवं मध्य में एक रात (पृ० ११६३)। अमरकोश में द्वितीय पक्ष मान्य हुआ है।

त्रिरात्रमात्रिमासं स्यादाषण्मासं तु पक्षिणी ।
आवत्सरमहोरात्रं ततः स्नात्वा विशुद्ध्यति ॥१०॥

आशौचानां तन्त्रेण निवृत्तिः

तन्त्रेणैव विशुद्धिः स्यादनेकेषां समागमे ।
अल्पं समानमपि च प्रथमेन निवर्तते ॥
आशौचमन्यदीयं तु पित्राशौचेन बाध्यते ॥११॥
शवानुगमने विप्रः स्नात्वोद्धूल्य च भस्मना ।
प्राणानायम्य षट्कृत्वः शिवं दृष्ट्वा विशुद्ध्यति ॥१२॥

आशौचाप्रवृत्तिः

यतीनां च वनस्थानां नैष्ठिकानां च वर्णिनाम् ।
जनिजं मृतिजं वाऽपि नाशौचमिह विद्यते ॥१३॥

सद्यःशौचव्यवस्था

यज्ञे विवाहे दाने च संग्रामे देशविप्लवे ।
आपद्यपि च कष्टायां सद्यःशौचं विधीयते ॥१४॥
दैवेषु राजकीयेषु साङ्घिकेषु च कर्मसु ।
नियुक्तानां तु सर्वेषां सद्यःशौचं विधीयते ॥१५॥

तीन रात्रि का, छः मास तक पक्षिणी पर्यन्त और पूरे वर्ष तक एक अहोरात्र का आशौच रहता है। इसके बाद केवल स्नान से शुद्धि हो जाती है॥१०॥

अनेक आशौचों के एक साथ आ पड़ने पर उन सबकी एक साथ ही शुद्धि हो जाती है। थोड़े दिन का या समान दिन का आशौच प्रथम आशौच के साथ निवृत्त हो जाता है। माता-पिता के आशौच से अन्य आशौच बाधित हो जाते हैं॥११॥ ब्राह्मण शवयात्रा में जाने पर स्नान करके, भस्मोद्धूलन और छः बार प्राणायाम कर और शिव का दर्शन कर शुद्ध होता है॥१२॥

[४]यति, वानप्रस्थ, नैष्ठिक ब्रह्मचारी इन सबको जननाशौच या मरणाशौच नहीं लगता॥१३॥

यज्ञ, विवाह आदि के अवसरों पर, दान आदि करते समय, संग्राम या देशविप्लव के उपस्थित हो जाने और भयंकर कष्टकर आपत्ति के समय तत्काल शुद्धि

---

४. यही विषय धर्मशास्त्रों में भी प्रतिपादित है। नैष्ठिक ब्रह्मचारी के लिये कहा गया है कि ये जीवन भर वेदाध्ययन करते रहते हैं और गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट नहीं होते। अतः इनको सूतक नहीं लगता। यही बात यति और वानप्रस्थ पर भी लागू होती है। विशेष जानकारी के लिये धर्म०, (पृ० ११७२-७५) देखिये।

सन्ध्यादिष्वाशौचाप्रवृत्तिः

स्वकर्मकाले संशुद्धिः सर्वशास्त्रेषु चोदिता ।
अतः सन्ध्यामर्चनमप्याशौचे न परित्यजेत् ॥१६॥
संशुद्धिः संग्रहेणोक्ता सकलागमचोदिता ।
मुनिवृन्दारकस्तुत्य किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥१७॥

इति श्रीचन्द्रज्ञानागमे उत्तरभागेऽनन्तरुद्रबृहस्पतिसंवादे शिवशासने चर्यापादे आशौचशुद्धिकथनं नाम षष्ठः पटलः ॥

का विधान है॥१४॥ इसी तरह से देवकार्य में, राजकीय कार्य में और संघ के कार्य में नियुक्त व्यक्तियों के लिये भी तत्काल शुद्धि की व्यवस्था मानी गई है॥१५॥

नित्य[५]कर्म का समय आने पर सभी शास्त्रों में तत्काल शुद्धि का विधान किया गया है। अतः सन्ध्या, शिवपूजन आदि का कभी परित्याग न करे॥१६॥ मुनियों और देवताओं के द्वारा संस्तुत हे बृहस्पति! इस तरह से मैंने समस्त आगमों में बताई गई शुद्धि की व्यवस्था संक्षेप में तुमको सुनाई । अब और तुम क्या सुनना चाहते हो॥१७॥

इस प्रकार अनन्तरुद्र और बृहस्पति के संवाद के रूप में प्रस्तुत इस चन्द्रज्ञान नामक शैवशासन के उत्तर भाग के चर्यापाद का आशौच शुद्धि को बताने वाला यह छठा पटल समाप्त हुआ।।

---

५. इस विषय पर भी उक्त ग्रन्थ में विचार किया गया है (धर्मशास्त्र० ११७५-७६)। सद्यःशौच का विवरण पृ० ११७२-७३ पर भी देखिये ।



सप्तमः पटलः

बृहस्पतिरुवाच

अपारमहिमाधारानन्तरुद्र नमोऽस्तु ते ।
प्रायश्चित्तविधिं ब्रूहि सर्वदोषनिवर्तकम् ॥१॥

अनन्तरुद्र उवाच

प्रायश्चित्तविधिनिरूपणम्

अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तविधिं परम् ।
उद्बन्धनमृता मर्त्या निरयं यान्त्यसंशयम् ॥
नाशौचमुदकं तेषां समाधिर्वा विधीयते ॥२॥

उद्बन्धनमृतवाहकानां प्रायश्चित्तम्

उद्बन्धनमृतं चैव गोब्राह्मणहतं तथा ।
संस्पृशन्त्यनुगच्छन्ति वहन्ति निखनन्त्यपि ॥
ये नरास्ते विशुद्ध्यन्ति तप्तकृच्छ्रेण गीष्पते ॥३॥

बृहस्पति प्रश्न करते हैं—

अपार महिमा के आधारभूत हे अनन्तरुद्र! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आप मुझे सभी दोषों को दूर करने वाली प्रायश्चित्त की विधि को बताइये॥१॥

अनन्तरुद्र उत्तर देते हैं—

अब मैं तुमको प्रायश्चित्त की विधि को बताऊँगा। फाँसी लगाकर [1]आत्महत्या कर लेने वाले मनुष्य निःसंदेह नरक में जाते हैं। उनके लिये आशौच, उदकक्रिया अथवा समाधि का कोई विधान नहीं किया जाता॥२॥

फाँसी लगाकर मरने वाले और गौ एवं ब्राह्मण हत्या करने वाले व्यक्ति का जो स्पर्श करते हैं, श्मशान में उनका अनुगमन करते हैं, उनको ढोकर ले जाते हैं और उनको गाड़ते हैं, हे बृहस्पते! उन सब की शुद्धि [2]तप्तकृच्छ्र नामक व्रत का अनुष्ठान करने से होती है॥३॥

---

१. इस विषय के विस्तृत परिचय के लिये धर्मशास्त्र० (पृ० ११३२, ११७६-७७) देखिये।

२. म. म. पी. वी. काणे ने अपने धर्मशास्त्र के इतिहास के चतुर्थ खण्ड के ३-६ अध्यायों में प्रायश्चित्त संबन्धी विचार प्रस्तुत किये हैं। यहां पांचवें अध्याय में (पृ० १०८१-९५) प्रायश्चित्तों का परिचय भी दिया गया है। तदनुसार तप्तकृच्छ्र के विषय में वहां (पृ० १०८६) कहा गया है कि इसके विषय में कई मत हैं। मनु (११.२१४) इत्यादि ने इसे १२ दिनों का माना है और तीन-तीन दिनों की चार अवधियां निर्धारित की है। इनमें तीन अवधियों के अन्तर्गत एक अवधि में गरम जल, दूसरी में गरम दूध एवं तीसरी में गरम घी पीना पड़ता है और आगे तीन दिनों तक पूर्ण उपवास रहता है, गर्म वायु का पानमात्र किया जाता है।

तप्तकृच्छ्रलक्षणम्

तप्तक्षीरघृताम्बूनामेकैकं प्रत्यहं पिबेत् ।
एकरात्रोपवासश्च तप्तकृच्छ्र इतीर्यते ॥४॥
नहि शुष्कोपवासोऽस्ति शिवाश्रमनिषेविणाम् ।
उपवासप्रतिनिधिं नक्तभोजनमाचरेत् ॥५॥

संसर्गप्रायश्चित्तम्

आचरेन्न तु संसर्गं पतितैः सर्वदा द्विजः ।
यावदब्दं हि संगच्छन् प्रायश्चित्तेन शुद्ध्यति ॥
तदूर्ध्वं तत्समः प्रोक्तस्तन्निष्कृत्यै स नार्हति ॥६॥
चरेत् पञ्चाहसंसर्गे कृच्छ्रं त्रैरात्रिकं द्विजः ।
प्राजापत्यं दशाहे सान्तपनं द्वादशाहके ॥७॥

प्रतिदिन गरम दूध, घृत और जल का क्रमशः तीन दिन तक पान करने के बाद एक रात्रि का जो उपवास किया जाता है, उसे तृप्तकृच्छ्र कहा जाता है।।४।। [3]शिवाश्रम के धर्मों का पालन करने वाले, अर्थात् शैव दीक्षा से सम्पन्न वीरशैवों के लिये शुष्क उपवास का विधान नहीं किया गया है, अतः वे उपवास के स्थान पर दिन भर अन्न न ग्रहण कर रात्रि में भोजन करें।।५।।

द्विज को चाहिये कि वह पतित व्यक्तियों का कभी संसर्ग न करे। वर्ष भर तक पतितों से संसर्ग रखने वाला व्यक्ति प्रायश्चित्त करने से शुद्ध होता है, किन्तु इसके बाद भी वह यदि उनसे संसर्ग रखता है, तो वह स्वयं भी उन्हीं की तरह पतित हो जाता है। तब वह प्रायश्चित्त के लायक भी नहीं रह जाता।।६।। पाँच दिन तक संसर्ग रखने पर तीन रात्रि तक [4]कृच्छ्र व्रत का, दस दिन तक संसर्ग रखने पर

याज्ञवल्क्य (३.३१७) ने इसे केवल चार दिनों का माना है, जिनमें प्रथम तीन दिनों में क्रम से गरम दूध, घी और जल लिया जाता है और चौथे दिन पूर्ण उपवास किया जाता है। प्रस्तुत आगम (७।४) में यही पक्ष मान्य है।

३. कूर्मपुराण (१। २। १०१-१११) ने चार वर्णों और आश्रमों के अतिरिक्त तीन अन्य आश्रमों का भी वर्णन किया है। वे हैं — ब्रह्मा, विष्णु और हर से संबद्ध आश्रम, अर्थात् जिन्होंने इन सम्प्रदायों में दीक्षा ली है, वे ब्राह्म, वैष्णव और शैव। वहां इनके चिह्नों आदि का भी उल्लेख किया गया है। प्रस्तुत स्थल पर प्रयुक्त शिवाश्रम शब्द कूर्मपुराण के हराश्रम की याद दिलाता है।

४. कृच्छ्र व्रत का पालन करने वाले व्यक्ति को तीन दिन तक केवल दिन में ही खाना चाहिये, तीन दिनों तक रात्रि में ही खाना चाहिये, तीन दिनों तक उसे भोजन नहीं माँगना चाहिये (मिल जाय तो खा सकता है) और तीन दिनों तक पूर्ण उपवास करना चाहिये। यदि वह शीघ्र पापमुक्त हो जाना चाहता है, तो उसे दिन में खड़ा रहना और रात में बैठे ही सोना चाहिये (पृ० १०८२-८३)।

मासार्धे दशरात्रं स्यात् पराको माससङ्गतौ ।
चान्द्रायणं द्विमासे च षण्मासे त्वैन्दवद्वयम् ॥८॥
कृच्छ्रं वत्सरसंसर्गे विदधीत प्रयत्नतः ।
दिनसंख्याप्रमाणेन चरेद् वा नक्तभोजनम् ॥९॥

[५]प्राजापत्य व्रत का और बारह दिन पर्यन्त संसर्ग रखने पर [६]सान्तपन व्रत का आचरण करे॥७॥ आधे मास (एक पक्ष) तक संसर्ग रखने पर दशरात्र, एक मास तक के लिये [७]पराक, दो मास तक के लिये [८]चान्द्रायण और छः मास तक संसर्ग रखने पर दो चान्द्रायण व्रतों का पालन करे॥८॥ एक वर्ष तक रखने पर प्रयत्नपूर्वक [९]कृच्छ्र व्रत का अनुष्ठान करे। अथवा जितने दिन पातकी से संसर्ग रहा है, उतने दिन तक केवल रात्रि में भोजन करे॥९॥

५. ऊपर तृतीय पटल की तीसरी टिप्पणी देखिये। वहां कृच्छ्र और प्राजापत्य को अभिन्न माना है, किन्तु प्रस्तुत आगम में यहां इनका दो भिन्न व्रतों के रूप में स्पष्ट उल्लेख मिलता है। इस विषय पर अभी विशेष विचार अपेक्षित है। धर्मशास्त्रों में अनेक प्रकार के कृच्छ्र व्रत वर्णित हैं। उनका परिचय धर्म० (पृ० १०८१-१०९५) में ही देखना चाहिये।

६. मनु (११.२१२) आदि के अनुसार सान्तपन दो दिनों तक चलता है। प्रथम दिन गोमूत्र, गोबर, दूध, दही, घी और कुशोदक, अर्थात् पंचगव्य लिया जाता है और दूसरे दिन पूर्ण उपवास किया जाता है (धर्म०, पृ० १०९२, १०९४)।

७. मनु (११.२१५) आदि के अनुसार इसमें बारह दिनों भोजन नहीं किया जाता। कर्ता को इन्द्रिय-निग्रह के साथ लगातार जप-होम आदि करते रहना पड़ता है। इस प्रायश्चित्त से सारे पाप कट जाते हैं। (धर्म०, पृ० १०८८)।

८. चन्द्रमा के बढने एवं घटने के अनुसार ही जिसमें भोजन किया जाय, उसको चान्द्रायण व्रत कहते हैं। मनु (११.२१६) आदि ने चान्द्रायण की परिभाषा यों दी है-मास के शुक्ल पक्ष के प्रथम दिन एक ग्रास या पिण्ड (कौर) भोजन किया जाता है। द्वितीया तिथि को दो ग्रास, तृतीया को तीन ग्रास.... इसी प्रकार बढते-बढते पूर्णिमा के दिन १५ ग्रास खाये जाते हैं। इसके उपरान्त कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा के दिन १४ ग्रास, द्वितीया को १३... इस प्रकार कृष्ण चतुर्दशी को एक ग्रास खाया जाता है और अमावस्या के दिन पूर्ण उपवास किया जाता है। इसके अतिरिक्त चान्द्रायण व्रत के वहाँ अनेक प्रकार बताये गये हैं। उनके लिये देखिये— धर्मशास्त्र० (पृ० १०८४-८६)।

९. ऊपर की पाँचवीं टिप्पणी देखिये। अतिकृच्छ्र, अर्धकृच्छ्र, आग्नेयकृच्छ्र, कृच्छ्रातिकृच्छ्र आदि कृच्छ्र व्रत के विविध स्वरूपों का परिचय भी उक्त ग्रन्थ के अध्याय ५ से प्राप्त किया जा सकता है। सिद्धान्तशिखामणि (९.२२-२४) में तप आदि पंचयज्ञों की अगल ही परिभाषा दी गई है। जहाँ कृच्छ्र, चान्द्रायण आदि व्रतों की अपेक्षा शिवपूजा आदि के निमित्त अपने देह को सुखाने को ही उत्तम तप माना गया है।

श्रृगालादिदष्टप्रायश्चित्तम्

द्विजो दष्टः श्रृगालाद्यैः स गायत्रीं शतं जपेत् ।
नारी वाऽथ नरो वाऽपि शुना दष्टो द्विजः सकृत् ॥
वृषं प्रदक्षिणीकृत्य सद्यः स्नात्वा विशुद्ध्यति ॥१०॥

चण्डालादिहतस्य प्रायश्चित्तम्

चण्डालेनाथवा गोभिर्विप्रैर्यस्तु हतो मृतः ।
विषेणापि मृतो यस्तु तं खनेन्मन्त्रवर्जितम् ॥
प्राजापत्येन शुद्ध्येयुर्वोढारो विप्रवाक्यतः ॥११॥
वर्षादूर्ध्वं विधेयं स्यात् प्रायश्चित्तं मृतस्य हि ।
ईशानबलिमाधाय पालाशविधिना खनेत् ॥
यथाविधि विधातव्यं पुत्राद्यैरौर्ध्वदेहिकम् ॥१२॥

चक्रवाकादिप्राणिहिंसकस्य प्रायश्चित्तम्

चक्रवाकं कुक्कुटं वा शुकपारावतानपि ।
नक्राहिटिट्टिभान् हत्वा शुद्ध्यते नक्तभोजनात् ॥१३॥
दद्याद्धिरण्यं विप्राय हत्वैवाऽस्थिमतः पुमान् ।
प्राणायामेन शुद्ध्येत हत्वा चानस्थिशालिनः ॥
सहस्रसम्मितान् हत्वा शूद्रहत्याव्रतं चरेत् ॥१४॥

श्रृगाल (सियार) आदि के द्वारा काटे जाने पर द्विज को चाहिये कि वह सौ बार गायत्री मन्त्र का जप करे। इसी तरह द्विज वर्ण के मनुष्य अथवा स्त्री के कुत्ते के द्वारा काटे जाने पर एक बार वृषभ (बैल) की प्रदक्षिणा करने के उपरान्त स्नान करने से शुद्धि होती है॥१०॥

चण्डाल के द्वारा, गाय के द्वारा और ब्राह्मण के द्वारा जिसकी हत्या हुई है और जो विष खाने से मर गया है, ऐसे व्यक्ति का खनन संस्कार बिना मन्त्रों के होना चाहिये। ऐसे व्यक्ति को ढोने वाले व्यक्ति ब्राह्मण की अनुज्ञा के अनुसार प्राजापत्य व्रत का अनुष्ठान करने से शुद्ध होते हैं॥११॥ ऐसे व्यक्ति का प्रायश्चित्त वर्ष भर बीतने के बाद किया जाता है। उसका खनन संस्कार ईशान बलि देकर पालाश विधि से किया जाता है। इसके बाद पुत्र आदि को उसकी विधि के अनुसार और्ध्वदेहिक क्रिया करनी चाहिये॥१२॥

चक्रवाक, कुक्कुट, शुक, पारावत (कबूतर), नक्र (मगर), सर्प, टिट्टिभ आदि पक्षियों को मार कर व्यक्ति केवल रात्रि में ही भोजन करने से शुद्ध होता है, अर्थात् उसको दिन भर उपवास करना पड़ता है॥१३॥ अस्थि (हड्डी) से युक्त प्राणियों को मारने वाला व्यक्ति ब्राह्मणों को सुवर्ण का दान कर तथा बिना हड्डी के प्राणियों को

नकुलं मूषकं गोधां गृध्रं कूर्मं च शल्यकम् ।
काकोलूकबकान् हत्वा त्रिभिर्नक्तैर्विशुद्ध्यति ॥१५॥

चण्डालसंभाषणादिप्रायश्चित्तम्

चण्डालेन श्वपाकेन कृते सम्भाषणे तदा ।
प्राणानायम्य च सकृत् सावित्रीं प्रयतो जपेत् ॥१६॥
चण्डालस्पर्शने स्नायात् दृष्ट्वा भानुं विलोकयेत् ।
चण्डालैः सह सुप्त्वा तु त्रिभिर्नक्तैर्विशुद्ध्यति ॥१७॥

पात्रादिशुद्धिविधानम्

ताम्रकांस्यौ भस्मनैव वस्त्राणि जलशौचतः ।
परित्यागान्मृण्मयानि शुद्ध्यन्ति बृहतांपते ॥१८॥
श्वकाकगृध्रसंस्पृष्टे बह्वन्ने तु द्विजोत्तमैः ।
व्यपोह्य किञ्चित्स्पृष्टांशं क्षिप्त्वा भस्मजलान्वितम् ॥
दर्भोल्कया स्पर्शयित्वा ग्राह्यमेतद् भवेत्तदा ॥१९॥

मार कर प्राणायाम से शुद्ध होता है। इस प्रकार के हजार प्राणियों का मारने वाला व्यक्ति शूद्रहत्या का प्रायश्चित्त करे॥४॥ [१०]नकुल, मूषक, गोधा, गृध्र, कूर्म (कछुआ), शल्यक, काक, उलूक और बक को मार कर व्यक्ति तीन रात्रि पर्यन्त प्रायश्चित्त करने के बाद शुद्ध होता है॥१५॥

चण्डाल से या श्वपाक से यदि व्यक्ति संभाषण करता है, तो उस स्थिति में एक बार प्राणायाम कर वह पवित्र मन से सावित्री का जप करे॥१६॥ चण्डाल का स्पर्श होने पर स्नान करना चाहिये। उसको देखने पर प्रायश्चित्त के रूप में सूर्य का दर्शन करे। यदि चण्डालों के साथ सोना पड़ता है, तो वह व्यक्ति तीन रात्रि के बाद शुद्ध होता है, अर्थात् तीन दिन तक वह अशुद्ध ही रहता है॥१७॥

हे बृहस्पते! तांबे और कांसे के बरतन भस्म से शुद्ध होते हैं। वस्त्र जल से धोने से शुद्ध हो जाते हैं। मिट्टी के बरतनों का तो परित्याग ही करना पड़ता है॥१८॥ कुत्ता, कौआ, गिद्ध आदि के द्वारा यदि रसोईघर में पकाये गये अन्न के ढेर का स्पर्श कर

---

१०. धर्मशास्त्र के ग्रन्थों में ''पञ्च पञ्चनखा भक्ष्याः'' इस विधान के अनुसार ''शशकः शल्यको गोधा खड्गी कूर्मस्तु पञ्चमः'' इस प्रकार पाँच प्राणियों का परिगणन किया गया है, किन्तु चन्द्रज्ञानागम के प्रस्तुत पटल में इनके भक्षण को भी निषिद्ध माना गया है। यहाँ संसर्गजन्य पापों का, हिंसा जन्य दोषों का, स्पर्शजन्य अशुद्धि का; पात्र, भोजन, अन्न, जल, गृह, शरीरगत मल, वस्त्र आदि की अशुद्धि के निवारण के लिये उपायों का निर्देश किया गया है। यह सारा विषय धर्मशास्त्र-संमत है। इसका परिचय हमें धर्मशास्त्र के इतिहास में वर्णित द्रव्यशुद्धि प्रकारण (पृ. ११८१-११९५) में विस्तार से देखने को मिलता है।

केशकीटादिसम्पृक्तमन्नं शुद्ध्यति भस्मना ।
स्नेहः शुद्ध्यति पाकेन ज्वालया गोपयोऽपि च ॥२०॥
दारुपात्राणि शुद्ध्यन्ति क्षालनात् तत्क्षणादपि ।
रजसा शुद्ध्यते नारी नदी वेगेन शुद्ध्यति ॥२१॥
दूषितेषु हि कूपेषु शतकुम्भमितं जलम् ।
उद्धृत्य पञ्चगव्यस्य क्षेपणाच्छुद्धिमाप्नुयुः ॥२२॥
दहनात् खननाच्चैव धावनादुपलेपनात् ।
वृष्टेरपि च गोक्रान्त्या भूमिः शुद्ध्यति कालतः ॥२३॥
शवेन दूषितं वेश्म प्रोक्षितं सर्वतो जलैः ।
गोमयेनोपलिप्तं च धूमैराघ्रापितं शुचिः ॥२४॥

मेध्यामेध्येन्द्रियाणि

नाभेरूर्ध्वं यानि खानि मेध्यान्येतानि सर्वशः ।
अधःस्थितान्यमेध्यानि मला देहादपि च्युताः ॥२५॥

लिया जाता है, तो उस स्थिति में द्विजोत्तमों को चाहिये कि उसमें से उनके द्वारा स्पृष्ट अंश को निकाल कर फेंक दें और जल से सम्पृक्त भस्म से अथवा जलते हुए दर्भ से शेष अन्न का स्पर्श करा दें। ऐसा करने पर वह ग्राह्य हो जाता है॥१९॥ केस, कीट आदि से सम्पृक्त अन्न भस्म से शुद्ध होता है। घृत, तैल आदि की शुद्धि इनको तपा लेने से होती है और गाय के दूध की शुद्धि अग्नि की ज्वाला से॥२०॥ लकड़ी के पात्रों की शुद्धि उनको धो देने से तत्काल हो जाती है। रजोधर्म के बाद नारी शुद्ध हो जाती है और बहते रहने से नदी की शुद्धि होती है॥२१॥ कूप, वापी आदि के दूषित होने पर उनमें से सौ घड़ा पानी निकाल देने पर और फिर पंचगव्य से उसको प्रोक्षित करने से शुद्धि हो जाती है॥२२॥ भूमि के किसी कारणवश दूषित हो जाने पर उस स्थान पर अग्नि को प्रज्वलित करने से, खोद देने से, उसको धो देने से, लीप देने से, वृष्टि के कारण और गौ का वहां वास करा देने से उसकी शुद्धि हो जाती है॥२३॥ शव के कारण दूषित हुआ घर चारों तरफ जल से धो देने पर, गोबर से लीप देने पर और गुग्गुलु इत्यादि के धूम से सुवासित कर देने पर पवित्र हो जाता है॥२४॥

नाभि से ऊपर के शरीर में जो मुख, नासिका आदि इन्द्रियां हैं, सदा पवित्र मानी जाती हैं। इसी तरह से नाभि से नीचे की पायु और उपस्थ इन्द्रियां सदा अपवित्र मानी गई हैं। अगले श्लोक में वर्णित देह के सभी मल भी शरीर से पृथक् हो जाने

देहस्थमलविशुद्धि:

वसाशुक्रमसृङ्मज्जामूत्रविट्कर्णविण्णखा: ।
श्लेष्माश्रुदूषिकास्वेदा द्वादशैते नृणां मला: ॥२६॥
विण्मूत्रोत्सर्गशुद्ध्यर्थं मृद्वार्यादेयमर्थवत् ।
दैहिकानां मलानां च शुद्धिषु द्वादशस्वपि ॥२७॥
पूर्वेषां षण्मलानां तु शुद्धिरद्भिर्मृदा भवेत् ।
उत्तरेषां जलेनैव शुद्धिरिष्टा बृहस्पते ॥२८॥

वस्त्रादिविशुद्धि:

वस्त्रं चण्डालसंस्पृष्टं क्षालनेन विशुद्ध्यति ।
मृण्मयं तु परित्यागाद् धान्यं वै मार्जनाच्छुचि: ॥२९॥
मक्षिकामशकाद्यैश्च स्पृष्टं दृष्टमदीक्षितै: ।
केशकीटैश्च संस्पृष्टं भस्मनाऽन्नं विशुद्ध्यति ॥३०॥

सोमादयो नोच्छिष्टा:

सोमे च मधुपर्के चाऽवसरे च निवेदिते ।
तथा गुरुप्रसादे च नोच्छिष्टत्वं कदाचन ॥३१॥

पर अपवित्र माने जाते हैं॥२५॥

चरबी, शुक्र, रक्त, मज्जा, मूत्र, विष्ठा, कान का मैल, नख, कफ, अश्रुदूषिका (नेत्रमल) और स्वेद, (पसीना) मनुष्य के शरीर के ये बारह मल माने जाते हैं॥२६॥ विष्ठा और मूत्र के उत्सर्ग के बाद उन इन्द्रियों की तथा हाथ-पैर की मिट्टी और जल से शुद्धि की जाती है। इसी तरह से देह से सभी बारहों मलों के निर्गत होने पर उन उन अंगों की शुद्धि यथायोग्य मिट्टी या जल से करनी चाहिये। हे बृहस्पति! पहले छ: मलों (वसा, शुक्र, रक्त, मज्जा, मूत्र, विष्ठा) की शुद्धि जल और मिट्टी से तथा बाद के छ: मलों (कर्णमल, नख, श्लेष्मा, अश्रुदूषिका, स्वेद) की शुद्धि केवल जल से हो जाती है॥२८॥

चण्डाल के द्वारा छुआ गया वस्त्र धोने से शुद्ध हो जाता है। मिट्टी के बर्तन का चण्डाल से स्पर्श होने पर उसकी शुद्धि नहीं होती, अत: उसका परित्याग करना पड़ता है। चण्डाल के द्वारा छुए गये धान्य को धो डालने से वह शुद्ध हो जाता है॥२९॥ मक्षिका (मक्खी), मशक (मच्छर) आदि के भोजन में गिर जाने पर, अदीक्षित व्यक्ति के द्वारा देखे जाने पर और केश, कीट आदि के भोजन में गिर पड़ने पर उनको निकाल कर अन्न की भस्म छोड़ कर शुद्धि की जाती है॥३०॥

इति श्रीचन्द्रज्ञानागमे उत्तरभागेऽनन्तरुद्रबृहस्पति–
संवादे शिवशासने चर्यापादे प्रायश्चित्तकथनं
नाम सप्तमः पटलः ॥

सोम याग के और मधुपर्क के अवसर पर तथा इसी तरह श्राद्ध के समय दिया गया अन्न कभी उच्छिष्ट नहीं होता। गुरु का प्रसाद भी कभी उच्छिष्ट नहीं माना जाता॥३१॥

इस प्रकार अनन्तरुद्र और बृहस्पति के संवाद के रूप में प्रस्तुत इस
चन्द्रज्ञान नामक शैवशासन के उत्तर भाग के चर्यापाद का
प्रायश्चित्तों का वर्णन करने वाला यह सातवां
पटल समाप्त हुआ ॥



अष्टमः पटलः

बृहस्पतिरुवाच

अनन्तरुद्र भगवन् लोकोद्धरणदीक्षित ।
महापापोपपापानां प्रायश्चित्तं वदस्व मे ॥१॥

अनन्तरुद्र उवाच

महापातकोपपातकानां प्रायश्चित्तानि

महापातककर्ता तु सम्प्राप्य गुरुसन्निधिम् ।
दण्डद्रव्यं विधायाथ परां शुद्धिमवाप्नुयात् ॥२॥

अगम्यागमनप्रायश्चित्तम्

अगम्यागमने प्रोक्तं शुद्ध्यै चान्द्रायणं व्रतम् ।
भुनक्ति यस्तु चण्डालीं द्विजोऽज्ञानवशंगतः ॥३॥
सशिखं वापयित्वा च त्रिवर्षं भैक्षभोजनम् ।
कृत्वा गोमिथुनं दत्त्वा शुद्धिं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥४॥
पितृदारान् भ्रातृजायां गुरुपत्नीं स्नुषां गतः ।
प्राजापत्यत्रयं कृत्वा दक्षिणां गोद्वयं दिशेत् ॥५॥

बृहस्पति प्रश्न करते हैं—

लोकों के उद्धार के कटिबद्ध हे भगवन् अनन्तरुद्र! आप मुझे महापातकों और उपपातकों के प्रायश्चित्त की विधि बताइये॥१॥

अनन्तरुद्र उत्तर देते हैं—

महापातकों को करने वाला व्यक्ति गुरु के पास जा कर उनके द्वारा दण्ड के रूप में निर्दिष्ट द्रव्य को देकर श्रेष्ठ शुद्धि प्राप्त करे॥२॥

अगम्या स्त्री के साथ गमन करने पर उसकी शुद्धि के लिये [१]चान्द्रायण व्रत का अनुष्ठान बताया गया है। जो द्विज अज्ञानवश चण्डालपत्नी का उपभोग करता है, वह शिखा के साथ मुण्डन करा कर तीन वर्ष तक भिक्षा माँग कर भोजन करे। इसके बाद गोमिथुन का दान करने पर वह अवश्य ही शुद्ध हो जाता है॥३-४॥ अपनी माता से भिन्न पिता की अन्य पत्नियों के साथ, अपने भाई की पत्नी के साथ, गुरुपत्नी और पुत्रवधू के साथ गमन करने पर तीन प्राज्ञापत्य व्रत का अनुष्ठान और दो गायों का दान करने पर शुद्धि होती है॥५॥ न चाहने पर भी ब्राह्मणी के साथ एक बार भी

---

१. सप्तम पटल की आठवीं टिप्पणी देखिये।

अकामां ब्राह्मणीं गत्वा कृच्छ्रचान्द्रायणं चरेत् ।
सकामां च तदर्धं स्यात् तप्तकृच्छ्रं सकृद्गतौ ॥६॥
ब्राह्मणीगमने कृच्छ्रं गर्भे सान्तपनं स्मृतम् ।
राज्ञीगर्भे पराकः स्याद् वैश्यागर्भे त्र्यहोदितम् ॥
शूद्रीगर्भे त्वैन्दवं स्यादेवं शुद्ध्येन्न संशयः ॥७॥
गर्भिणीं पतितां गत्वा तथा चैव रजस्वलाम् ।
अतिकृच्छ्रं चरित्वा तु विशुद्ध्यति न संशयः ॥
पशुवेश्यादिगमने प्राजापत्यं समाचरेत् ॥८॥
अनिच्छन्ती सकृद्भुक्ता या नारी पापकर्मिणा ।
प्राजापत्येन रजसा शुद्ध्यते नात्र संशयः ॥९॥

बलात्कार करने पर [२]कृच्छ्र चान्द्रायण व्रत का अनुष्ठान करना पड़ता है। सकामा ब्राह्मणी के साथ एक बार गमन करने पर यह दण्ड उसका आधा हो जाता है, अर्थात् उस अवस्था में [३]तप्तकृच्छ्र का अनुष्ठान करना पड़ता है॥६॥ ब्राह्मणी के साथ एक बार गमन करने पर [४]कृच्छ्र व्रत का और गर्भ ठहर जाने पर [५]सान्तपन व्रत का अनुष्ठान करना पड़ता है। क्षत्रियाणी के साथ गमन करने से गर्भ ठहर जाने पर [६]पराक व्रत का, वैश्य स्त्री के गर्भ ठहर जाने पर त्र्यहोदित व्रत का और शूद्री के गर्भ ठहर जाने पर चान्द्रायण व्रत का अनुष्ठान करने पर शुद्धि होती है॥७॥ गर्भिणी के साथ, पतिता के साथ और रजस्वला के साथ गमन करने पर [७]अतिकृच्छ्र का अनुष्ठान करने पर शुद्धि होती है। इसी तरह से पशुओं के और वेश्या के साथ गमन करने वाले व्यक्ति को प्राजापत्य व्रत का अनुष्ठान प्रायश्चित्त के रूप में करना चाहिये॥८॥ बिना इच्छा

---

२. उक्त ग्रन्थ में कृच्छ्र चान्द्रायण का कोई विवरण नहीं मिलता। चान्द्रायण के प्रसंग में इतना अवश्य कहा गया है कि गौतम (२६.६-११) ने कृच्छ्र प्रायश्चित्त के लिये सामान्य नियम दिये हैं, वे चान्द्रायण के लिये भी प्रयुक्त होते हैं। प्रायश्चितकर्ता को पूर्णिमा के एक दिन पूर्व मुण्डन कराना पड़ता है और उपवास करना होता है। वह तर्पण भी करता है, घृताहुतियां देता है और यज्ञिय भोजन को प्रतिष्ठापित करता है (धर्म०, पृ० १०८५)।

३. सप्तम पटल की दूसरी टिप्पणी देखिये।

४. सप्तम पटल की चौथी टिप्पणी देखिये।

५. सप्तम पटल की छठी टिप्पणी देखिये।

६. सप्तम पटल की सातवीं टिप्पणी देखिये।

७. मनु (११.२१३) के मत से यह प्रायश्चित्त तीन दिनों तक केवल प्रातःकाल एक कौर भोजन से, उतने ही दिन सन्ध्याकाल एक कौर भोजन से, पुनः तीन दिनों तक बिना माँगे एक कौर भोजन से और अन्त में तीन दिनों तक पूर्ण उपवास से सम्पादित किया जाता है। याज्ञ० (३.३१९) ने एक कौर के स्थान पर एक मुट्ठी भोजन की व्यवस्था दी है (धर्म०, पृ० १०८१)।

पादुकाताडनादिप्रायश्चित्तम्

पादुकायास्ताडने तु व्रतं चान्द्रायणं चरेत् ।
बन्दीगृहान्नभुक्तौ तु कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् ॥१०॥

अभक्ष्यभक्षणप्रायश्चित्तम्

विण्मूत्ररेतःसंस्पृष्टं चण्डालस्यान्नमेव च ।
गोमांसं च द्विजो भुक्त्वा कृच्छ्रचान्द्रायणं चरेत् ॥११॥
शूद्रान्नं सूतकान्नं च पूर्वोच्छिष्टं तथैव च ।
भुक्त्वा कृच्छ्रं चरित्वा तु ब्रह्मकूर्चेन शुद्ध्यति ॥१२॥

एकोद्दिष्टादिभोजनप्रायश्चित्तम्

एकोद्दिष्टे तु यो भुङ्क्ते तत्त्वसंयोजनेऽपि च ।
सहस्रसंमितां जप्त्वा स शुद्ध्यति षडक्षरीम् ॥
आब्दिकाराधने भुक्त्वा जपेत् पञ्चाक्षरीं शतम् ॥१३॥

के जो स्त्री किसी पापी पुरुष के बलात्कार की शिकार हो गई है, वह प्राजापत्य व्रत का अनुष्ठान करने से तथा रजोधर्म के प्राप्त होने से शुद्ध हो जाती है॥९॥

पादुका से किसी को मारने पर व्यक्ति को चान्द्रायण व्रत का अनुष्ठान करना चाहिये। इसी तरह से कारागार के अन्न का भोजन करने पर [८]कृच्छ्र सान्तपन व्रत का अनुष्ठान करना पड़ता है॥१०॥

विष्ठा, मूत्र और वीर्य से संपृक्त अन्न का तथा चण्डाल के अन्न का और गोमांस का भक्षण करने पर द्विज को कृच्छ्र-चान्द्रायण व्रत का अनुष्ठान प्रायश्चित्त के रूप में करना पड़ता है॥११॥ शूद्र के अन्न को, सूतकी अर्थात् जननाशौच या मरणाशौच वाले परिवार के अन्न को और पहले के उच्छिष्ट अपने ही अन्न को खाकर व्यक्ति को प्रायश्चित्त स्वरूप कृच्छ्र व्रत का अनुष्ठान कर [९]ब्रह्मकूर्च से अपनी शुद्धि करनी चाहिये॥१२॥

एकोद्दिष्ट आराधन के दिन और तत्त्वसंयोजन नामक अनुष्ठान के अवसर पर जो व्यक्ति भोजन कर लेता है, इससे प्राप्त दोष की निवृत्ति के लिये उसे षडक्षरी मन्त्र का एक हजार बार जप करना चाहिये। तभी उसकी शुद्धि होती है। वार्षिक पुण्याराधन

८. इसका भी विवरण धर्म० में नहीं मिलता।

९. मिताक्षरा (याज्ञ०, ३.३१४) का कथन है कि जब व्यक्ति एक दिन उपवास करके दूसरे दिन पंचगव्य के पदार्थों को वैदिक मन्त्रों के उच्चारण के साथ मिलाता है और मन्त्रों के उच्चारण के साथ ही उन्हें ग्रहण भरी करता है, तो यह ब्रह्मकूर्च कहलाता है। पराशर (११.२७-२८) का मत है कि पंचगव्य और ब्रह्मकूर्च एक ही है। अन्य स्मृतिकारों के मत भी यहां दिये गये हैं। देखिये—धर्म०, पृ० १०९१.

लशुनादिभक्षणप्रायश्चित्तम्

पीयूषं लशुनं श्वेतवृन्ताकफलमेव च ।
गृञ्जनं च पलाण्डुं च वृक्षनिर्यासमेव च ॥१४॥
देवस्वं च शिलीध्रं च भुक्त्वा विप्रो विशुद्ध्यति ।
पञ्चगव्यमनुप्रास्य त्रिदिनं नक्तभोजनात् ॥१५॥

क्षुरकर्मादिविशुद्धिः

क्षुरकर्मणि वान्ते च प्रेतधूमे च मैथुने ।
दुःस्वप्ने दुर्जनस्पर्शे नरः स्नात्वा विशुद्ध्यति ॥१६॥

सावित्र्यादिजपस्य महापातकनाशकत्वम्

अयुतं चैव सावित्र्याः प्राणायामशतद्वयम् ।
स्नानद्वादशकं नद्यां तीर्थयात्रा द्वियोजने ॥
प्राजापत्यस्य कृच्छ्रस्य तुल्यमेतच्चतुष्टयम् ॥१७॥
सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशापराम् ।
गायत्रीं च जपेन्नित्यं महापातकनाशनम् ॥१८॥

का भोजन करने पर शुद्धि के लिये सौ बार पंचाक्षर मन्त्र का जप करना चाहिये॥१३॥

पीयूष, लशुन और श्वेत वृन्ताक (बैंगन) का, गृंजन, प्याज और वृक्षों से चूने वाले रस का, देवता के निमित्त अर्पित धन के और शिलाजीत आदि के सेवन से उत्पन्न दोष की निवृत्ति के लिये ब्राह्मण को तीन दिन तक दिन में उपवास रखकर पंचगव्य का प्राशन कर रात्रि में भोजन करना चाहिये॥१४-१५॥

क्षौर कर्म कराने पर, उलटी हो जाने पर, श्मशान के धूम का स्पर्श होने पर, मैथुन करने पर, दुःस्वप्न आने पर और दुर्जन व्यक्ति का स्पर्श होने पर मनुष्य स्नान करके शुद्ध होता है॥१६॥

सावित्री (गायत्री मन्त्र) का दस हजार संख्या में जप, दो सौ बार प्राणायाम का अनुष्ठान, नदी में बारह बार स्नान और दो योजन (लगभग २५ किलोमीटर) की दूरी तक के तीर्थों की यात्रा का अनुष्ठान–ये चारों चीजें प्राजापत्य और कृच्छ व्रत के तुल्य प्रभाव की मानी जाती है, अर्थात् जहाँ प्राजापत्य और कृच्छ व्रत का विधान है, उनके स्थान पर इन चारों में से किसी एक का अनुष्ठान करने से भी शुद्धि हो जाती है॥१७॥ किसी भी प्रायश्चित्त का अनुष्ठान करने पर एक सहस्र बार, सौ बार अथवा दस बार गायत्री मन्त्र का जप नित्य करना चाहिये। यह सभी महापातकों का नाश कर देने वाला है। इससे यह भी ध्वनित होता है कि गायत्री मन्त्र का प्रतिदिन एक हजार बार किया गया जप श्रेष्ठ, सौ बार का मध्यम तथा दस बार का जप कनिष्ठ

वामदेव्यं त्रिरावृत्य तदह्नैव विशुद्ध्यति ।
पौरुषं सूक्तमावृत्य मुच्यते सर्वकिल्बिषात् ॥१९॥
रुद्रैकादशकं जप्त्वा तदह्नैव विशुद्ध्यति ।
श्रीमत्पञ्चाक्षरीं जप्त्वा तत्क्षणादेव शुद्ध्यति ॥२०॥
अथर्वशिरसं चैव नीलरुद्रं तथैव च ।
सकृज्जप्त्वाऽखिलैः पापैस्तस्मिन्नहनि मुच्यते ॥
त्रिसुपर्णं च जप्त्वैव मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥२१॥

श्रद्धायाः शिवसायुज्यप्रापकत्वम्

यः श्रद्धयैवाचरति विहितं शिवशासने ।
स श्रीकण्ठप्रसादेन शिवसायुज्यमृच्छति ॥२२॥

शास्त्रस्य गोपनीयता

इति ते गदितं सम्यग् गीष्पते शिवशासनम् ।
रहस्यं सर्वशास्त्रेषु गोपनीयं प्रयत्नतः ॥२३॥

इति श्रीचन्द्रज्ञानागमे उत्तरभागेऽनन्तरुद्रबृहस्पतिसंवादे शिवशासने चर्यापादे प्रायश्चित्तविधिकथनं नामाष्टमः पटलः ॥

माना जाता है॥१८॥ वामदेव्य सूक्त की तीन बार आवृत्ति करने पर व्यक्ति उसी दिन शुद्ध हो जाता है। इसी तरह से पुरुष सूक्त की तीन बार आवृत्ति कर व्यक्ति सभी पापों से मुक्त हो जाता है॥१९॥ रुद्रैकादशिनी मन्त्रों का जप करके व्यक्ति उसी दिन शुद्ध हो जाता है और पंचाक्षरी मन्त्र के जप से तत्काल शुद्धि हो जाती है॥२०॥ अथर्वशिरस् उपनिषद् और इसी तरह से नीलरुद्र का एक बार भी जप करके व्यक्ति उसी दिन समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। त्रिसुपर्ण के जप से भी व्यक्ति सभी पापों से मुक्त होता है॥॥२१॥

जो व्यक्ति शिवशास्त्रों में विहित प्रायश्चित्त का श्रद्धापूर्वक अनुष्ठान करता है, वह भगवान् शिव के प्रसाद से शिवसायुज्य को प्राप्त करता है॥२२॥

हे बृहस्पते! इस तरह से मैंने इस चन्द्रज्ञान नामक शिवशासन (शैवागम) के रूप में सारे शास्त्रों का रहस्य तुम्हें बताया है। अतः इसे तुम प्रयत्नपूर्वक गुप्त रखो॥२३॥

इस प्रकार अनन्तरुद्र और बृहस्पति के संवाद के रूप में प्रस्तुत इस चन्द्रज्ञान नामक शैवशासन के उत्तर *भाग के चर्यापाद का प्रायश्चित्तविधि का कथन करने वाला यह अष्टम पटल समाप्त हुआ।*

परिशिष्टानि

मूलपञ्चाक्षरमन्त्रन्यासाः

श्लोकार्धानुक्रमणी

सहायकग्रन्थसूची

मूलपञ्चाक्षरमन्त्रन्यासा:

ॐ नमः शिवाय इत्यस्य श्रीमूलपञ्चाक्षरमहामन्त्रस्य वामदेव ऋषिः (शिरसि), पङ्क्तिश्छन्दः (मुखे), श्री सदाशिवो देवता (हृदये), ॐ बीजम्, उमा शक्तिः (गुह्ये), शिव इति कीलकं (पादयोः), श्रीसदाशिवप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः।

सृष्टिन्यासक्रमः (ब्रह्मचारिणाम्)

करन्यासः

ॐ यं ॐ सर्वज्ञशक्तिधाम्ने अङ्गुष्ठाभ्यां नमः ।
ॐ वां ॐ नित्यतृप्तिशक्तिधाम्ने तर्जनीभ्यां नमः ।
ॐ शिं ॐ अनादिबोधशक्तिधाम्ने मध्यमाभ्यां नमः ।
ॐ मं ॐ स्वतन्त्रशक्तिधाम्ने अनामिकाभ्यां नमः ।
ॐ नं ॐ अलुप्तशक्तिधाम्ने कनिष्ठिकाभ्यां नमः ।
ॐ ॐ ॐ अनन्तशक्तिधाम्ने करतलकरपृष्ठाभ्यांनमः ।

देहन्यासः

ॐ यं ॐ ईशानाय नमः शिरसि ।
ॐ वां ॐ तत्पुरुषाय नमो मुखे ।
ॐ शिं ॐ अघोराय नमो हृदये ।
ॐ मं ॐ वामदेवाय नमो गुह्ये ।
ॐ नं ॐ सद्योजाताय नमः पादद्वये ।
ॐ ॐ ॐ प्रणवाय नमः सर्वाङ्गे ।

अङ्गन्यासः

ॐ यं ॐ सर्वज्ञशक्तिधाम्ने हृदयाय नमः ।
ॐ वां ॐ नित्यतृप्तिशक्तिधाम्ने शिरसे स्वाहा ।
ॐ शिं ॐ अनादिबोधशक्तिधाम्ने शिखायै वषट् ।
ॐ मं ॐ स्वतन्त्रशक्तिधाम्ने कवचाय हुँ ।
ॐ नं ॐ अलुप्तशक्तिधाम्ने नेत्रत्रयाय वौषट् ।
ॐ ॐ ॐ अनन्तशक्तिधाम्ने अस्त्राय फट् ।

स्थितिन्यासक्रमः (गृहस्थानाम्)

करन्यासः

ॐ	शिं	ॐ	अनादिबोधशक्तिधाम्ने मध्यमाभ्यां नमः ।
ॐ	वां	ॐ	नित्यतृप्तिशक्तिधाम्ने तर्जनीभ्यां नमः ।
ॐ	यं	ॐ	सर्वज्ञशक्तिधाम्ने अङ्गुष्ठाभ्यां नमः ।
ॐ	नं	ॐ	अलुप्तशक्तिधाम्ने कनिष्ठिकाभ्यां नमः ।
ॐ	मं	ॐ	स्वतन्त्रशक्तिधाम्ने अनामिकाभ्यां नमः ।
ॐ	ॐ	ॐ	अनन्तशक्तिधाम्ने करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

देहन्यासः

ॐ	शिं	ॐ	अघोराय नमो हृदये ।
ॐ	वां	ॐ	वामदेवाय नमो गुह्ये ।
ॐ	यं	ॐ	सद्योजाताय नमः पादद्वये ।
ॐ	नं	ॐ	ईशानाय नमः शिरसि ।
ॐ	मं	ॐ	तत्पुरुषाय नमो मुखे ।
ॐ	ॐ	ॐ	प्रणवाय नमः सर्वाङ्गे ।

अङ्गन्यासः

ॐ	शिं	ॐ	अनादिबोधशक्तिधाम्ने कवचाय हुं ।
ॐ	वां	ॐ	नित्यतृप्तिशक्तिधाम्ने नेत्रत्रयाय वौषट् ।
ॐ	यं	ॐ	सर्वज्ञशक्तिधाम्ने अस्त्राय फट् ।
ॐ	नं	ॐ	अलुप्तशक्तिधाम्ने हृदयाय नमः ।
ॐ	मं	ॐ	स्वतन्त्रशक्तिधाम्ने शिरसे स्वाहा ।
ॐ	ॐ	ॐ	अनन्तशक्तिधाम्ने शिखायै वषट् ।

संहारन्यासक्रम: (वानप्रस्थसंन्यासिनाम्)

करन्यास:

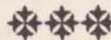
ॐ नं ॐ अलुप्तशक्तिधाम्ने कनिष्ठिकाभ्यां नम: ।
ॐ मं ॐ स्वतन्त्रशक्तिधाम्ने अनामिकाभ्यां नम: ।
ॐ शिं ॐ अनादिबोधशक्तिधाम्ने मध्यमाभ्यां नम: ।
ॐ वां ॐ नित्यतृप्तिशक्तिधाम्ने तर्जनीभ्यां नम: ।
ॐ यं ॐ सर्वज्ञशक्तिधाम्ने अङ्गुष्ठाभ्यां नम: ।
ॐ ॐ ॐ अनन्तशक्तिधाम्ने करतलकरपृष्ठाभ्यां नम: ।

देहन्यास:

ॐ नं ॐ सद्योजाताय नम: पादद्वये ।
ॐ मं ॐ वामदेवाय नमो गुह्ये ।
ॐ शिं ॐ अघोराय नमो हृदये ।
ॐ वां ॐ तत्पुरुषाय नमो मुखे ।
ॐ यं ॐ ईशानाय नम: शिरसि ।
ॐ ॐ ॐ प्रणवाय नम: सर्वाङ्गे ।

अङ्गन्यास:

ॐ नं ॐ अलुप्तशक्तिधाम्ने अस्त्राय फट् ।
ॐ मं ॐ स्वतन्त्रशक्तिधाम्ने नेत्रत्रयाय वौषट् ।
ॐ शिं ॐ अनादिबोधशक्तिधाम्ने कवचाय हुं ।
ॐ वां ॐ नित्यतृप्तिशक्तिधाम्ने शिखायै वषट् ।
ॐ यं ॐ सर्वज्ञशक्तिधाम्ने शिरसे स्वाहा ।
ॐ ॐ ॐ अनन्तशक्तिधाम्ने हृदयाय नम: ।





सहायक ग्रन्थ - सूची

अजितागमः (भागद्वयात्मकः) — फ्रेंच इंस्टीट्यूट, पांडिचेरी, सन् १९६४ एवं १९६७

अथर्वशिर उपनिषद् — उपनिषत्संग्रह द्रष्टव्य।

अनुभवसूत्रम् — तन्त्रसंग्रह, भाग १, पृ० १२९-१७४, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, सन् १९७०

अमरकोशः सुधाव्याख्यासहितः — निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, सन् १९२९

अष्टप्रकरणम् — (तत्त्वप्रकाश – तत्त्वसंग्रह – तत्त्वत्रयनिर्णय – रत्नत्रय – भोगकारिका – नादकारिका – मोक्षकारिका – परमोक्षनिरासकारिकाख्यप्रकरणाष्टकात्मकम्) सं० सं० वि० वि०, वाराणसी, सन् १९८८

अष्टावरण विज्ञान (हिन्दी) — डॉ० चन्द्रशेखर शिवाचार्य, श्री गुरु अमरेश्वर प्रकाशन, अमरेश्वर मठ, गुलेदगुड्ड, कर्णाटक, सन् १९८५

आगम और तन्त्रशास्त्र — प्रो० व्रजवल्लभ द्विवेदी, परिमल पब्लिकेशंस, दिल्ली, सन् १९८४

ईश्वरगीता कूर्मपुराणान्तर्गता — कूर्मपुराण द्रष्टव्य।

उत्तरषट्कं सटीकम् — सं० सं० वि० वि०, वाराणसी, सन् १९८४

उपनिषत्संग्रहः — मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, सन् १९७०

ऋग्वेदः (मूलमात्रम्) — सातवलेकर संस्करण, स्वाध्याय मंडल, पारडी।

ऋग्वेदः (खिलभागः) — सातवलेकर संस्करण, पूर्ववत्।

ऋजुविमर्शिनी — नित्याषोडशिकार्णव द्रष्टव्य।

कर्मकाण्डक्रमावली (सोमशम्भुपद्धतिः) — कश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली, श्रीनगर, सन् १९४७

कात्यायनयज्ञपद्धति विमर्श (हिन्दी) — डॉ० मनोहरलाल द्विवेदी, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली, सन् १९८८

कुमारसम्भवम् — निर्णयसागर प्रेस, बम्बई।

किरातार्जुनीयम् — निर्णयसागर प्रेस, बम्बई।

कूर्मपुराणम् — मनसुखराय मोर, कलकत्ता, सन् १९६२

कूर्मपुराण : धर्म और दर्शन (हिन्दी) — मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, सन् १९९४

गणकारिका — गायकवाड ओरियण्टल सिरीज, बड़ोदा, सन् १९६६

गुरुगीता — गुरुदेव सिद्धपीठ, गणेशपुरी, जिला ठाणे (महाराष्ट्र)।

चन्द्रज्ञानागमः — प० काशीनाथ शास्त्री, श्री पंचाचार्य इलेक्ट्रिक प्रेस, मैसूर, सन् १९४०, १९५६ (कन्नड़ लिपि)।

तत्त्वप्रकाशः — अष्टप्रकरण देखिये।

तन्त्रयात्रा (संस्कृत) — प्रो० व्रजवल्लभ द्विवेदी, रत्ना पब्लिकेशंस वाराणसी, सन् १९८३

तन्त्रसंग्रहः — (वातुलशुद्धाख्य–सूक्ष्म–देवीकालोत्तर–पारमेश्वरतन्त्रात्मकः) शंकरप्पा अच्चय्या टोपिगि, मैसूर, सन् १९४१

तन्त्रालोकः, विवेकव्याख्यासहितः — (१२ भागात्मकः) कश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली, श्रीनगर, सन् १९१८–१९३८

तैत्तिरीयसंहिता — सातवलेकर संस्करण, स्वाध्याय मंडल, पारडी।

तैत्तिरीयारण्यकम् – आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना।

धर्मशास्त्र का इतिहास (हिन्दी अनुवाद) — तृतीय भाग, हिन्दी समिति लखनऊ, सन् १९७५

नारदीयमहापुराणम् — नाग पब्लिकेशंस, दिल्ली, सन् १९८४

निगमागम संस्कृति (हिन्दी) — वीरशैव अनुसन्धान संस्थान, जंगमवाडी मठ, वाराणसी, सन् १९९२

नित्याषोडशिकार्णवः (ऋजुविमर्शिनी – अर्थरत्नावलीटीकाद्वयसहितः) — सं० सं० वि० वि०, वाराणसी, सन् १९८४

नेत्रतन्त्रम् उद्योतसहितम् — परिमल पब्लिकेशंस, दिल्ली, सन् १९८५

परम रहस्य (मराठी) — मन्मथ स्वामी, राजूर वीरमठ संस्थान, अहमद्पुर, लातूर (महाराष्ट्र)।

पातञ्जलयोगसूत्रं सभाष्यम् — आनन्दाश्रम मुद्रणालय, सन् १९३२

पाशुपतसूत्रं पञ्चार्थभाष्यसहितम् — त्रिवेन्द्रम् संस्कृत ग्रन्थमाला, त्रिवेन्द्रम्, सन् १९४०

प्रपञ्चसारः (भागद्वयात्मकः) — आगमानुसन्धान परिषद्, कलकत्ता, सन् १९३५

बृहदारण्यकोपनिषत् — उपनिषत्संग्रह द्रष्टव्य।

भगवद्गीता — गीता प्रेस, गोरखपुर।

भस्मजाबालोपनिषद् — उपनिषत्संग्रह द्रष्टव्य।

भागवतमहापुराणम् — गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत् २०१०

भोगकारिका — अष्टप्रकरण द्रष्टव्य।

मनुस्मृतिः (भाषानुवादसहिता) — निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, सन् १९२९

महानारायणोपनिषत् — केदारनाथ शिवतत्त्व ग्रन्थमाला, काशी, सन् १९२९

महाभारतम् — गीता प्रेस, गोरखपुर।

मुण्डकोपनिषत् — उपनिषत्संग्रह द्रष्टव्य।

मोक्षकारिका — अष्टप्रकरण देखिये।

यमप्रकरणं विशुद्धमुनिकृतम् — गणकारिका द्रष्टव्य।
याज्ञवल्क्यस्मृतिः — स्मृतिसन्दर्भ, भाग ३, मनसुख राय मोर, कलकत्ता, सन् १९५२
योगिनीहृदयं दीपिकासहितम् — मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, सन् १९८८
रघुवंशमहाकाव्यम् — निर्णयसागर प्रेस, बम्बई।
रत्नत्रयोल्लेखिनी — अष्टप्रकरण देखिये।
लिङ्गधारणचन्द्रिका — शैवभारती भवन, जंगमवाडी मठ, वाराणसी, सन् १९८८
लुप्तागमसंग्रहः (द्वितीय भाग) — सं० सं० वि० वि०, वाराणसी, सन् १९८३
वचन परिभाषा कोश (कन्नड़) — कन्नड मत्तु संस्कृति निदेशालय, बंगलोर, सन् १९९३
वरिवस्यारहस्यम् — अडयार लाइब्रेरी, अडयार, मद्रास, सन् १९४८
वाल्मीकिरामायणम् — चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, सन् १९५७
वीरशैवलिङ्गिब्राह्मणदशकर्मपद्धति — श्री मल्लिकार्जुन शास्त्री, शोलापुर, सन् १९०६
शिवपुराणम् — पण्डित पुस्तकालय, काशी, संवत् २०२०
शुक्लयजुर्वेदमाध्यन्दिनसंहिता, उव्वटमहीधरभाष्यसहिता — मोतीलाल बनारसीदास, सन् १९८७
षट्चक्रनिरूपणम् — चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी, सन् १९९१
सांख्यकारिका, सांख्यतत्त्वकौमुदीसहिता — चौखम्बा संस्कृत सिरीज, वाराणसी, सन् १९३२
सिद्धान्तशिखामणिः सव्याख्या — शैवभारती भवन, जंगमवाडी मठ, वाराणसी, सन् १९९३
सिद्धान्तशिखामणिसमीक्षा — शैवभारती भवन, जंगमवाडी मठ, वाराणसी, सन् १९८९
सूतसंहिता (स्कन्दपुराणीया) — ३ भाग, आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना, सन् १९२४–२५
सोमशम्भुपद्धतिः — कर्मकाण्डक्रमावली द्रष्टव्य।
स्कन्दपुराणम् — मनसुखराय मोर, कलकत्ता।



जंगमवाड़ी मठ में उपलब्ध ग्रन्थ

(१) लिङ्गधारणचन्द्रिका (हिंदी भावानुवादसहित)।
(२) सिद्धान्तशिखामणिः, तत्त्वप्रदीपिकाख्यसंस्कृतव्याख्यासहितः, मराठी भावानुवाद- सहितश्च। सं० ज० डॉ० चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी, विशेष आवृत्ति।
(३) श्रीकण्ठभाष्यम् (चतुःसूत्री) अप्पयदीक्षितकृत शिवार्कमणिदीपिका-संस्कृत- टीकासहितम्।
(४) वीरशैव अष्टावरण विज्ञान (मराठी और हिंदी) डॉ० चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी। (भाग १-१३)
(५) जन्म हा अखेरचा (मराठी) (भाग १-१३) ज० डॉ० चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी।
(६) सिद्धान्तशिखामणि-समीक्षा (संस्कृत-शोधप्रबन्ध) डॉ० चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी।
(७) संक्षिप्त शिवपूजाविधिः (मराठी)।
(८) महानारायणोपनिषद् (वीरशैवभाष्य)।
(९) शक्तिविशिष्टाद्वैत सिद्धांत (मराठी)।
(१०) सिद्धान्तशिखामणिः (मूलमात्र)।
(११) निगमागम संस्कृति (हिन्दी) — पं० व्रजवल्लभ द्विवेदी।
(१२) वीरशैव पंचपीठ परंपरा (मराठी) — अनुवादक डॉ० चन्द्रशेखर कपाळे।
(१३) ईशावास्योपनिषद् (शाङ्करी व्याख्योपेता)।
(१४) केनोपनिषद् (शाङ्करी व्याख्योपेता)।
(१५) मुण्डकोपनिषद् (शाङ्करी व्याख्योपेता)।
(१६) सिद्धान्तशिखोपनिषद् (शाङ्करी व्याख्योपेता)।
(१७) सूक्ष्मागमः, हिन्दी भावानुवादसहितः, सं० पं० व्रजवल्लभ द्विवेदी।
(१८) चन्द्रज्ञानागमः, हिन्दी भावानुवादसहितः, सं० पं० व्रजवल्लभ द्विवेदी।
(१९) मकुटागमः, हिन्दी भावानुवादसहितः, सं० पं० व्रजवल्लभ द्विवेदी।
(२०) कारणागमः, हिन्दी भावानुवादसहितः, सं० प्रो० रामचन्द्र पाण्डेय।